Registered with the Registrar of Newspaper for India
R.N.I. Regd. No.: MPHIN/2006/16946
94251-01132

Supported by:
Ksaan Helpline
+91-7415538151

मध्य भारत कृषक भारती

READ FOR ONLINE EDITION
Website: www.krishakbharti.in
E-mail: bhartikrishak75@gmail.com

ISSN-2582-5976

हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली मासिक पत्रिका

वर्ष-16 अंक-12 ग्वालियर, मार्च 2022 मूल्य 30 रुपए

होली की हार्दिक शुभकामनाएं

रंगोत्सव पर काव्य की पिचकारी गह हाथ।
शब्द-रंग से काजिये, तर अपना सिर-माथ।।

फागें, होरी गाइये, भावों से भरपूर।
रस की वर्षा में रहें, मौज-मजे में चूर।।

भंग भवनी इष्ट हों, गुझिया को लें साथ।
बांह-चाह में जो मिले उसे मानिये नाथ।।

लक्षण जो-जैसे वही, कर देंगे कल्याण।
दूर सभी मिटाइये, हों इक तन-मन-प्राण।।

जल की महत्ता को बयाँ हम कर नहीं सकते।
बिना पानी के जीवन में हम रह नहीं सकते।।

आओ खेलें सूखी होली....

शुभारंभः राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय ग्वालियर के अंतर्गत कृषि महाविद्यालय में सेंटर फॉर एग्रीबिजनेस इनक्यूबेशन एंड एंटरप्रनयोरशिप का शुभारंभ किया गया। इस अवसर पर परिसर में लगी कृषि मंत्री श्री तोमर ने प्रदर्शनी का अवलोकन किया। कार्यक्रम में भारत सिंह कुशवाह राज्यमंत्री, उद्यानिकी एवं खाद्य प्रसंस्करण (स्वतंत्र प्रभार), नर्मदा घाटी विकास म.प्र. शासन एवं कुलपति प्रो. एस. के. राव मुख्य रूप से उपस्थित थे।

Jointly Organized by:

Jointly Organized by:

3rd FarmTechAsia®

11 12 13 14 March 2022

Venue: Agriculture College Ground, IGKV University, Raipur, Chhattisgarh

Largest International Agriculture Exhibition of Chhattisgarh

Shri Bhupesh Baghel
Hon'ble Chief Minister
Government of Chhattisgarh

Shri Ravindra Choubey
Hon'ble Agriculture Minister
Government of Chhattisgarh

BOOK YOUR STALL NOW!

International Exhibition & Conference On Agriculture, Horticulture, Dairy & Food Processing Technology

GLIMPSES OF FARMTECH ASIA 2019

- Visitors Attended from More than 16 States of India
- More than 160 Companies Participated
- Participation of Companies From India and 6 other Countries

PARTICIPANTS FROM COUNTRIES

GERMANY INDIA ISRAEL ITALY JAPAN SWEDEN USA

Organiser: Co-Organiser: Supported by:

Stall Booking Contact Details:

Mr. Pradeep Thakor Mobile: +91 9998889578 **Email:** mktg@farmtechasia.com | **Mr. Savan Shah** Mobile: +91 7575007740 **Email:** fta@farmtechasia.com

www.farmtechasia.com

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

129 फल-सब्जियों को मिला जीआइ टैग

अकेले महाराष्ट्र के 26, महोबा का पान, बिहार का मघई भी शामिल

क्षेत्र विशेष में होने वाली कृषि उपजों की भौगोलिक पहचान बताने वाले जीआइ टैग के तहत देश में अब तक 129 फल-सब्जियां, मसाले और अन्य उत्पाद पंजीकृत किए गए हैं। इनमें कश्मीरी केसर, दार्जिलिंग चाय, केरल की मलाबार मिर्च, बिहार का मघई सहित महोबा का पान, बीकानेरी भुजिया, अलीबाग का सफेद प्याज, भागलपुर का जर्दालू, नागपुर के संतरे, नासिक का अंगूर आदि शामिल हैं।

आम की कई किस्मों को जीई टैग मिला है, जिनमें मलीहाबादी केसर, कोंकण का हापुस, पश्चिम बंगाल के माल्दा और फजली शामिल हैं। बागवानी में अग्रणी महाराष्ट्र को 26 जीआइ टैग मिले हैं। सांगली का किशमिश, कोल्हापुर का गुड़, सोलापुर की जवारी, नवापुर की तूर दाल, पुरंदर का अंजीर जैसी कई उपजें गिनाई जा सकती हैं। जीआइ टैग की सूची में बंगाल का रसगुल्ला और तिरुपति के लड्डू को भी स्थान मिला है। देश में सबसे पहले दार्जिलिंग चाय को जीआइ टैग मिला था। जीआइ टैग के कई फायदे हैं। इससे क्षेत्र विशेष में होने वाली उपज की विश्वसनीयता बढ़ जाती है। घरेलू और विदेशी ग्राहकों का ऐसे उत्पादों की गुणवत्ता पर भरोसा होता है। पहले लोग जीआइ टैग पर ज्यादा ध्यान नहीं देते थे। लेकिन, हाल के वर्षों में इसकी ओर रुझान बढ़ा है। हर राज्य अपने यहां की खास उपज के लिए यह पहचान हासिल करना चाहता है। सहाकारी संस्था के माध्यम से किसान जीआइ टैग के लिए आवेदन कर रहे हैं। महाराष्ट्र के लासगांव प्याज को पहले से जीआइ टैग मिला था। अलीबाग के सफेद प्याज को पिछले साल चिन्हित किया गया है। पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश और जम्मू व कश्मीर को बासमती चावल का जाआई टैग मिला है। गोवा की फेनी, नागालैंड की नागा मिर्च, कुर्ग संतरा, नाजनगुड और जलगांव का केला, महाबलेश्वर की स्ट्रॉबेरी, गुजरात का भालिया गेहूं, गिर का केसर आम, कर्नाटक का गुलाबी प्याज जैसी उपजों को जीआइ टैग मिल चुका है। बिहार की शाही लीची और कतरनी चावल भी इसमें शुमार हैं।

जीआइ टैग की प्रक्रिया

वाणिज्य मंत्रालय के तहत काम करने वाले कंट्रोलर जनरल ऑफ पेटेंट्स, डिजाइंस एंड ट्रेड मार्क्स के पास आवेदन किया जाता है। उत्पाद की खूबियों की जांच और तथ्यों को परखने के बाद जीआइ टैग मिलता है। जीआई टैग 10 साल के लिए वैध होता है। बाद में इसका नवीनीकरण कराना पड़ता है।

आय बढ़ाने में सहायक

जीआइ टैग मिलने के बाद संबंधित क्षेत्र के उपज की मांग बढ़ जाती है। बिक्री बढने से किसानों की आय बढ़ती है। ग्राहकों की मांग पूरी करने में व्यापारियों को सहूलियत होती है। सीधे किसानों-सहकारी या निजी संस्थाओं से उपज खरीदी जा सकती है। विदेशी बाजार में यह ट्रेडमार्क की तरह काम करता है।

छत्तीसगढ़ : कृषि क्षेत्र को नाबार्ड देगा 21 हजार करोड़ से अधिक का कर्ज

राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) ने अलगे वित्तीय वर्ग 2022-23 में प्रदेश में कुल 39 हजार 710 करोड़ रुपये ऋण वितरण का लक्ष्य रखा है। नाबार्ड के मुख्य महा प्रबंधक डा. डी. रविंद्र के अनुसार इसमें से कृषि क्षेत्र का हिस्सा 21,805 करोड़ है। सूक्ष्म, लघु, मध्यम उद्योग के लिए 12,556 करोड़ का ऋण शामिल है। उन्होंने यह जानकारी शुक्रवार को नवा रायपुर स्थित नाबार्ड के क्षेत्रीय कार्यालय में आयोजित राज्य ऋण संगोष्ठी में दी। इस कार्यक्रम में राज्य के कृषि मंत्री रविंद्र चौबे मुख्य अतिथि के रूप में शामिल हुए। कार्यक्रम में मंत्री चौबे ने राज्य फोकस पेपर 2022-23और नाबार्ड इन छत्तीसगढ़ पुस्तिका का विमोचन किया। चौबे ने कहा कि सरकार ने राज्य में खेती-किसानी और किसानों की स्थिति को बेहतर बनाने के लिए कई अभिनव योजनाएं शुरू की हैं। बीते तीन सालों में राज्य में कृषि के क्षेत्र में एक नया बदलाव देखने को मिल रहा है। उन्होंने कहा कि छत्तीसगढ़ कृषि प्रधान राज्य है। यहां की लगभग 75 प्रतिशत आबादी का जीवन-यापन कृषि पर निर्भर है। राज्य के विकास के लिए कृषि का विकास होना जरूरी है। मुख्यमंत्री भूपेश बघेल के नेतृत्व में कृषि एवं ग्रामीण अर्थव्यवस्था को बेहतर बनाने का काम तेजी से किया जा रहा है।

मध्यप्रदेश के किसानों के लिए संजीवनी बूटी बनी प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना

मध्यप्रदेश के गांवों में इन दिनों किसान जश्न मना रहे हैं. उत्सव में डूबे हुए हैं. किसानों के चेहरे खिले हुए हैं और गांवों में मिठाई बांट रहे हैं. सभी किसान प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी, मुख्यमंत्री शिवराज सिंह, केंद्रीय कृषि मंत्री नरेंद्र सिंह तोमर और प्रदेश के कृषि मंत्री कमल पटेल को धन्यवाद देकर खुशियां मना रहे हैं. दरअसल गांव के किसानों को प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना के अंतर्गत उन्हें मिली बीमा राशि मिली है. इस खुशी में किसान उत्सव मना रहे हैं. गांव के किसानों को उनका हक दिलाने में मुख्यमंत्री शिवराज सिंह और कृषि मंत्री कमल पटेल की जोड़ी ने मेहनत की है. गौरतलब है कि मध्यप्रदेश में किसानों के ऊपर कोई भी संकट आता है तो मुख्यमंत्री शिवराज और कृषि मंत्री कमल पटेल की जोड़ी संकटमोचक की भूमिका में किसानों की मदद करने के लिए पहुंच जाते हैं. मुख्यमंत्री शिवराज की सोच के साथ किसान नेता एवं कृषि मंत्री कमल पटेल के अथक प्रयास और खेत में ऑन द स्पॉट मौका- मुआयना करना प्रमुख कारण है.

मध्यप्रदेश में किसान खेत में नहीं पहुंच पाता है लेकिन मंत्री कमल पटेल एक दिन में पांच- पांच जिलों की खेतों में खड़ी फसल के नुकसान का आकलन करने खेत में पहुंच जाते हैं.

फसल बीमा से जुड़े बन ग्राम

इस बात को लेकर कृषि मंत्री कमल पटेल बताते हैं कि मध्यप्रदेश में पीएम मोदी के सपने को पूरा करने के लिए हर स्तर पर कार्य किया जा रहा है. पीएम मोदी का सपना है कि कृषि को लाभ का उद्योग बनाना है. इसलिए राज्य सरकार इस लक्ष्य के साथ कार्य कर रही है. मुख्यमंत्री कई बार अपने कार्यो से और भाषणों के जरिए यह बता चुके हैं कि उनकी सरकार किसानों के हित के लिए कार्य करती है. उन्होंने कहा कि मध्यपदेश एकमात्र ऐसा राज्य है जहां रविवार के दिन भी बैंक खुले और डिफाल्टर, अऋणी, वन ग्राम के किसानों की फसलों का बीमा करवाया गया. पहले वन ग्रामों मे प्राकृतिक आपदा से फसल का नुकसान होता था तो फसल बीमा का फायदा नहीं मिलता था लेकिन देश के इतिहास में पहली बार मध्य प्रदेश मे वन ग्रामों को फसल बीमा से जोड़ा गया. जिसका फायदा वन ग्राम में रहने वाले छोटे किसानों को पहली बार पहुंचा है.

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

कोरोना महामारीः गरीबी बढ़ी

आखिर इन्हीं सुधारों ने शुरुआती दशकों में देश में बड़े पैमाने पर गरीबी घटाने में मदद की थी। इसलिए इसे सुधारना जरूरी है। अगर ऐसा नहीं किया गया तो इसके गलत परिणाम सामने आएंगे। अव्वल तो इससे आर्थिक विकास पर बुरा असर पड़ेगा। ऐसा हो भी रहा है। अधिकांश आबादी की आय में मुनासिब बढ़ोतरी नहीं होने से डिमांड में कमी आ रही है। दूसरी बात यह है कि असमानता बढ़ने से सामाजिक अस्थिरता भी बढ़ती है। देश के नीति-निर्माताओं को इस मुश्किल का हल निकालना होगा। उन्हें आर्थिक सुधारों के मॉडल को ऐसा बनाना होगा, जिससे समाज के सभी वर्गों को आर्थिक तरक्की का फायदा मिले।

कोरोना महामारी के दौर में दुनियाभर में असमानता जबरदस्त तरीके से बढ़ी है। वर्ल्ड इकॉनमिक फोरम में ऑक्सफैम की एक रिपोर्ट जारी की गई। यह बताती है कि असमानता यूं तो पूरी दुनिया में बढ़ी है, लेकिन भारत में स्थिति बहुत गंभीर है। यहां मार्च 2020 से नवंबर 2021 तक 4.6 करोड़ लोग एक्सट्रीम पॉवर्टी में चले गए। पूरी दुनिया में इस बीच जितने लोग गरीबी की दलदल में फंसे, यह संख्या उसकी आधी है।

मार्च 2020 से नवंबर 2021 के बीच देश के 84 फीसदी परिवारों की कमाई में कमी आई। शहरी क्षेत्रों में बेरोजगारी दर 15 फीसदी से ऊपर चली गई। लेकिन इसी दौर में देश के अरबपतियों की संख्या 102 से बढ़कर 142 हो गई, जबकि उनकी संपत्ति 23.1 लाख करोड़ से बढ़कर 53.2 लाख करोड़ तक जा पहुंची। इस दौर में भारत अरबपतियों की संख्या के मामले में अमेरिका और चीन के बाद तीसरे नंबर पर पहुंच गया। भारत में आज इतने अरबपति हैं, जितने फ्रांस, स्वीडन और स्विट्जरलैंड को मिलाकर भी नहीं हैं।

अंतर यह है कि वहां के अरबपति अपने चारों ओर अभाव, गरीबी और लाचारी से जूझते लोगों से उस तरह नहीं घिरे हैं, जैसे कि भारत के अरबपति घिरे हैं। सुपर रिच तबके और एक्सट्रीम पॉवर्टी में फंसे लोगों के बीच की चौड़ी होती यह खाई अन्य कमजोर तबकों को भी प्रभावित कर रही है। रिपोर्ट बताती है कि 2020 में महिलाओं की सामूहिक कमाई में 59.11 लाख करोड़ रुपये की कमी आई। कुछ समय पहले वैश्विक गैर-बराबरी रिपोर्ट आई थी। उसमें भी बताया गया था कि देश की कुल राष्ट्रीय आय का 57 फीसदी हिस्सा सर्वाधिक अमीर 10 फीसदी और उसमें भी 22 फीसदी हिस्सा सुपर रिच के हिस्से जा रहा है। दूसरी तरफ, आबादी के निचले पायदान पर बैठे 50 फीसदी भारतीय राष्ट्रीय आय के सिर्फ 13 फीसदी में गुजारा करने को मजबूर हैं। 40 फीसदी मध्यम और निम्न मध्यम वर्ग की भी स्थिति अच्छी नहीं है, जो कुल राष्ट्रीय आय के सिर्फ 30 फीसदी में गुजर-बसर कर रहे हैं। इसका मतलब यह है कि आर्थिक सुधारों के मौजूदा मॉडल में कोई गड़बड़ी है।

Online मंगाएं साहित्य

मध्यप्रदेश एवं छत्तीसगढ़ में अत्यंत लोकप्रिय हिन्दी मासिक समाचार पत्रिका **मध्य भारत कृषक भारती** द्वारा प्रकाशित कृषि साहित्य अब आप ऑनलाइन भी खरीद सकते हैं। हमारी वेबसाइट **www.krishakbharti.in** पर जाकर **Purchase** को क्लिक करके ऑनलाइन ऑर्डर कर सकते हैं।

वैज्ञानिक/लेखकों के लिए सूचना

प्रत्येक माह की 22 तारीख तक प्राप्त समाचार/लेख/फोटो फीचर को प्रिंट एडिशन में स्वीकार किया जाता है तथा 23 से 28 तारीख तक प्राप्त समाचार/लेख/फोटो फीचर को डिजीटल एडिशन में सम्मिलित किया जाना संभव हो सकेगा। लेख में मोबाइल नम्बर होना अनिवार्य है।

–संपादक

सूचना

हिन्दी भाषी प्रदेशों में अत्यंत लोकप्रिय हिन्दी मासिक पत्रिका मध्यभारत कृषक भारती में कृषक हितैषी विषयों से संबंधित लेखों, समाचारों, फोटो फीचर, सफलता की कहानियाँ, रिसर्च पेपर का हम स्वागत करते हैं। लिखी हुई सामग्री आपकी स्वयं की हो जिसे आप हमारे डाक पते पर या फिर ई-मेल पर भेज सकते हैं।

Mob. 94251-01132
editorkrb@gmail.com

मध्य भारत कृषक भारती में प्रकाशित पाठ्य सामग्री में व्यक्त विचार वैज्ञानिकों/लेखकों के हैं। सम्पादक की सहमति अनिवार्य नहीं है। किसी त्रुटि शंका या समाधान के लिये वैज्ञानिकों/लेखकों के पते प्रकाशित किये जाते हैं जिस पर संपर्क किया जा सकता है। सभी प्रकार के विवादों के लिये न्याय क्षेत्र ग्वालियर होगा। सभी पद मानसेवी हैं।

संपादक मंडल

प्रधान सम्पादक
राजू गुर्जर (MJC)
94251-01132, 94245-22090

❖

प्रसार/मार्केटिंग टीम
योगेन्द्र सिंह
94259-16038, 70492-14731
डी.के. बरार
91791-85002, 70247-93010
ब्रजपाल सिंह : 90583-31074
महेश अहिरवार : 94259-62043

:: तकनीकी मार्गदर्शन/वैज्ञानिकगण ::

डॉ. व्ही.एस. तोमर (पूर्व कुलपति)
राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय
***

डॉ. अर्पिता श्रीवास्तव (Assistant Professor)
पशु चिकित्सा एवं पशुपालन महाविद्यालय रीवा (म.प्र.)
***

डॉ. आर.के.एस. तोमर संयुक्त निदेशक विस्तार सेवाएं
राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि वि.वि. ग्वालियर
***

डॉ. भागचन्द जैन प्राध्यापक एवं प्रचार अधिकारी
कृषि महाविद्यालय, इंदिरा गांधी कृषि वि.वि. रायपुर (छ.ग.)
***

डॉ. अनिल कुमार सिंह (उद्यान वैज्ञानिक)
कृषि विज्ञान केन्द्र, पीपराकोठी (पूर्वी चम्पारण),
डॉ.रा.प्र.के.कृ.वि.वि.,पूसा, समस्तीपुर
***

डॉ. रंजु कुमारी (स.प्रा. सह कनीय वैज्ञानिक)
पादप प्रजनन एवं अनुवांशिकी विभाग, नालन्दा उद्यान महाविद्यालय,
नूरसराय (नालन्दा), बिहार कृषि वि.वि.,सबौर, भागलपुर
***

बसंत कुमार दादरवाल
इंस्टीट्यूट ऑफ एग्रीकल्चर साइंस बनारस हिन्दू
यूनिवर्सिटी वाराणसी (उ.प्र.)
***

श्रीमती रिया ठाकुर (वैज्ञानिक उद्यानिकी)
कृषि विज्ञान केन्द्र बैतूल (म.प्र.)
मोबाइल: 9907279542
***

योगेन्द्र कौशिक (प्रगतिशील कृषक)
ग्राम अजडावदा जिला उज्जैन (म.प्र.)
मोबाइल: 93400-29298

गौरवपूर्ण प्रकाशन का निरंतर 16वां वर्ष

मध्य भारत कृषक भारती

• वार्षिक ₹400 • द्विवार्षिक ₹750 • पंचवार्षिक ₹1500 • मध्यप्रदेश • छत्तीसगढ़ • उत्तर प्रदेश • राजस्थान

सदस्यता एवं विज्ञापन के लिए सम्पर्क करें :- 94251-01132 ■ 94245-22090 ■ 0751-4070802

■ वर्ष 16 ■ अंक 12 ग्वालियर, मार्च 2022 मूल्य ₹ 30/-

अंदर के पन्नों पर

मध्य प्रदेश

- ड्रोन: कृषि के लिए एक क्रांतिकारी उपकरण 08
- ड्राइ काउ थैरेपी (डी.सी.टी.) 09
- लसोड़ा- इसके उपयोग एवं महत्व 10
- आम में वर्षभर की जाने वाली-क्रियाएं 11
- ब्रूसेलोसिस (ब्रूसैला)- पशुओं से इंसानों में पहुंचती यह बीमारी 12
- बकरी: गरीब की गाय 13
- आर्थिक सशक्तिकरण हेतु स्व-सहायता समूह 14
- असामान्य या कठिन प्रसव (डिस्टोकिया) के कारण एवं उसका उपचार 15
- धान उत्पादन की मेडागास्कर विधि 16
- दुधारू पशुओं में थन के विकार एवं उनका शल्य क्रिया द्वारा निदान 18
- ग्रीष्मकालीन मौसम में कद्दूवर्गीय सब्जियों की खेती 19
- वर्टीकल फार्मिंग या खड़ी खेती से संबंधित जानकारी 20
- मप्र में नर्मदा नदी की मात्स्यिकी में महाशीर मछली का महत्व और संरक्षण आवश्यकताएं 21
- पशु मूल के खाद्यान्न में पशु औषधि अवशेषों का सार्वजनिक स्वास्थ्य पर परिणाम 22
- अधिक लाभकारी है ग्रीष्म में तिल की खेती 23
- राष्ट्रीय पशु रोग नियंत्रण कार्यक्रम-एक अनूठी पहल 25
- चीकू या सपोटा के मुख्य कीट एवं उनका नियंत्रण 26
- कसूरी मेथी की खेती 27
- संक्रामक श्लेषपुटी (बर्सल) रोग (आईबीडी) 28
- पॉलीहाउस में शिमला मिर्च का उत्पादन 29
- आंवला में लगने वाले कीट रोग एवं उनका नियंत्रण 30

छत्तीसगढ़

- केन्द्रीय बजट और किसान 32
- सीताफल की वैज्ञानिक खेती 33
- प्याज के महत्व, फायदे, नुकसान 34

उत्तर प्रदेश

- किसानों की आय वृद्धि में सरसों की वैज्ञानिक खेती का योगदान 35
- दलहनी फसलों में एकीकृत कीट प्रबंधन 37
- प्राकृतिक खेती: जरूरत भी, परंपरा भी 38
- कैल्शियम से भरपूर रागी 39
- पपीता की खेती: आय का साधन 40
- सेहत सुरक्षा हेतु बाजरा-एक पौष्टिक अनाज 41
- भौगोलिक संकेत टैग (GI Tag) 42 लाभ, महत्व एवं चुनौतियां
- ग्रीन हाउस आवश्यकता एवं लाभ 43
- खीरा की उन्नत खेती 44
- कद्दू के बीज के बेमिसाल फायदे जानते हैं आप? 45
- ज्वार: खरीफ चारे की उत्तम फसल 46
- बैंगन में लगने वाले प्रमुख रोग 48
- आर्द्रभूमि: ग्रीनहाउस गैसों के स्रोत या सिंक 49
- जैविक खेती के लिए जीवामृत को बढ़ावा 50
- अमरुद की खेती 51
- कद्दूवर्गीय फसलों के मुख्य रोग एवं उनके रोकथाम 52
- कैसे करें खीरे की खेती 53
- ऊर्जा के भावी विकल्प... 54
- हाइड्रोपोनिक्स बिना मिट्टी के पौधे उगाने की तकनीक 55
- बैंगन के प्रमुख हानिकारक कीट... 56
- पशुओं में थनैला रोग जानकारी एवं रोकथाम 57
- किसानों के लिए एक वरदान शून्य बजट प्राकृतिक खेती 58

राजस्थान

- मृदा संकेतकों का मृदा स्वास्थ्य एवं मृदा गुणवत्ता में योगदान 59
- जलवायु परिवर्तन का कृषि पर प्रभाव 60
- सौंफ की वैज्ञानिक खेती 61
- अदरक की खेती और प्रबंधन 62
- तरल जैव-उर्वरक 63
- मधुमक्खी पालन: आय के विभिन्न स्त्रोत 64
- संरक्षण कृषि में शून्य जुताई... 65
- मधुमक्खी पालन 66

हिमाचल प्रदेश

- स्वस्थ बीज उत्पादन कैसे करें 68

हरियाणा

- प्याज एवं लहसुन में रोग एवं कीट प्रबंधन 69
- लवणीय एवं तैलीय पानी का उचित उपयोग 70
- गेहूँ का पीला रतुआ एवं रोकथाम 71
- स्क्रीन प्रिंटिंग छपाई की एक प्राचीन तकनीक 72
- गेहूँ में खरपतवार नियंत्रण व पोषक तत्व... 73

****

झारखण्ड

- झारखण्ड में अमरुद की उन्नत खेती 74

नई दिल्ली

- नींबूवर्गीय फलों के उत्पादन में प्रमुख समस्याएं 75

बिहार

- बैंगन के प्रमुख कीट एवं प्रबंधन 77

उत्तराखण्ड

- लघु और सीमांत कृषकों के लिए लाजवाब कृषि यंत्र 78

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

केंद्रीय कृषि मंत्री बोले कृषि क्षेत्र को आधुनिक ज्ञान की जरूरत

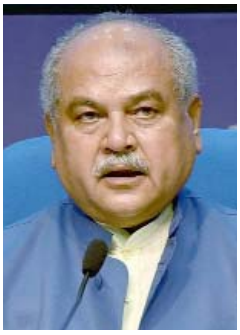

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के दीक्षांत समारोह में केंद्रीय कृषि मंत्री नरेंद्र सिंह तोमर ने अपने संबोधन में कहा कि कृषि हमारे देश की व्यवस्था का मुख्य आधार है। आधार मजबूत हो तो इससे बाकी चीजों को मजबूती प्रदान करने में आसानी होती है। कृषि व ग्रामीण क्षेत्र आधारित इस अर्थव्यवस्था को कई बार तोड़ने की कोशिश हुई लेकिन लोग सफल नहीं हुए। कृषि हमारी मूल ताकत है, इसे हम जितना मजबूत करेंगे, हमें उतना फायदा होगा। दीक्षांत समारोह में कृषि राज्य मंत्री कैलाश चौधरी, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के महानिदेशक डा. त्रिलोचन महापात्र, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के निदेशक सह कुलपति डा. एके सिंह, डीन डा. रश्मि अग्रवाल सहित अनेक व्यक्ति उपस्थित रहे। छात्रों को भविष्य के शुभकामनाएं प्रदान करते हुए केंद्रीय कृषि मंत्री ने कहा कि लोकतांत्रिक मूल्यों में आस्था रखने वाला हमारा देश दुनिया का बड़ा देश है। हमारे देश की उपलब्धियां विभिन्न क्षेत्रों में निरंतर बढ़ रही है, जिससे हमारी साख, हमारी ताकत भी बढ़ रही है। यह शुभ संकेत है। लेकिन तमाम उपलब्धियों के बीच जब कृषि क्षेत्र में उपलब्धियों की बात होती है तब गौरव का अनुभव होता है। कृषि क्षेत्र में हासिल तमाम उपलब्धियां किसानों की मेहनत व विज्ञानियों के परिश्रम का परिणाम है।

मध्यप्रदेश के कृषि मंत्री पटेल ने कहा-

बजट में ऑर्गेनिक खेती पर फोकस

मध्य प्रदेश के कृषि मंत्री कमल पटेल ने केंद्रीय बजट में गंगा किनारे के ऑर्गेनिक खेती के लिए कॉरीडोर बनाए जाने का स्वागत करते हुए प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी और वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण का आभार व्यक्त किया है. पटेल ने कहा कि ऑर्गेनिक और प्राकृतिक खेती को बढ़ावा देना समय की जरूरत है. इससे लोगों को गुणवत्ता वाला भोजन मिलेगा और किसानों की आय में वृद्धि होगी. धरती की उर्वरता कायम रहेगी और उर्वरकों पर खर्च कम होगा. उन्होंने कहा कि बजट में कहा गया है केमिकल फ्री खेती को बढ़ावा दिया जाएगा, इससे मध्य प्रदेश को खासतौर पर काफी फायदा होने वाला है, क्योंकि एमपी में काफी पहले से इस दिशा में काम हो रहा है. पटेल ने अपने बयान में कहा कि मध्य प्रदेश में 17 लाख हेक्टेयर से अधिक क्षेत्र में जैविक खेती हो रही है. यह सबसे अधिक है. उन्होंने कहा कि प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने इस बजट में केमिकल फ्री फार्मिंग पर जोर दिया है. जिससे सूबे की सरकार इस क्षेत्र में और गंभीर हो गई है. कृषि विभाग, बागवानी विभाग एवं पशुपालन विभाग के साथ हमारी नजर ऐसी खेती पर है. जैविक खेती को बढ़ावा देने के लिए हमारी सरकार के बागवानी विभाग ने भी एक कार्य योजना तैयार की है.

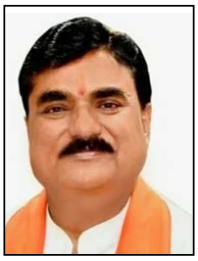

छत्तीसगढ़ बनेगा कृषि के क्षेत्र में देश भर में मॉडल: कृषि मंत्री

कृषि के नवाचार और जैविक उत्पादों सहित छत्तीसगढ़ सरकार की सुराजी योजना पर आधारित जीवंत प्रदर्शनी साईस कालेज मैदान में लगाई गई है। कृषि एवं जल संसाधन मंत्री रविन्द्र चौबे ने विकास प्रदर्शनी का निरीक्षण किया। चौबे ने किसान संगठनों और महिला समूहों की पदाधिकारियों द्वारा उत्पादित जैविक खाद्य सामग्री का अवलोकन करते हुए उनसे चर्चा की। उन्होंने किसानों एवं महिला समूहों की मेहनत और लगन की सराहना की। उन्होंने कहा कि आप सबकी मेहनत से छत्तीसगढ़ कृषि के क्षेत्र में देश का माडल राज्य बनने जा रहा है। कृषि विभाग की प्रदर्शनी में सुराजी गांव योजना के तहत गांवों में नालों के विकास एवं उपचार, गोठान निर्माण, गोधन न्याय योजना, वर्मी उत्पादन, पशुपालन, राजीव गांधी किसान न्याय योजना के माध्यम से फसल उत्पादकता में वृद्धि एवं फसल विविधिकरण के अंतर्गत जीआई टैग्ड उत्पाद, अनाज और लघु धान्य फसलें, फल और सब्जियां, मसाले, सुगंधित चावल, फाइबर उत्पाद, सहित कृषि आधारित प्रसंस्करण इकाइयों का प्रदर्शन किया गया है। इस दौरान छत्तीसगढ़ योग आयोग के अध्यक्ष ज्ञानेश शर्मा, मुख्यमंत्री के सचिव एवं गोधन न्याय योजना के राज्य नोडल अधिकारी डॉ. एस. भारतीदासन, संचालक कृषि यशंवत कुमार, उद्यानिकी माथेश्वरन व्ही. सहित अन्य अधिकारी साथ थे।

कृषक भारती में सदस्यता ग्रहण करने एवं विज्ञापन प्रकाशन हेतु निम्न प्रतिनिधियों से सम्पर्क करें

छिंदवाड़ा (म.प्र.)

रामप्रकाश रघुवंशी

98272-78063

* * *

नरसिंहपुर (म.प्र.)

नवीन शुक्ला: 89894-36330

मंदसौर (म.प्र.)

डॉ. देवेन्द्र शर्मा: 90395-98640

* * *

बलिया (उ.प्र.)

आर.एन. चौबे: 94535-77732

* * *

पश्चिम बंगाल

राजेश नायक-98831-57482

उड़ीसा

समीर रंजन नायक

70422-31678

* * *

हापुड़ (उ.प्र.)

मयंक गौड़: 83848-66823

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

वर्मी कम्पोस्ट से गीता की कमाई ढाई लाख

किसानों की मेहनत को प्रोत्साहन मिले तो आर्थिकी को रफ्तार पकड़ते ज्यादा समय नहीं लगता है। महिला कृषक गीता नागदा को ही देखिए। कोरोना संक्रमण के बाद किचन गार्डन के शौक से वर्मीकम्पोस्ट का व्यवसायिक उत्पादन शुरू किया। एक साल के भीतर ही वर्गी कम्पोस्ट उत्पादन से ढाई लाख रूपए का शुद्ध मुनाफा कमाया है। गौरतलब है कि गीता ने 10 बेड से वर्मी कम्पोस्ट का उत्पादन शुरू किया था। निरन्तर मेहनत और वैज्ञानिक मार्गदर्शन से गीता का कारवा 125 वर्मी बेड तक पहुंच चुका है। किसान गीता का कहना है कि भूमिहीन किसान वर्मीकम्पोस्ट का उत्पादन करके घर बैठे अच्छी आजीविका प्राप्त कर सकते है।

डॉ. श्रवण यादव एमपीयूपटी, उदयपुर (राजस्थान)

खेती में सालाना आय का अनुमान लगाना किसानों के लिए काफी कठिन है। कोई कृषि पंडित खेती से मुनाफे की बात नहीं बता सकता। प्राकृतिक जोखिमों के साथ-साथ कौट-रोग और फसल के भाव अरमान को जमीन पर ला देते है। आधुनिक कृषि तकनीक और किसान की अथक मेहनत के बावजूद भी किसान रामभरोसे ही रहता है। लेकिन, खेती से जुड़े सहायक व्यवसाय को अपनाकर युवा किसान और महिलाएं अपनी आर्थिकी तरक्की का पूर्वानुमान जरूर बता सकते है। सालभर के भीतर यह साबित करके दिखाया है वर्मीकम्पोस्ट उत्पादक गीता नागदा ने गीता ने वर्मो खाद का सफर 10 बैड से शुरू किया था। हौसलों को समय के साथ परवाज मिली तो वर्तमान में 125 बेड में वर्मीकम्पोस्ट का उत्पादन गीता के फार्महाउस पर हो रहा है। किसान गीता ने बताया कि एक साल के भीतर सारा निकालने के बाद दाई लाख रूपए का शुद्ध मुनाफा मिल चुका है रोजगार की तलाश में भटक रहे युवाओं के लिए वर्मी खाद का उत्पादन सोने पर सुहागा साबित हो सकता है। गीता ने बताया कि परिवार के पास 5 बीघा पैतृक भूमि है। परम्परागत फसलों का उत्पादन इसके ऊपर होता है। सालाना 60-70 हजार रूपए की आय मिल जाती है। उन्होंने बताया कि कोरोना संक्रमण से पूर्व वर्मी कम्पोस्ट से मेरा कोई जुड़ाव नहीं था। लेकिन, संक्रमण काल के दौरान बात जब इम्युनिटी पावर और किचन गार्डन की होने लगी तो मैने भी किचन वेस्ट और किचन गार्डन से अपना सफर शुरू किया। बाद में यह कार्य व्यवसाय के रूप में बदल गया। उन्होंने बताया कि कोरोना संक्रमण के दौरान लेखा-जोखा का काम छोड़कर घर बैठना पड़ा। इस दौरान मैने यू-ट्यूब पर किचन गार्डन स्थापना और किचन वेस्ट से खाद बनाने के कई विडियोज देखें। शौक को पूरा करने के लिए किचन गार्डन तैयार किया किचन वेस्ट से जैविक खाद बनाने लगी। काम में लेने के बाद बचा हुआ जैविक खाद पड़ौसियों को दे देती थी लॉकाउन खत्म होने तक सही वर्मी खाद उत्पादन का व्यवसाय के रूप बदल आए। इसी सोच ने मुझे राजस्थान कृषि महाविद्यालय उदयपुर की जैविक इकाई पर पहुंचा दिया। यहां पर ऑर्गेनिक के नाम से मशहूर डॉ. श्रवण यादव से मुलाकात हुई। उनके मार्गदर्शन में 10 बेड से बर्मी खाद का उत्पादन खर्च शुरू किया और साल भर के भीतर यह कार्य 125 बेड तक पहुंच गया।

गीता नागदा, उदयपुर (राजस्थान) मोबाइल-98291-30190

गौरतलब है कि किसान गीता नागदा बीएड तक शिक्षा प्राप्त हैं और कोरोना संक्रमण से पूर्व एक शिक्षण संस्थान में एकाउंटस का कार्य देखती थीं। उन्होंने बताया कि जब गोबर से नाता जोड़ा तो जानकार महिलाओं ने काफी मजाक बनाया वो कहा करती थीं कि कहा खुद को गोबर से जोड़ लिया, आपको गोबर में काम करते हुए घिन नहीं आती है। लेकिन, अब मजाक उड़ने वाले गोबर से आप देखकर चुप हो चले हैं।

जमीन-गोबर भी मौल से

उन्होंने बताया कि वीं खाद उत्पादन के लिए गोबर की जरूरत होती है लेकिन मेरे पास एक भी पशु नहीं है। जरूरत के अनुसार गोबर की खरीद उदयपुर के आस-पास की गौशालाओं से करती हैं। इसके अलावा 5 बीघा जमीन लीज पर ली हुई है। यहां वर्मी बेड स्थापित की हुई है। इसने खर्चे के बाद साल भर में ढाई लाख रूपए का मुनाफा मिलना मेरे लिए हौसला बढ़ाने वाला है। मुगाफा जरूर कम मिला है। उन्होंने बताया कि जिन किसानों के पास स्वयं की भूमि और पशुधन है। यह स्वतः ही इस व्यवसाय में लाभ के गणित का अंदाजा लगा सकते हैं।

कृषि बजट-दान नहीं दाम चाहिए

किसान आंदोलन से किसान में उपजे असंतोष और अब पांच राज्यों में हो रहे चुनावों को देखते हुए उम्मीद की जा रही थी कि प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि योजना की राशि में बढ़ोतरी होगी लेकिन बजट में ऐसी कोई घोषणा नहीं की गई है पीएम किसान योजना छोटे किसानों को बहुत लाभान्वित कर रही है, पीएम किसान सम्मान निधि के तहत 12 करोड़ रूपया किसानों को सलाना 6 हजार रुपए दिए जाते हैं, किसानों को उम्मीद थी कि इस बजट में यह रकम बढ़ कर 9 हजार रुपए कर दी जाएगी।

आम बजट 2022-23 में कृषि क्षेत्र के लिए कूल

आवंटन में केवल 4.8 प्रतिशत की वृद्धि हुई है जब की फसल बीमा और किसानों को न्यूनतम समर्थन मूल्य को सक्षम करने वाले आवंटन में भारी कमी की गई है। इतना ही नहीं, बजट में किसानों की आय दोगुनी करने की सरकार की महत्वकांक्षी योजना पर भी पूरी तरह चुप्पी साध दी गई है जबकि इस योजना की समय सीमा इसी वर्ष 2022 है।

इस साल के बजट का किसानों को विशेष रूप से इंतजार था। लेकिन 90 मीनट के अपने भाषण में बमुश्किल अढ़ाई तीन मिनट मे कुछ इधर-उधर की बातों कर वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण ने खेती किसानी का मामला निपटा दिया। बजट का राजनीतिक संदेश साफ था। 3 किसान विरोधी कानूनों को वापस लेने को यह सरकार किसानों से मिली सीख की तरह नहीं बल्कि अपमानजनक हार के रूप में देखती है और इस ऐतिहासिक आंदोलन से मिली हार का बदला किसान से लेने पर आमदा है। किसान आंदोलन के केंद्र में रही एमएसपी सीधे किसानों के खाते में भेजने का ऐलान किया है। इस सत्र में 163 लाख किसानों से 1208 मीट्रिक टन गेहूँ और धान खरीदा जाएगा बजट भाषण में वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण ने कहा कि एमएसपी के जरिए किसानों के खाते में 2.37 लाख करोड़ रुपए भेजे जाएंगे, लेकिन बजट में इस बात का कोई उल्लेख नहीं किया गया है कि सभी किसानों की फसल एमएसपी पर खरीदी कै??

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

ड्रोन: कृषि के लिए एक क्रांतिकारी उपकरण

डॉ. अनिल कुमार सिंह (वरिष्ठ वैज्ञानिक)
डॉ. एस.के. सिंह (वरिष्ठ वैज्ञानिक)
डॉ. आर.के.एस. तोमर (प्रधान वैज्ञानिक)
कृषि विज्ञान केन्द्र, दतिया (म.प्र.)

समय के साथ कृषि में भी परिवर्तन तेजी से हो रहा है। पहले के समय में कृषि कार्य के लिए ज्यादा मजदूरों की आवश्यकता होती थी। और मजदूर आसानी से मिल भी जाते थे परन्तु बढ़ते समय के साथ कृषि में मजदूरों की संख्या कम होने लगी इस कमी को पूरी करने के लिए तकनीकी का सहारा लिया। और आज के समय में हम कृषि के लगभग सभी क्षेत्रों में मशीनी टूल्स और कई तरह के तकनीक का उपयोग कर रहे हैं। इन्हीं तकनीकों में ड्रोन **(Unmanned Aerial Vehicles)** एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

ड्रोन (मानवरहित हवाई वाहन) एक आधुनिक युग का चालक रहित विमान है इसे कहीं दूर से रिमोट या कम्प्यूटर द्वारा चलाया जा सकता है। एक सामान्य ड्रोन की संरचना चार विंग यानि पंखोवाला होता है। इसलिए इसे क्वाड कॉप्टर भी कहा जाता है। असल में यह नाम इसके उड़ने के कारण इसे मिला यह बिल्कुल एक मधुमख्खी की तरह उड़ता है और एक जगह पर स्थिर भी रह सकता है। पिछले 10-15 वर्षों मेंए रेडियो नियंत्रित मॉडल से उच्च प्रौद्योगिकी परिवर्तनों के साथए ड्रोन विभिन्न प्रकार के कार्यों से एकीकृत हैं?

मूल रूप से ड्रोन प्रौद्योगिकी विमान-रोधी लक्ष्यों का संचालन करने, खुफिया जानकारी जुटाने और दुश्मन के कुछ क्षेत्रों पर नजर रखने के लिए सेना द्वारा नियोजित की जाती थी परन्तु आजकल ड्रोन तकनीक का उपयोग आम नागरिकों द्वारा भी विभिन्न प्रकार के लिए कार्यों मे किया जाता है। कृषि में अभी तक ड्रोन का उपयोग कुछ ही जगह पर किया जा रहा है। इसलिए कृषि में यूएवी यानि मानव रहित हवाई वाहन के उपयोग की काफी संभावनाए हैं। यूएवी एसोसिएशन इंटरनेशनल ने हर साल 85-92% की वार्षिक वृद्धि विशेष रूप से कृषि के बाजार में दर्ज की है। वास्तव में कृषि ड्रोन बाजार आने वाले वर्षों में 38% से अधिक बढ़ने की उम्मीद है। बढ़ती जनसंख्या स्तर और बदलते जलवायु पैटर्न के कारण कुशल कृषि की आवश्यकता अधिक महत्वपूर्ण होती जा रही है।

यूएवी के प्रकार: यूएवी के चार प्रमुख प्रकारों की पहचान की जाती है जो हैं-

मल्टी रोटर यूएवी, फिक्स्ड-विंग यूएवी, सिंगल रोटर हेलीकाप्टर, फिक्स्ड-विंग-मल्टी-रोटर हाइब्रिड यूएवी

कृषि में यूएवी का अनुप्रयोग: ड्रोन तकनीक अधिक समय लेने वाली तकनीक और कठिन कार्यों को पूरा करने में मदद कर सकती है। बदलते परिवेश में जब कृषि एक उद्योग का रूप लेने की ओर अग्रसर है ड्रोन अपनी जगह बना रहे है। तकनीक के परिपक्व होने और नई तकनीक विकसित होने के साथ कृषि में ड्रोन के उपयोग की उम्मीद बढ रही है और भविष्य में इसके इस्तेमाल की काफी संभावनाएं है।

वर्तमान में कृषि क्षेत्र मे ड्रोन के छह सामान्य उपयोग हो रहे हैं जिन्हे नीचे प्रस्तुत किया गया हैं-

फसल और स्पॉट छिड़काव

उच्च पैदावार बनाए रखने के लिए फसलों को लगातार निषेचन और छिड़काव की आवश्यकता होती है। फसल छिड़काव आम तौर पर किसानों और कृषि उत्पादन कंपनियों के लिए एक कठिन और बोझिल काम है। यूएवी ने किसानों के लिए फसल छिड़काव को सरल बनाया है। वे बहुत कम समय में भूमि के बड़े विस्तार को कवर कर सकते हैं। सेंसर का उपयोग करते हुएए यूएवी असमान क्षेत्रों में छिड़काव करते समय स्वचालित रूप से अपनी ऊंचाई समायोजित करते हैं। यह छिड़काव सटीकता में सुधार करता है और संसाधनों का संरक्षण करता है। फसल के छिड़काव के लिए यूएवी का उपयोग करने से समय और लागत की बचत होती है।

मृदा और क्षेत्र विश्लेषण

ड्रोन फसल चक्र की शुरुआत में महत्वपूर्ण योगदान दे रहें हैं। वे शुरुआती बुवाई विश्लेषण के लिए सटीक 3-डी नक्शे को बनाते हैंए बीज रोपण पैटर्न की योजना बनाने में उपयोगी होते हैं। ये आंकड़े किसान को सिंचाई योजनाओं को बनाने में मदद करते हैं और साथ ही रोपण के बाद मिट्टी या खेत में आवश्यक उर्वरक की मात्रा निर्धारित करते हैं। डेटा-संचालित दृष्टिकोण का उपयोग करकेए किसान कृषि उपज की कुल उपज मात्रा में सुधार कर सकते हैं। यह सब यूएवी के साथ कैप्चर की गए दूरस्थ चित्रों के विश्लेषण के माध्यम से संभव है।

जल प्रबंधन व सिंचाई

हाइपरस्पेक्ट्रल, मल्टीस्पेक्ट्रल या थर्मल सेंसर वाले ड्रोन यह पहचानते हैं कि किसी क्षेत्र के कौन से हिस्से सूखे हैं या उनमें सुधार की जरूरत है। इसके अतिरिक्त, एक बार फसल के उगने के बाद, ड्रोन वनस्पति सूचकांक की गणना करने की अनुमति देते हैंए जो फसल के सापेक्ष घनत्व और स्वास्थ्य का वर्णन करता है। इस तरह की सटीक और विशिष्ट निगरानी पारंपरिक खेती के साथ भी संभव नहीं थी। यह इसलिए सटीक कृषि में जल प्रबंधन और सिचाई के लिए एक मूल्यवान उपकरण बन जाता है।

बीज रोपण

बीजाई एक महंगा और बोझिल काम है जिसमे परम्परागत रूप से बहुत अधिक जनशक्ति की आवश्यकता होती है। यूएवी ने किसानों के लिए फसल रोपण को सरल बनाया हैए जिसमें बड़ी क्षमता और कम समय के भीतर बड़ी एकड़ भूमि को कवर करने की क्षमता है। आज के उच्च अंत यूएवी खेती तकनीक यूएवी-संचालित रोपण तकनीक प्रदान करती है जो रोपण लागत को 85% तक कम करती है।

फसल की निगरानी

बड़े पैमाने पर खेतों में कम दक्षता और फसल की निगरानी आज खेती को सबसे बड़ी बाधा बनाती है। निगरानी की चुनौतियों को अप्रत्याशित मौसम की स्थिति में वृद्धि से जटिल किया जाता है जिससे जोखिम और क्षेत्र रखरखाव की लागत बढ़ जाती है। एक कृषि यूएवी किसान को इन चुनौतियों में से कुछ को दूर करने में मदद करता है। थर्मल इमेजिंग कैमरों वाले यूएवी किसान को अपने खेत की निगरानी करने में सक्षम बनाते हैं। किसान खेत में फसलों की स्थिति की जांच कर सकता हैए साथ ही उन क्षेत्रों पर ध्यान रख कर बेहतर उपज और अधिक लाभ प्राप्त कर सकता है। ड्रोन दूरस्थ पशुधन चरागाहों की निगरानी करने में सहायक हो सकते है।

फसल स्वास्थ की स्थिति का इमेजिंग

खेत पर फफूंद और जीवाणु जनित रोगों का पता लगाने के लिए कृषि स्वास्थ्य का आकलन महत्वपूर्ण है। ड्रोन के साथए फसल स्वास्थ्य इमेजिंग को अवरक्त, एनवीडीआई और मल्टीस्पेक्ट्रल सेंसर का उपयोग करके किया जा सकता हैए जिससे किसानों को बेहतर फसल स्वास्थ्य, वाष्पीकरण दर और सूर्य के प्रकाश अवशोषण दर आदि की अनुमति मिलती है और शुरुआती हस्तक्षेप के लिए खेतों के स्वास्थ्य से जोड़ा जा सकता हैं जो अंततः खेत का संपूर्ण बचाव करता है। ड्रोन का एक बेहतरीन इस्तेमाल पिछले दिनों महाराष्ट्र में देखने को मिला जब सूखा राहत के लिए सूखे का सर्वेक्षण कराने का काम राज्य सरकार ने ड्रोन्स के हवाले किया। ऐसा ही एक और अच्छा उदाहरण हरियाणा में देखने को मिला जब फसल क्षति के मूल्यांकन का काम ड्रोन्स की सहायता से किया गया।

ड्रोन की आवश्यकता एवं संभावनाएं

कृषि कार्य करने वाले कुशल व्यक्ति एवं मजदूरों की कमी व समय पर कार्य खत्म करने का बोझए सटिकता एवं सुरक्षित तरीके से काम करने की चाहतए इन सब परेशानियों के लिए ड्रोन तकनीक वरदान बनकर किसानों के सामने प्रस्तुत हुई है। इसके इस्तमाल से मुस्किल से मुस्किल समस्यों को आसानी से हल कर सकते है। इस तकनीक ने कृषि के लगभग सभी क्षेत्रों में अपनी उपस्थिति शानदार तरीके से दर्ज कराई है। वर्तमान समय में यह कहना भी गलत होगा की यह तकनीक पूर्ण रूप से स्थाई हो चुकी है क्योंकि अभी भी इसमें कमियां मौजूद है जैसे इसकी वजन उठाने की क्षमता और लघु किसानों के लिए कीमत की समस्या आदि अस्थायी रूप से है। और हम यह उम्मीद करते है की समय के साथ इन सब कमियों का भी निपटारा हो जाएगा।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

ड्राइ काउ थैरेपी (डी.सी.टी.)

डॉ. नीरज श्रीवास्तव
डॉ. अर्पिता श्रीवास्तव
डॉ. धर्मेन्द्र कुमार
डॉ. पी.के. सिंह
डॉ. अमित कुमार झा
डॉ. राजीव रंजन

पशु चिकित्सा एवं पशुपालन महाविद्यालय रीवा (म.प्र.)

ड्राइ पीरियड क्या है ?

दुधारू गाय मे ड्राइ पीरियड उनके नेक्टेशन पीरीयड की एक महत्वपूर्ण समय है। दुधारू गाभिन गाय में दूध सुखाने के लिए अंतिम दूध दुहने के दिवस से बछड़े के जन्म लेने की अवधि को ड्राइ पीरियड कहते हैं। यह अवधि सामान्यतः लगभग 60 दिन की होनी चाहिए। यह एक ऐसा चरण है जिसमे पशु में कई हारमोनल बदलाव होते है, जिससे संक्रमण की संभावना बहुत बढ जाती है।

ड्राइ पीरियड और थनैला रोग में क्या संबंध ?

- ड्राइ पीरियड के शुरूआत के दो सप्ताह में थनैला होने की संभावना अधिक होती है। इस दौरान गाय के प्रत्येक थने में कैराटिन का प्लग (डट्टा) बनता है जो थन को संक्रमण से बचाता है। परन्तु जब यह कैराटिन प्लग ठीक से नहीं बन पाता है या देर से और कमजोर बनता है तो थनैला होने की संभावना बढ़ जाती है।
- ड्राइ पीरियड के अंतिम दो सप्ताह में कैराटिन प्लग धीरे-धीरे गल जाता है और थन ब्यात के लिये तैयार होता है। क्लोर में ब्यात के तुरंत बाद होने वाले थनैला का मुख्य कारण इस अवधि का संक्रमण होता है।
- यदि पूर्व के दूध देने की अवधि (लैक्टेरान पीरियड) के समय थन में संक्रमण रह गया हो तो ऐसे छिपा हुआ थनेला ड्राइ पीरियड में बढ़ जाता है और ब्यात के बाद होने वाले थनैला का कारण बनता है। 60% थनैला जो लैकटेशन पीरियड (दूध देने की अवधि) में होते हैं उनकी शुरूआत ड्राइ पीरियड के संक्रमण के समय होती है।

ड्राइ काउ थेरेपी (डी.सी.टी.) क्या है ?

- ड्राइ पीरियड (शुष्क अवस्था) में प्रवेश के दिवस में अंतिम दूध दुहने के तुरंत बाद विशेष प्रकार के एंटीबायोटिक को थनों में डालने को ड्राइ काउ थैरेपी कहते हैं।

ड्राइ काउ थेरेपी के फायदे?

- ड्राइ पीरियड में थनेला का सफलतापूर्वक इलाज की संभावना अधिक होती है क्योंकि इस अवधि में एंटीबायोटिक लम्बे समय तक थन के ग्रंथियों में असर कर पाती है।
- ड्राइ पीरियड के समय ज्यादा मात्रा में एंटीबायोटिक सुरक्षित तरीके से उपयोग किया जा सकता है।
- ज्यादा समय तक एंटीबायोटिक थन में रहने से थन के उत्तक (टीशु) व ग्रंथ को पुनः स्वस्थ अवस्था में आने में मदद मिलती है।

ड्राइ काउ थेरेपी की सावधानियॉ

- बाजार में उपलब्ध ड्राइ काउ थेरेपी के लिये प्रयुक्त इंटरा मैरी इफ्यूशन का ही उपयोग करें। ऐसे प्रोडक्ट खास डी.सी.टी. को ध्यान में रख कर बनाए गए हैं।
- ड्राइ पीरियड में गाय को साफ,स्वच्छ और सूखा वातावरण में रखें। सिर्फ डी.सी.टी. से फायदा नहीं होगा।
- ड्राइ काउ को संतुलित आहार देना चाहिए जिसमे उर्जा एवं फाइबर की उचित मात्रा खिलाना चाहिए।
- पशु को हीट स्ट्रेस से बचाना चाहिए क्योंकि ड्राइ पीरीयड मे हीट स्ट्रेस के कारण लेक्टेशन पीरीयड मे दूध उत्पादन कम हो जाता है।
- डेयरी में सभी गायों को करना है या सिर्फ चिन्हित गायों को करने के निर्णय हेतु पशु चिकित्सक की सलाह लेवें।
- डी.सी.टी. के प्रयोग विधि को अक्षरः अपनाएं।

घोषणा-पत्र

मध्य भारत कृषक भारती हिन्दी मासिक पत्र का विवरण

समाचार पत्र का नाम	:	**मध्य भारत कृषक भारती**
समाचार पत्र की भाषा	:	हिन्दी
समाचार पत्र की अवधि	:	मासिक
समाचार पत्र का प्रकाशन का स्थान	:	ई.एम.-120, कुशवाह मार्केट के पास, दीनदयाल नगर, ग्वालियर (म.प्र.)
स्वामित्व का विवरण व पद एवं पूरा पता	:	राजू गुर्जर सी-5, बलराम नगर, भिण्ड रोड, गोला का मंदिर, ग्वालियर (म.प्र.)
प्रकाशक का नाम	:	राजू गुर्जर
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	सी-5, बलराम नगर, भिण्ड रोड, गोला का मंदिर, ग्वालियर (म.प्र.)
संपादक का नाम	:	राजू गुर्जर
पता	:	सी-5, बलराम नगर, भिण्ड रोड, गोला का मंदिर, ग्वालियर (म.प्र.)
जिस स्थान पर मुद्रण का काम होता है उसका सही तथा ठीक विवरण	:	सर्वोदय प्रिंटिंग प्रेस महाणिक की गोठ, जनक हॉस्पीटल के पीछे, कम्पू रोड, लश्कर ग्वालियर (म.प्र.)
प्रकाशन का स्थान	:	ई.एम.-120, कुशवाह मार्केट के पास, दीनदयाल नगर, ग्वालियर (म.प्र.)

मैं **राजू गुर्जर** घोषणा करता हूँ कि **मध्य भारत कृषक भारती** मासिक पत्र के संबंध में दिए गए उपरोक्त सभी विवरण सही और सत्य हैं।

हस्ताक्षर
राजू गुर्जर
(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

दिनांकः 01 मार्च 2022

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

लसोड़ा- इसके उपयोग एवं महत्व

शुभम सिंह राठौर, निहारिका राठौर
(उद्यानिकी विभाग)
शुभम भदौरिया (विस्तार शिक्षा विभाग)
राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि
विश्वविद्यालय ग्वालियर (म.प्र.)

लसोड़ा (कॉर्डिया मायक्सा) एक बड़ा सदाबहार झाड़ी या घने क्राउन वाला पेड़ है, जो 12 मीटर तक लंबा हो सकता है। गूदा मोटा होता है, एक व्यापक रूप से इस्तेमाल किया जाने वाला, बहुउद्देश्यीय पेड़, इसे अक्सर स्थानीय उपयोग के लिए भोजन, दवा और सामग्री के स्रोत के रूप में जंगल से काटा जाता है। इसकी खेती का एक लंबा इतिहास है, प्राचीन मिस्र के समय में इसके औषधीय और खाद्य उपयोगों के लिए जाना गया है, और यह अभी भी उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय के कई क्षेत्रों में खेती में है। इसे एवेन्यू ट्री और सजावटी के रूप में भी उगाया जाता है। लसोड़े को गुंडा फल भी कहा जाता है।

पौधे उष्ण समशीतोष्ण से उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में उगाये जा सकते हैं। यह कुछ ठंढ सहन कर सकता है। पौधे धूप वाली स्थिति पसंद करते हैं, लेकिन मध्यम छाया को सहन कर सकते हैं। एक नम, स्वतंत्र रूप से बहने वाली दोमट मिट्टी को तरजीह देता है। स्थापित पौधे सूखा सहिष्णु हैं। काफी तेजी से बढ़ने वाला पौधा, यह 3-5 साल की उम्र में फूलना शुरू कर देता है। डायोसियस, फल और बीज पैदा करने के लिए कम से कम एक नर पौधे को 5 मादा पौधे के साथ उगाया जाना चाहिए।

खाद्य उपयोग

- **फल:** कच्चा या पका हुआ। पके फल में एक मीठा, चिपचिपा, श्लेष्मायुक्त गूदा होता है, इसे शहद के साथ मिलाकर मिठाई बनाई जा सकती है या दलिया और दलिया को मीठा किया जा सकता है।
- फल का उपयोग अचार बनाने के लिए किया जाता है। कच्चे फलों को सब्जी के रूप में खाया जाता है।
- अंडाकार फल लगभग 35 मिमी व्यास का होता है। बीज- कच्चा, इसका स्वाद कुछ हद तक फिलाबर्ट नट (कोरिलस मैक्सिमा) जैसा होता है। बीज तैलीय होता है, जिसमें पामिटिक, स्टीयरिक, ओलिक और लिनोलिक एसिड और बीटा सीटोस्टेरॉल होता है।
- **फूल:** सब्जी के रूप में प्रयोग किया जाता है। पत्ते और नयी शाखा-पका कर सब्जी के रूप में उपयोग किया जाता है।

औषधीय उपयोग

- लसोड़ा (कॉर्डिया मायक्सा) का प्राचीन मिस्रवासियों के समय से औषधीय उपयोग का एक लंबा और सिद्ध इतिहास है। छाल, पत्ते और फल सभी में औषधीय गुण होते हैं, जो श्लेष्म का एक समृद्ध स्रोत होते हैं और उनके मूत्रवर्धक और कमजोर गुणों के लिए विभिन्न प्रकार से मूल्यवान होते हैं। इनका उपयोग विशेष रूप से पेट दर्द, खांसी और छाती की शिकायतों के उपचार में किया जाता है।
- फल का चिपचिपा, श्लेष्मा गूदा हल्का, श्लेष्मा और रेचक होता है। निकट से संबंधित कॉर्डिया डाइकोटोमा के साथ यह निकट और मध्य पूर्व में एक प्रसिद्ध दवा का स्रोत है। इसे सपिस्तान भी कहा जाता है, यह खांसी, गले में खराश, छाती-शिकायत और मूत्र मार्ग की जलन के उपचार में उपयोगी है क्योंकि इसमें सूजन कम करने वाले और श्लेष्म जैसे गुण पाए जाते हैं।
- बड़ी मात्रा में इसका उपयोग रेचक के रूप में और पित्त संबंधी शिकायतों के उपचार में किया जाता है। फोड़े को परिपक्व करने, आमवाती दर्द को शांत करने और दाद के लिए एक एंटीपैरासिटिक उपचार के रूप में फल का बाहरी रूप से उपयोग किया जाता है।
- बुखार के इलाज में छाल का रस आंतरिक रूप से लिया जाता है।
- नारियल के तेल के साथ मिलाकर, यह पेट के दर्द के इलाज के लिए लिया जाता है।
- इसकी छाल का पाउडर त्वचा पर प्लास्टर लगाने से पहले टूटी हड्डियों के मामलों में लगाया जाता है, ताकि उपचार में सुधार हो सके।
- त्वचा रोगों के उपचार में छाल के पाउडर का बाहरी रूप से उपयोग किया जाता है। पत्तियों में स्टेरियोल और एक गोंद दर्ज किया गया है।
- पत्तियों और फलों में पाइरोलिज़िडिन एल्कलॉइड, कौमारिन, फ्लेवोनोइड्स, सैपोनिन, टेरपेन्स और स्टेरोल्स होते हैं।

अन्य उपयोग

- तने की छाल से प्राप्त एक रेशे का उपयोग सुतली और डोरी बनाने के लिए किया जाता है। फाइबर का उपयोग नावों को ढकने के लिए भी किया जाता है। रेशेदार छाल का उपयोग कॉर्डेज के लिए किया जाता है।
- हरी पत्तियों का उपयोग मोरिंडा टिनक्टोरिया के साथ रंगाई के लिए किया जाता है। फलों के रस का उपयोग डाई के रूप में किया जाता है। फल में एक ऐसा पदार्थ होता है जो लिनेन को स्थायी रूप से रंग दे देता है।
- नयी शाखाओं की राख का उपयोग साबुन बनाने के लिए किया जाता है।
- फल का चिपचिपा, श्लेष्मा गूदा गोंद के रूप में प्रयोग किया जाता है।
- पत्तियों का उपयोग प्लेटों के रूप में किया जाता है।
- लकड़ी का उपयोग ईंधन के रूप में किया जाता है।
- पीले-भूरे रंग की लकड़ी नरम लेकिन मजबूत, पॉलिश करने में आसान होती है। इसका उपयोग फर्नीचर बनाने, कैबिनेट के काम, कुएं, नावों और कृषि उपकरणों के लिए किया जाता है।
- लकड़ी एक उत्कृष्ट ईंधन बनाती है।
- मिट्टी के कटाव को रोकने के लिए पौधे का उपयोग अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में आश्रय-बेल्ट में किया जाता है।
- यमन में कॉफी बागानों में छायादार पेड़ के रूप में उपयोग किया जाता है।

ISSN-2582-5976

आम में वर्षभर की जाने वाली-क्रियाएं

शेख रूबीना ए.एससी. (कृषि) (मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन) महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय सतना (म.प्र.)

रामलला पटेल एम.एससी. (कृषि) शोध छात्र (आनुवंशिकी एवं पादप प्रजनन) बुंदेलखंड विश्वविद्यालय झांसी (उ.प्र.)

शिवम कुशवाहा एम.एससी. (कृषि) शोध छात्र (आनुवंशिकी एवं पादप प्रजनन) बुंदेलखंड विश्वविद्यालय झांसी (उ.प्र.)

आम को भारत में कई वर्षों से उगाया जा रहा है। इसका उल्लेख भी कई संस्कृत साहित्य के रूप में किया जाता है। आम उत्पादन में भारत का प्रथम स्थान है। पूरे विश्व के उत्पादन का 50 प्रतिशत भारत में उगाया जाता है।

आम को लगाने से लाभ

1. आम की छाल का उपयोग डायरिया रोग के इलाज में भी किया जाता है। 2. आम में मौजूद अलग एंटीऑक्सीडेंट ल्यूकोमिया, कोलोन, प्रोस्टेट, कोलेसट्रल को कम करते है। 3. मधुमेह में भी उपयोगी है। 4. आम के फल में विटामिन- ए पाया जाता है, जो रतौधी रोग से बचाता है।

मृदा: आम को विभिन्न प्रकार की मिट्टी पर उगाया जा सकता है। 7.8 से अधिक पी-एच वाली मृदा में आम का उत्पादन अच्छा नहीं होता है। 6.5से7.5 के बीच-पी एच वाली जलोढ़ मृदा , आम के उत्पादन के लिए उपयुक्त मानी जाती है।

जलवायु: आम का उष्णकटिबंधीय परिस्थितियों में भी अच्छा उत्पादन होता है। फूल आने के समय अगर बारिश और अचानक तेज ठंड पड़ने लगती है, तो यह हानिकारक हो जाता है। आम की फसल के लिए सबसे उपयुक्त तापमान 22.27 डिग्री से. है। फलों के आकार और गुणवत्ता में सुधार के लिए फलों की परिपक्वता पर बारिश लाभदायक साबित होती है।

प्रजातियां: अलफांसो, रत्नागिरि, दषहरी, लंगड़ा, चैसा, तोतापरी, नीलम, आम्रपाली, फजली, मल्लिका आदि प्रजातियाँ भारत में उगाई जाती है। अलफांसो का भारत से निर्यात भी किया जाता है, आम की बीज रहित किस्म सिन्धु है।

आम में वर्ष भी की जाने वाली क्रियाएं: आम में अगर वर्ष भर सभी कृषि-क्रियाएं सही तरीके से की जाए तो आम का उत्पादन और तेजी से बढ़ेगा।

रोपण तकनीक: आम के पौधों को मानसून जून-जुलाई की शुरूआत में लगाना चाहिए। भारी वर्षा वाले क्षेत्रों में रोपण वर्षा ऋतु के अंत में करना चाहिए। दीमक के नुकसान से बचने के लिए 1 मी.×1 मी. × 1 मी. के गड्ढ़े को खेदना चाहिए।

रोपण की दूरी: मिट्टी की गहराई और लगाए गए किस्म पर निर्भर करती है। जहां सिंचाई पर आम की खेती निर्भर करती है, वहाँ पर फरवरी-मार्च में पौधों को लगाना चाहिए।

कटाई-छंटाई: आम के पेड़ों को एक निष्चित आकार देने के लिए उनकी कटाई-छाँटाई आवष्यक है।

आवश्यक पोषक तत्व प्रदान करना: उर्वरकों को दो भागों में विभाजित कर लेते हैं, आधी मात्रा को जून-जुलाई में फलों की कटाई के तुरंत बाद और दूसरी मात्रा को जून-जुलाई में फलों की कटज्ञई के तुरंत बाद नये और पुराने पेड़ों में देते हैं।

फूल की अवस्था के पहले रेतीली मिट्टी में 3% यूरिया की फोलिअर आवेदन की सिफारिष आम की खेती के लिए अच्छी होती है।

पौधों की आयु (वर्ष में)	उर्वरक की मात्रा
1	100 ग्राम नत्रजन, 50 ग्राम फास्फोरस, 100 ग्राम पोटाष
10	1 किलो ग्राम नत्रजन, 500 ग्राम फास्फोरस, 1 किलो ग्राम पोटाश
11	उपरोक्त के रूप में

सिंचाई करना:नये पौधों की उचित स्थापना के लिये पानी दिया जाता है। बड़े पौधों को उपज में सुधार के लिए फल आने से परिपक्वता तक 10 से 15 दिनों के अन्तराल पर सिंचाई करना फायदेमंद होता है। हालाँकि फूल आने से पहले 2-3 महीने पहले सिंचाई की सलाह नहीं दी जाती है, क्योकि इससे फूलों की कीमत पर वानस्पतिक विकास को बढ़ावा मिलता है। बेहतर गुणवत्ता के लिए परिपक्वता से 20-30 दिन पहले सिंचाई बंद कर देनी चाहिए। जहाँ तक संभव हो बूंद-बूंद प्रणाली से सिचाई की जानी चाहिए। ड्रिप सिंचाई से न केवल पानी का संरक्षण होता है, बल्कि पानी के उपयोग की क्षमता भी बढ़ती है।

फलों को गिरने से कैसे बचाएं: फलों को गिरने से बचाने के लिये 1% (10 ग्रा/ली.पानी) पोटेशियम नाइट्रेट से छिडकाव करना चाहियें। फूलों की अवस्था में 20 पी.पी.एम. एन ए ए (20 मि.ग्रा./ ली.पानी) से 15 दिन के अन्तराल में छिडकाव करना चाहिए। फलों के विकास के समय अत्यधिक पानी फल गिरने हेतु जिम्मेदार माना जाता है।

नये पौधो की देखभाल: एक या दो महीने के लिए 4-7 दिनों के अंतराल पर हल्की सिचाई करें। तेज वेग वाली हवाओं के कारण ग्राफटस को क्षतिग्रस्त होने से बचाने के लिए लकडी के टुकडो के निचले हिस्से को कोयले में डुबोया जाता है, ताकि सफेद चींटियो के हमले की जाँच की जा सके।

ठंड मे सुरक्षा: नये आम के पौधे कम तापमान और कोहरा के लिए अतिसंवेदनषील होते है। सर्दियों के महीनो के दौरान क्षेत्र की स्थिति में मिटटी की नमी बनायें रखने के लिए सिचाई करें। बागो के तापमान को बनाए रखने के लिए बागो में कुछ स्थानों पर सूखी घास/खरपतवार को जला देना चाहिए आम के वृक्षारोपण को कुहरा से बचाने के इन सभी उपायों को एक साथ किया जाना चाहिए।

ग्रीष्म ऋतु मे सुरक्षा: नये पौधो को लू से बचाने के लिए कई कृषि क्रियाए करते है। अरहर के पौधो को आम के चारो ओर लगा देते है। अप्रैल महीने में पौधो के तना को सफेद कागज व सफेद रंग पुताई करनी चाहिए।

फल तुड़ाई: पुष्प अवस्था के 3-4 महीने बाद फल का रंग हरा से हल्का हरा हो जाता है। जिससे परिपक्वता का पता चलता है। भारत में ज्यादातर आम की तुड़ाई मार्च से मई महीने के बीच की जाती है। 2-3 टन/एकड उपज प्राप्त होती है, यह पौधे की आयु पर भी निर्भर करती है।

ग्रेडिग और पैकेजिंग: तुडाई के बाद फलों को नीचे छाया मे रखा जाता है। बक्से या टोकरी में रखने से पहले ग्रेडिंग की जाती है। फलों को वजन ग्रेड ए 100-200 ग्राम बी 200-350 ग्राम, सी 351-550 ग्राम, और डी 551-600 ग्राम, के अनुसार वर्गीकृत किया गया है। विभिन्न ग्रेड लकडी के बक्से या टोकरी में पैक किये जाते है। एक टोकरी, 50-100 फल हो सकते है। पैंकिग के लिये पुआल का उपयोग किया जाता है। दूर के विपणन के लिए लकडी के बक्से का उपयोग किया जाता है। एक डिब्बे में 100 किलो फल हो सकते है। फलों की पर्त को दुसरी पर्त से बचाने के लिए कचरा और कागज का उपयोग किया जाता है। छिद्रितकार्ड बोर्ड का भी उपयोग किया जा रहा है।

संग्रहण: तुडाई के बाद के नुक्सान को कम करना आय बढाने का एक महत्वपूर्ण कारक है। हरे लेकिन परिपक्व आम 10-15 डिग्री.सेल्सियस के इष्ठतम तापमान पर ठंडे भंडारण में संग्रहीत किये जाते है। यदि आम को नियंत्रित वातावरण में संग्रहीत किया जाता है, तो ऑक्सीजन 3.7% और कार्बनडाई ऑक्साइड 5-8% होना चाहिए।

शारीरिक विकार

वैकल्पिक असर: दक्षिण भारतीय खेती इससे बहुत प्रभावित होती है। लेकिन लगडा,चैसा,रामपुर गोला उत्तर भारत में वैकल्पिक वाहक है। दशहरी और आम्रपाली नियमित रूप से वाहक है। इसलिए नियमित असर वाली खेती करने की सलाह दी जाती है। पेड के टहनियों में पैक्लोबुटाजोल का 5 ग्राम/वृक्ष का उपयोग वैकल्पिक असर को कम करता है।

कुरूपता: यह आम की खेती को प्रभावित करने वाले विकारो में से एक है। एन.ए.ए. के 100 पी.पी.एम. को दो बार स्प्रे करें अर्थात अक्टूबर के पहले सप्ताह में और फिर नवम्बर के पहले सप्ताह में।

स्पंजी ऊतक: यह एक प्रकार का शारीरिक विकार है। जो आमतौर पर अल्फांसो किस्म को प्रभावित करता है। प्रभावित फल खराब गंध देते है। और इसका सेवन नही किया जा सकता। खेत के आस-पास मिट्टी को नमी बनाए रखने से इस विकार से बचा जा सकता है।

कीट प्रबंधन

मैंगों मिली बग: यह जनवरी से अप्रैल तक फूलों और फलने की अवस्था के दौरान पौधो पर हमला करता है।

इसके नियंत्रण के लिए कई विधियाँ अपनानी चाहिए-

- खरपतवारों को खास तौरपर पार्थेनियम (कांग्रेस घास) नष्ट कर दें।
- टॉक्सोफेन 225 ग्राम/वृक्ष मृदा पर उपयोग करना चाहिए।

स्टेम बोरर: कभी-कभी यह एक गंभीर कीट बन जाता है, और पेड़ के तनों पर हमला करता है।

एक कठोर तार के साथ सुरंग को साफ करें, और मिट्टी के तेल में भीगे कॉटन को सुरंग में रखे।

मैंगों फल मक्खी: यह दुनिया के सभी आम उगाने वाले क्षेत्रों का सबसे गंभीर कीट है।

इसके प्रबंध के लिए कई तरीके अपनाने चाहिए-

- पुष्प क्रम से पहले खेत की जुताई करें
- मई से शुरू होने वाले 20 दिनों के अंतराल पर क्लोरोपायरीफॉस 20 ई.सी./ दो मिली./ली. पानी के तीन स्प्रे करें।

अंडो को मारने और कीटनाषक अवशेशों को हटाने के लिए 1 घण्टे के लिए 5% सोडियम क्लोराइड के घोल में फलों को डुबोएं।

ISSN-2582-5976

ब्रूसेलोसिस (ब्रूसैला): पशुओं से इंसानों में पहुंचती यह बीमारी

पशुओं को ब्रूसेलोसिस का टीका, जानें क्यों जरुरी है

डॉ. जयवीर सिंह राजपूत
डॉ गयाप्रसाद जाटव
डॉ. सुप्रिया शुक्ला
डॉ. विशम्भर दयाल शर्मा
पशु चिकित्सा एवं पशुपालन
महाविद्यालय,पैथोलॉजी विभाग महू
डॉ. ब्रह्मप्रकाश शुक्ला
(पशु चिकित्सा एवं पशुपालन
महाविद्यालय, सर्जरी विभाग महू)
डॉ. मुकेश शाक्य
(पशु चिकित्सा परजीवी पशु विभग
चिकित्सा महू) इंदौर (म.प्र.)

ब्रूसेलोसिस रोग मुख्यतः गाय, भैंस, भेड़, बकरी, सुअर एवं कुत्तों में फैलने वाली संक्रामक बीमारी है, जो पशुओं से मनुष्यों में एवं मनुष्यों से पशुओं में फैलती है. संक्रमण मनुष्य में संक्रमित सामग्री जैसे कि जन्म के समय निकलने वाले पदार्थ के साथ पशुओं के प्रत्यक्ष संपर्क या पशु उत्पाद सेवन से अप्रत्यक्ष या हवा में उपस्थित वातानीत एजेंटों को सांस के भीतर लेने से फैलता है। इस बीमारी से ग्रस्त पशुओं में 7-9 महीने के गर्भकाल में गर्भपात **(Abortion)** हो जाता है. ये रोग पशुशाला में बड़े पैमाने पर फैलता है तथा पशुओं में गर्भपात हो जाता है जिससे गर्भपात और कम उत्पादन की वजह से सालाना 20 हजार करोड़ रुपये का नुकसान होता है।

लक्षण

पशुओं में गर्भावस्था की अंतिम तीन महीनों में गर्भपात होना इस रोग का प्रमुख लक्षण है. गर्भपात के बाद चमड़े जैसा जेर का निकलना इस रोग की खास पहचान है. पशुओं में जेर का रूकना एवं गर्भाशय की सूजन एवं नर पशुओं में अंडकोष की सूजन इस रोग के प्रमुख लक्षण हैं. पैरों के जोड़ों पर सूजन आ जाती है.मनुष्य को इस रोग में तेज बुखार आता है जो बार-बार उतरता और चढ़ता रहता है तथा जोड़ों और कमर में दर्द भी होता रहता है।

रोग का कारण

गाय, भैंस में ये रोग ब्रूसेल्ला एबोरटस नामक जीवाणु द्वारा होता है। ये जीवाणु ग्याभिन पशु की बच्चेदानी में रहता है तथा अंतिम तिमाही में गर्भपात करता है। एक बार संक्रमित हो जाने पर पशु जीवन काल तक इस जीवाणु को अपने दूध तथा गर्भाश्य के स्त्राव में निकालता है.

पशुओं में ब्रुसेल्लोसिस रोग संक्रमित **(Infected)** पदार्थ के खाने से, जननांगों के स्त्राव के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष कांटैक्ट से, योनि स्त्राव से, संक्रमित चारे के प्रयोग से तथा संक्रमित वीर्य से कृत्रिम गर्भाधान द्वारा फैलता है।

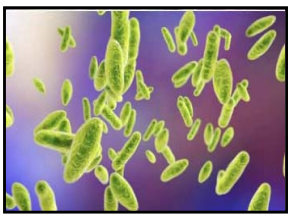

मानव में रोग का कारण

मनुष्यों में ब्रूसेल्लोसिस रोग सबसे ज्यादा रोगग्रस्त पशु के कच्चा दूध पीने से फैलता है. कई बार गर्भपात होने पर पशु चिकित्सक या पशु पालक असावधानी पूर्व जेर या गर्भाशय के स्त्राव को छूते हैं, जिससे ब्रूसेल्लोसिस रोग का जीवाणु त्वचा के किसी कटाव या घाव से भी शरीर में प्रवेश कर जाता है।

रोग की जांच

इस रोग का निदान रोगी पशु के योनि स्त्राव/दूध/रक्त/जेर की जाँच एवं रोगी मनुष्य के वीर्य/रक्त की जाँच करके की जा सकती है.

रोकथाम एवं बचाव

पशुओं में ब्रूसल्लोसिस की कोई सफल प्रमाणित चिकित्सा नहीं है. मनुष्यों में एंटीबायोटिक दवाओं के सहारे कुछ हद तक इस रोग के चिकित्सा में सफलता पायी गयी है.नए खरीदे गए पशुओं को ब्रुसेल्ला संक्रमण की जाँच किये बिना अन्य स्वस्थ पशुओं के साथ कभी नहीं रखना चाहिए.अगर किसी पशु को गर्भकाल के तीसरी तिमाही में गर्भपात हुआ हो तो उसे तुरंत फार्म के बाकी पशुओं से अलग कर दिया जाना चाहिए, क्योंकि उसके स्त्राव द्वारा अन्य पशुओं में संक्रमण फैल जाता है। अगर पशु को गर्भपात हुआ है तो खून की जाँच करानी चाहिए। आसपास के स्थान को भी जीवाणु रहित करना चाहिए.स्वस्थ गाय भैसों के बच्चों में 4-8 माह की आयु में ब्रूसेल्ला एस-19 वैक्सीन से टीकाकरण करवाना चाहिए।

टीकाकरण

पशुपालन विभाग पशुओं में ब्रुसेलोसिस (ब्रुसैला) टीकाकरण रोग को एक बार टीकाकरण करवा कर रोका जा सकता है, ताकि आगे आने वाले समय में यह बीमारी आपके जानवर को ना लगें. इसी के चलते ब्रूसेलोसिस रोग की रोकथाम **(Brucellosis Disease Prevention)** के लिए मध्यप्रदेश राज्य में निःशुल्क टीकाकरण अभियान चलाया जा रहा है।

मनुष्यों में ब्रूसेलोसिस का टीका नहीं

चिकित्सकों के अनुसार पशुपालन और जानवरों के मांस का काम करते है, उनके ब्रूसेलोसिस संक्रमित होने की आशंका अधिक रहती है। मनुष्यों के लिए ब्रुसेलोसिस का टीका नहीं आया है। केवल पशुओं में ब्रूसेलोसिस से बचाव के लिए टीकाकरण किया जाता है।

ISSN-2582-5976

बकरी : गरीब की गाय

डॉ. चारु शर्मा, डॉ. असद खान
डॉ. आदित्य सोनी, डॉ. वर्षा मिश्रा
पशु चिकित्सा एवं पशुपालन महाविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

मनुष्य अनादि काल से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से गाय के दूध का सेवन करता आ रहा है। दूध को हमेशा "पूर्ण भोजन" माना गया है। इसमें मानव शरीर के लिए आवश्यक सभी महत्वपूर्ण पोषक तत्व होते हैं और इसकी खपत हर साल बढ़ रही है द्य सांख्यिकीय रिपोर्टों के अनुसार 2021 में भारत में ही लगभग 83 मिलियन मीट्रिक टन दूध की खपत हुई थी। जब भी हम दूध के बारे में बात करते हैं, तो यह आमतौर पर गाय के दूध या भैंस के दूध का पर्याय बन जाता है।

हालांकि, हर किसान दूध उत्पादन के लिए गाय या भैंस नहीं पाल सकता। आवश्यक स्थान, श्रम, चारा लागत आदि सुविधाओं के अभाव में छोटे एवं सीमान्त किसानों के लिए गायों और भैंसों को पालना मुश्किल हो जाता है। ऐसे में बकरी पालन एक बहुत ही किफायती है। बकरियां पशुपालन में सबसे पहले पालतू जानवरों में से एक हैं। बकरियां न केवल मांस बल्कि दूध और ऊन भी प्रदान करती हैं और बड़े मवेशियों की तुलना में बकरियों को बहुत कम निवेश के साथ पाला जा सकता है। हमारे देश में बकरियों की लगभग सुवर्णित नस्लें पाई जाती हैं जिनमें जमनापारी, बर्बरी, बीतल, ब्लैक बंगाल एवं सिरोही आदि अपनी उत्पादक क्षमता हेतु देश भर में विख्यात हैं

बकरी पालन और इसके लाभ

बकरी पालन हेतु न्यूनतम निवेश की आवश्यकता होती है क्योंकि न तो उन्हें किसी विशेष प्रकार के राशन की आवश्यकता होती है, वे चरागाहों द्वारा अपनी आवश्यकता को पूरा कर सकते हैं और न ही उन्हें किसी विशेष आवास या बड़े स्थान की आवश्यकता होती है (उनके छोटे शरीर के आकार के कारण) इस प्रकार बकरी गरीब सीमांत किसानों के लिए वरदान साबित होती हैं। बकरियां बहुत विनम्र स्वभाव की होती हैं, इन्हें संभालना ज्यादा मुश्किल नहीं होता है। इसके अलावा, बकरियां विपुल प्रजनक हैं, वे लगभग 10-12 महीने की उम्र में यौन परिपक्वता प्राप्त करती हैं और गर्भधारण की अवधि भी कम (लगभग 150 दिन) होती है। वे पॉलीटोकस जानवर हैं, यानी, एक से अधिक बच्चों (मेमनों) को जन्म दे सकती हैं, वास्तव में बकरियों में जुड़वां बच्चों को जन्म देना बहुत आम है। बकरियां बहुत कठोर जानवर हैं, वे आसानी से सूखाग्रस्त क्षेत्रों में रह सकती हैं और कंटीली झाड़ियों, खरपतवार, फसल अवशेष व कृषि उप-उत्पादों पर अच्छी तरह से पनप सकती हैं।

बकरी का मांस त्योहारों के बीच बहुत लोकप्रिय है। उच्च पोषक तत्वों के अलावा, बकरी के मांस में कोलेस्ट्रॉल भी बहुत कम होता है इसलिए उच्च कोलेस्ट्रॉल वाले लोगों के लिए अपेक्षाकृत बेहतर होता है। बकरी पालन के आर्थिक मूल्यों में से एक यह है कि बकरी वध और मांस की खपत के खिलाफ कोई धार्मिक वर्जना नहीं है, वध और ड्रेसिंग ऑपरेशन और मांस की बिक्री बहुत अधिक पर्यावरण प्रतिबंध के बिना की जा सकती है।

बकरी का दूध और इसकी विशेषता

वैसे तो बकरी के दूध का पारंपरिक रूप से उपयोग नहीं किया जाता है लेकिन हमारे देश के कुछ हिस्सों में खासकर पहाड़ी इलाकों में यह बहुत प्रचलित है। बकरी की कुछ नस्लें जैसे जमनापारी प्रतिदिन 2.5 किलो दूध देती हैं। बकरी के दूध में वसा ग्लोब्यूल्स अन्य डेयरी जानवरों की तुलना में आकार में छोटे होते हैं और इस प्रकार आसानी से पचने योग्य होते हैं। बकरी के दूध में कवकरोधी और जीवाणुरोधी गुण होते हैं । दूध के भंडारण के लिए बकरियों को ''वॉकिंग रेफ्रिजरेटर'' भी कहा जाता है और दिन में दो बार से अधिक दूध लिया जा सकता है। बकरी का दूध टॉरिन से भरपूर होता है जो शिशु के विकास और विकास के लिए आवश्यक है। बकरी के दूध का उपयोग सुंदरता बढ़ाने में भी किया जाता है क्योंकि इसका दूध त्वचा की उम्र बढ़ने के लक्षणों को कम करता है।

बकरी पालन के लिए सरकार द्वारा सहायता

गरीब भूमिहीन किसानों को बकरी पालन शुरू करने में मदद करने के लिए सरकार ने कई योजनाएं शुरू की हैं और कई तकनीकी प्रशिक्षण कार्यक्रम भी शुरू किए हैं। बकरी पालन को प्रोत्साहित करने के लिए, नाबार्ड (राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक) और अन्य क्षेत्रीय बैंकों के सहयोग से सरकार कई सब्सिडी नीतियों के साथ ऋण प्रदान किया जाता है । बकरी फार्म शुरू करने से पहले इच्छुक किसान पास के बकरी प्रजनन केंद्र या पशुपालन विस्तार अधिकारी से तकनीकी सुझाव या परिषद ले सकते हैं। किसान बकरी पालन के लिए कुछ प्रशिक्षण कार्यक्रम भी ले सकता है और एक सुव्यवस्थित सरकारी बकरी फार्म का दौरा कर सकता है। सरकार ने किसानों के अलावा पशुपालन में रुचि रखने वाले युवाओं के लिए उद्यमी बनने के लिए भी योजनाएं शुरू की हैं। वे उचित प्रशिक्षण और सरकार से वित्तीय सहायता के बाद बकरी पालन शुरू कर सकते हैं। इन योजनाओं के बारे में अधिक जानने के लिए कृषि और ग्रामीण विकास मंत्रालय की आधिकारिक वेबसाइट पर जा सकते हैं या किसान हेल्पलाइन नंबर पर कॉल कर सकते हैं।

निष्कर्ष

भारत दुनिया में बकरी के दूध और बकरी के मांस के सबसे बड़े उत्पादकों में से एक है। प्रतिकूल कठोर वातावरण और खराब गुणवत्ता वाली भूमि में कुशलता से रहने का गुण बकरी की बहुत महत्वपूर्ण विशेषताओं में से एक है। वे उपलब्ध खराब गुणवत्ता वाले चारे झाड़ियाँ एवं पेड़-पत्तियों के साथ कुशलता से जीवित रह सकते हैं। इस प्रकार, बकरी पालन न केवल आर्थिक रूप से पिछड़े किसानों के लिए बल्कि उद्यमशीलता की आकांक्षा रखने वाले युवाओं के लिए भी एक शानदार अवसर हो सकता है। यह कहना अतिशयोक्ति होगी कि बकरियां गाय/भैंस की जगह लेती हैं यद्यपि हम इस तथ्य से इनकार नहीं कर सकते कि वे गरीब किसानों के पालन-पोषण के लिए एक उत्कृष्ट विकल्प हैं।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

आर्थिक सशक्तिकरण हेतु स्व-सहायता समूह

डॉ. अनिल कुमार सिंह, डॉ. एस.के. सिंह
वरिष्ठ वैज्ञानिक कृषि विज्ञान केन्द्र, दतिया (म.प्र.)

स्व-सहायता समूह का अभिप्राय लोगों के बीच ऐसे मंच से है, जहाँ व्यक्तिगत क्षमताओं को सामूहिक क्षमता में विकसीत किया जाता है तथा सामुहिक रूप से अपनी तथा समुदाय में विद्यमान समस्याओं को समूह के माध्यम से हल किया जाता है। स्व-सहायता समूह व्यक्तियों को अपने संसाधनों को संगठित एवं मजबूत करने के अवसर प्रदान करता है। इससे धीरे-धीरे समूह के सदस्यों में अत्मनिर्भरता की भावना बढ़ती है तथा उनका अपनी समस्याओं के विश्लेषण तथा समाधान के अवसर प्रदान होते हैं।

बैंको की ग्रामीण शाखाओं के अत्याधिक विस्तार होने के बाद भी निर्धनों तथा ग्रामीणों का एक बड़ा भाग विशेषतः सीमान्त किसान, भूमिहीन, ग्रामीण दस्तकार आदि अब भी गैर परम्परागत ऋण स्त्रोतों जैसे साहूकारों पर निर्भर है। बैंक में जमा करने के लिए इन लोगों के पास या तो बिल्कुल धनराशि नहीं होती है और यदि होती भी है तो बहुत कम होती है, किन्तु पारिवारिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु बार-बार थोड़ी मात्रा में ऋण की आवश्यकता पड़ती है। उक्त प्रक्रिया में लेन-देन की अत्याधिक लागत व जोखिम को देखते हुए बैंक इनके साथ व्यक्तिगत रूप से जुड़ने में संकोच करते हैं। बचत एवं ऋण परिचालन की आदत का विकास करने के लिए स्वयं को छोटे-छोटे समूहों, जिन्हें स्व-सहायता समूह कहते हैं, में संगठित कर सकते हैं। ये समूह केवल स्त्रियों, केवल पुरूषों या स्त्रियों व पुरूषों के मिश्रित समूह हो सकते हैं।

स्व-सहायता समूह क्या है?: स्व-सहायता समूह समरूप निर्धनों द्वारा स्वेच्छा से संगठित एक समूह है जिसमें समूह के सदस्य अपनी आय से जितनी भी बचत आसानी से कर सकते हैं, उसका मासिक अंशदान एक सम्मिलित निधि के रूप में करने तथा समूह के सदस्यों की आवश्यकता अथवा उत्पादकता की पूर्ति हेतु ऋण के रूप में देने के लिए परस्पर सहमत होते हैं। जैसे बूंद-बूंद से घड़ा भरता है उसी तरह से सदस्यों की थोड़ी-थोड़ी बचत एकत्रित होकर बड़ी राशि बन जाती है तथा पारिवारिक कार्यों में आर्थिक सहायता हेतु साहूकारों या महाजन के पास ऋण के लिए नहीं जाना पड़ता है।

उद्देश्य

- ग्रामीण सहकरिता के आधार पर कृषकों की आर्थिक स्थिति सुधारना। ■ ग्रामीण निर्धनों एवं बैंको के बीच पारस्परिक विश्वसनीयता तथा आत्मविश्वास कायम करना। ■ बैंकिंग कार्यकलापों में बचत के साथ-साथ ऋण को भी प्रोत्साहन देना

स्व-सहायता समूह की मुख्य विशेषताएं

- समूह में 20-20 तक सदस्य हो सकते हैं।
- समूह पंजीकृत या गैर पंजीकृत हो सकता है।
- समूह द्वारा स्वयं को नियंत्रित करने हेतु एक आचार संहिता तैयार की जानी चाहिए।
- समूह द्वारा आंतरिक रूप से संग्रहित बचत स्व-सहायता समूह का मुख्य आधार स्तम्भ है।
- सदस्यों द्वारा बचत की जाने वाली धनराशि की अवधि का तथा सदस्यों को किन उद्देश्यों हेतु ऋण दिया जा सकता है। इनका समूह द्वारा निर्धारण होना चाहिये।
- समूह की कार्यप्रणाली लोकतांत्रिक हो जिसमें सदस्यों को अपने विचारों का आदार-प्रदान करने तथा अपने मत व्यक्त करने की स्वतंत्रता है।
- समूह द्वारा साधारण प्रारम्भिक अभिलेख जैसे कार्यवाही रजिस्टर सदस्यता रजिस्टर, बचत व ऋण रजिस्टर बनाया जाना चाहिये।
- समूह द्वारा बैंक में एक बचत खाता खोला जाना चाहिए।

स्व-सहायता समूह का गठन कौन कर सकता है?

- स्व-सहायता समूहा का गठन विकास खण्डों अथवा गैर-सरकारी संगठन, वाणिज्यिक सहकारी व क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक के शाखा प्रबन्धकों की पहल पर भी किया जा सकता है।
- ग्रामीण महिलायें स्वेच्छा से समूह बनाकर भी बैंक में समूह के नाम पर खाता खुलवा सकती है।

सम्बन्द्धता हेतु स्व-सहायता समूह की चयन प्रणाली: स्व-सहायता समूहों को अन्त में औपचारिक रूप में बैंकिग संगठन, बैंक खाता से सम्बन्द्ध करने की मुख्य शर्ते इस प्रकार है-

- स्व-सहायता समूह के गठन के पश्चात् निकटवर्ती बैंक में बचत खाता खोलकर धनराशि अवश्य जमा करवानी चाहिए।
- समूह द्वारा अपने निजी स्त्रोतों से बचत एवं ऋण वितरण का कार्य सफलतापूर्वक किया गया हो।
- समूह द्वारा लेखा/अभिलेख उचित रूप से रखे गये हों।
- समूह के गठन से एक दूसरे की सहायता करने एवं एक साथ काम करने की वास्तविक आवश्यकताओं की झलक मिलनी चाहिए।

बैंक द्वारा समूह को वित्त प्रदान करने हेतु प्रक्रिया: स्व-सहायता समूहों के बैंक वित्त प्रदान करने की दो प्रक्रियाएं हैं- ■ सीधे स्व-सहायता समूहों को वित्त प्रदान करना। ■ स्वैच्छिक संस्थाओं/गैर सरकारी संगठनों के माध्यम से। दूसरी प्रक्रिया में बैंकों द्वारा स्वेच्छिक संस्थाओं/गैर सरकारी संगठनें को एक बार में ऋण प्रदान किया जाता है। उसके बाद गैर सरकारी संगठन द्वारा स्व-सहायता समूहों को सीधे ऋण प्रदान किया जाता है। वहां प्रारम्भ में बचत एवं ऋण का अनुपात 1:1 अथवा 1:2 हो सकता है। स्व-सहायता समूहों की कार्य प्रणाली में विश्वसनीयता आ जानें पर बैंक उक्त अनुपात को बढ़ाकर 1:4 कर सकता है। बैंक से वित्त प्राप्त करने के लिए ऋण योजना तैयार करके बैंक को प्रस्तुत करना आवश्यक है।

बचत

- प्रत्येक मासिक बैठक में समूहों द्वारा धन राशि बैंक में जमा करने के साथ-साथ समूह द्वारा कुछ धनोर्पाजन कार्यों पर भी विचार किया जाना चाहिए।
- बचत की राशि का निर्धारण समूह की आवश्यकता तथा सदस्यों की आर्थिक स्थिति के अनुसार प्रत्येक सदस्य के लिए समान होनी चाहिए।

बचत खाता कैसे खुलवायें: बैंको में खाता खुलवाने के लिए निम्न दस्तावेंजों के साथ जाना आवश्यक हैं- ■ समूह की नियमावली। ■ समूह का प्रस्ताव जिसमें कि प्रबन्ध समिति के सदस्यों को बचत खाता खुलवाने व खाता संचालन का अधिकार हो।

- प्रबन्धकीय समिति के सदस्यों की फोटो। ■ सम्बन्धित बैंक में ही बचत खाता रखने वाले एक व्यक्ति द्वारा परिचय यदि सम्भव न हो तो गांव के प्रधान, सरपंच अथवा एन.जी.ओ. के पदाधिकारी से भी परिचय करवाकर खाता खोला जा सकता है।
- समूह का बैंक में बचत खाता खुलवाने के लिए समूह का कार्यवाही रजिस्टर, सदस्यता पंजीकरण रजिस्टर, ऋण रजिस्टर आदि को समूह अध्यक्ष एवं कोषाध्यक्ष द्वारा बैंक में प्रस्तुत करना आवश्यक है।

समूह को ऋण देते समय बैंक की शर्तें

- समूह सामान्यः न्यूनतम छः मास की अवधि से सक्रिय होने चाहिए। प्रत्येक माह नियमित रूप से बचत धनराशि बैंक में जमा होनी चाहिए। ■ समूह अपनी एकत्रित बचत से आपस में सदस्यों को ऋण वितरण व वापसी में सक्षम होना चाहिए। ■ नियमित बैठक व रिकार्ड का उचित रख-रखाव। ■ समूह का लोकतांत्रिक स्वरूप हो जिसमें हर सदस्य यह अनुभव करें कि समूह में उसके दृष्टिकोण का महत्व है। ■ समूह के गठन में परस्पर सहायता और मिलकर काम करने की वास्तविक आवश्यकता प्रदर्शित होनी चाहिए।

ऋण का लेन-देन

- ऋण की राशि का निर्धारण सदस्य की ही आवश्यकता एवं उसके द्वारा जमा धनराशि के आधार पर होना चाहिए। ■ वापसी का समय व किश्तों का निर्धारण समूह के प्रत्येक व्यक्ति के लिए समान होना चाहिए। ■ ऋण वितरण तथा अदायगी, समूह की बैठक में होना चाहिए। ■ समूह की बैठक में ही ऋण के प्रस्ताव को स्वीकृत अथवा रद्द किया जाना चाहिए।

ऋण वापसी की अवधि: बैंक समूह से विचार-विमर्श कर उचित अवधि निर्धारित करता है। बैंको द्वारा स्व-सहायता समूह को दिये गये ऋण सामान्यता स्थानीय परिस्थितियों एवं सदस्यों द्वारा अपनाये गये कार्यों/गतिविधियों के आधार पर नियमित किश्तों में चुकाये जाते हैं।

स्व-सहायता समूह के सदस्यों को लाभ

- गरीब का अपना बैंक। ■ सदस्यों में बचत की आदत।
- बचत धनराशि पर बैंक के ब्याज द्वारा आमदानी। ■ बचत की सुरक्षा। ■ छोटे-छोटे क्रिया कलापों के लिए सामूहिक पूंजी का उपलब्ध होना। ■ साहूकार अथवा महजनों के चुगल से छुटकारा। ■ बिना किसी प्रतिभूमि के ऋण। ■ कम कागजी कार्यवाही। ■ बैंकों से न्यूनमत ब्याज दर पर ऋण प्राप्ति।
- सरकारी बैंकों से किसी भी कार्य के लिए सामूहिक शक्ति।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

असामान्य या कठिन प्रसव (डिस्टोकिया) के कारण एवं उसका उपचार

डॉ. आनंद कुमार यादव, डॉ. जितेन्द्र कुमार
डॉ. आशुतोष मिश्रा, डॉ. रेणुका मिश्रा
पशु मादा रोग एवं प्रसूति विज्ञान विभाग पशु चिकित्सा विज्ञान एवं पशुपालन महाविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

प्रसव के समय मादा स्वयं बछड़े को बाहर नहीं निकाल पाए और बछड़ा बीच में ही फंस जाए तो इसे कठिन प्रसव **(Dystocia)** कहते हैं। प्रसव की तीन अवस्थाएं होती हैं-

- गर्भाशय ग्रीवा का ढीला होकर चौड़ा होना
- गर्भाशय के सिकुड़न का बढ़ना व बच्चे का बाहर आना
- जेर का बाहर निकलना

कठिन प्रसव (डिस्टोकिया) का मतलब यह है कि ब्याने की पहली व दूसरी अवस्था में ज्यादा समय लगे और बछड़े को बाहर निकालने के लिए बाहरी सहायता की जरूरत पड़े।

कठिन प्रसव से होने वाली हानि

- नवजात बच्चे के मरने की संभावना अधिक हो जाती है।
- यदि बच्चा जीवित पैदा होता है तो काफी समय तक सामान्य नहीं हो पाता है।
- मां के मरने की संभावना अधिक हो जाती है।
- यदि मां जीवित रह जाए तो दूध की मात्रा कम रहती है।
- गर्भाशय में संक्रमण होने एवं प्रजनन क्षमता कम होने की संभावना अधिक हो जाती है।

कठिन प्रसव के कारण

मूल कारण

तात्कालिक कारण

- **मूल कारण :** यदि मूल कारणों पर ध्यान दिया जाए तो काफी हद तक कठिन प्रसव होने से बचाया जा सकता है। इसके मुख्य कारण निम्न है-
- आनुवंशिक
- पोषण व रखरखाव
- संक्रमण
- चोट

सामान्यता गर्भाशय में बच्चे के अगले दोनों पैर मां के मूत्र मार्ग की ओर फैले हुए रहते हैं तथा इन पर बच्चे का मुंह रखा होता है। पिछले दोनों पैर भी मूत्र मार्ग की ओर ही मुड़े हुए होते हैं। इस स्थिति को एंटीरियर नॉर्मल प्रेजेंटेशन कहां जाता है तथा यह स्थिति लगभग 95त्न पशुओं में पाई जाती है। बच्चे के पिछले पैर मूत्र मार्ग की ओर एवं अगले पैर तथा मुंह मां के मुख की ओर होने की अवस्था को भी सामान्य स्थिति ही माना जाता है तथा इस स्थिति को पोस्टीरियर नॉरमल प्रेजेंटेशन कहते हैं।

उपरोक्त स्थितियों के अतिरिक्त जब अन्य स्थितियां उतन्न हो जाती हैं तब सामान्य प्रसव के होने में कठिनाई उत्पन्न हो जाती है।

कठिन प्रसव के तात्कालिक कारणों को दो भागों में विभाजित किया जाता है -

- मातृ जन्य के कारण कठिन प्रसव
- शिशु जन्य के कारण कठिन प्रसव

मातृ जन्य के कारण कठिन प्रसव

- हारमोंस के अभाव या असंतुलन में गर्भाशय ग्रीवा का न फैलना तथा गर्भाशय के संकुचन की क्षीणता या उसकी अनुपस्थिति।
- गर्भाशय ग्रीवा या गर्भाशय की ऐठन या गर्भाशय का पलट जाना ।
- पेल्विक बोन का फ्रैक्चर अथवा असामान्य होना जिसके कारण बर्थ कैनाल संकरी हो जाती है।
- गर्भाशय या पेल्विक कैविटी में ट्यूमर का होना ।
- गर्भाशय ग्रीवा, योनि और योनि द्वार का संकरा होना।
- योनि में वसा का अत्याधिक जमाव ।
- गर्भाशय की जड़ता होना।

उपरोक्त प्रथम कारण की चिकित्सा ऑक्सीटॉसिन, एपीडोसिन , बेटामेथासोन एवं क्लोप्रोस्टेनोल सोडियम देकर की जा सकती है, तथा शेष कारणों का निवारण स्थिति के अनुसार सेफर्श प्लांक विधि (गर्भाशय में अंटा लगने पर) अथवा सिजेरियन ऑपरेशन करके ही किया जा सकता है।

शिशु जन्य के कारण कठिन प्रसव

- बच्चे की असामान्य स्थितियां अर्थात असामान्य प्रेजेंटेशन, पोजीशन एवं पोस्चर।
- बच्चे का असामान्य बड़ा आकार।
- बच्चे के शरीर का असामान्य होना जैसे दो सिर होना, 4 से अधिक पैरों का होना, बच्चे का दैत्याकार रूप में होना इत्यादि।

- बच्चे के शरीर में रोगों का होना जैसे सिर में पानी भरा होना, जलोदर, पूरे शरीर में पानी भरा होना अर्थात ऐनासारका, थोरेक्स में पानी भरा होना अर्थात हाइड्रोथोरेक्स तथा बच्चे के किसी अंग में ट्यूमर होना आदि।

बच्चे की असामान्य स्थितियां

इसमें बच्चे की प्रसव काल की सामान्य स्थिति न होकर बच्चे की गर्दन का मुड़ जाना, अगला एक या दोनों पैर बच्चे की गर्दन पर चले जाना, अगले एक या दोनों पैरों का पीछे की ओर मुड़ जाना, बच्चे का पेट मां की कमर की ओर हो जाना, बच्चे का पेट या पीठ अनुप्रस्थ स्थिति में होना आदि। उपरोक्त स्थितियों में से अधिकतर स्थितियों को पशु चिकित्सक अपने सामान्य विवेक से ही हाथों की सहायता से व्यवस्थित करके बच्चे को बाहर निकाल सकता है। इसको बाहर निकालते समय आई हुक से गर्दन में ,कंधे से या पैर बांधकर खींचा जा सकता है। केवल अनुप्रस्थ स्थितियां तथा बच्चे के मर जाने के बाद की स्थिति में बच्चे को फिटोटॉम द्वारा काट काट कर टुकड़ों में निकालना पड़ता है। बच्चे का बड़ा आकार होने पर अथवा जीवित बच्चा होने पर सिजेरियन ऑपरेशन किया जाता है। बच्चे का शरीर असामान्य होने या उसमें रोग या ट्यूमर होने आदि की अवस्था में अधिकतर मामलों में बच्चे को काटकर टुकड़ों में ही निकाला जाना संभव हो पाता है। कठिन प्रसव के निवारण तथा जेरी निकालने के उपरांत मां की परिचर्या तथा चिकित्सा विशेष रुप से 5 से 7 दिन तक की जानी चाहिए। इसे प्रतिजैविक औषधि, टॉनिक, बेटामेथासोन, कैल्शियम आदि उचित मात्रा में दिया जाना अति आवश्यक होता है।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

धान उत्पादन की मेडागास्कर विधि

प्रशांत श्रीवास्तव
(सहायक प्रोफेसर), सेज वि.वि. इंदौर (म.प्र.)
सुविधा मिश्रा
(सहायक प्रोफेसर), सेज वि.वि. इंदौर (म.प्र.)

मेडागास्कर विधि धान उत्पादन की एक तकनीक है जिसके द्वारा पानी के बहुत कम प्रयोग से भी धान का बहुत अच्छा उत्पादन सम्भव होता है। इसे सघन धान प्रनाली (System of Rice Intensification-SRI या श्री पद्धति) के नाम से भी जाना जाता है। जहां पारंपरिक तकनीक में धान के पौधों को पानी से लबालब भरे खेतों में उगाया जाता है।

वहीं मेडागास्कर तकनीक में पौधों की जड़ों में नमी बरकरार रखना ही पर्याप्त होता है, लेकिन सिंचाई के पुख्ता इंतजाम जरूरी हैं, ताकि जरूरत पड़ने पर फसल की सिंचाई की जा सके। सामान्यतः जमीन पर दरारें उभरने पर ही दोबारा सिंचाई करनी होती है। इस तकनीक से धान की खेती में जहां भूमि, श्रम, पूंजी और पानी कम लगता है, वहीं उत्पादन 300 प्रतिशत तक ज्यादा मिलता है। इस पद्धति में प्रचलित किस्मों का ही उपयोग कर उत्पादकता बढ़ाई जा सकती है। अफ्रीकी देश मेडागास्कर में 1983 में फादर हेनरी डी लाउलेनी ने इस तकनीक का आविष्कार किया था।

परिचय

इस तरीके में, पौधों को जल्दी सावधानीपूर्वक रोपा जाता है (परंपरागत खेती में 21 दिन के पौधों के मुकाबले 8 से 12 दिन के पौधों को)। इन्हें बगैर कीचड़युक्त परिस्थिति में रोपा जाता है। पौधों की रोपाई के बीच पर्याप्त जगह छोड़ी जाती है, यह जगह 20,25,30 या 50 सेमी तक हो सकती है। खेत को धान में बाली आने तक बारी-बारी से नम एवं सूखा रखा जाता है एवं पानी से नही भरा जाता (पौधों में धान के बढ़ने के दौर में खेत में 1 से 3 सेमी पानी) है। पौधों की कटाई करने से 25 दिन पहले खेत से पानी निकाल दिया जाता है एवं जैविक खाद जितना हो सके उतना प्रयोग किया जाता है। धान की रोपाई के 10 दिन बाद मशीन से निराई (खरपतवार निकालना) शुरू करनी चाहिए; कम से कम दो बार निराई आवश्यक है; ज्यादा हो सके तो बेहतर है। माना जाता है कि यह जड़ वाले हिस्से में बेहतर बढ़ोतरी की परिस्थिति प्रदान करता है, लागत में कमी करता है, मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार लाता है एवं पानी के उपयोग को बेहतर बनाता है।

विधि की खोज एवं प्रसार

इस विधि को फ्रांसीसी पादरी फादर हेनरी डे लाउलानी द्वारा 1980 के दशक की शुरूआत में मेडागासकर में विकसित किया गया। वस्तुतः एसआरआई का विकास दो दशकों में हुआ है, जिसमें 15 वर्षों तक मेडागास्कर में जांच, प्रयोग एवं नियंत्रण एवं अगले छः वर्षों में तेजी से 21 देशों में प्रसार हुआ। अपहॉफ एवं उनके संगठन ने इसे 21वीं सदी में किसानों की जरूरतों का जवाब बताते हुए 1997 से अन्य देशों में प्रसार शुरू किया।

भारत में प्रयोग

भारत में व्यवहारिक तौर पर प्रयोग 2002-03 में प्रारम्भ हुआ एवं इसके बाद तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, पश्चिम बंगाल, झारखंड, छत्तीसगढ़ एवं गुजरात में ÷श्री पद्धति÷ को व्यवहार में लाया गया।

श्री (SRI) विधि

इस विधि में 10 से 12 दिन का बिचड़ा 25 × 25 सेंटी मीटर की दूरी पर एक विचड़ा प्रति हिल में मिट्टी सहित रोपाई करते हैं। कदवा किये गये खेत में 250 वर्ग मीटर में 5 किलो बीज समान रूप से अंकुरित बीज बिखेर देते हैं। रोपाई वाले खेत में हर 2 मीटर की दूरी पर एक जल निकास नाली बनाते हैं तथा कोनों या रोटरी वीडर का प्रयोग 5 बार रोपाई के 10 दिन बाद तथा प्रत्येक 10 दिन के अन्तराल पर करते हैं। इससे जड़ों का विकास ज्यादा होता है और ज्यादा कल्ले निकलते हैं। वीडर के प्रयोग के समय खेत में कम पानी रखना चाहिए। इससे उपज में 10 से 15 प्रतिशत सामान्य विधि से ज्यादा वृद्धि होती है। संकर धान या सामान्य धान की किस्मों को भी श्री विधि से खेती कर सकते हैं।

अनुशंसित किस्म

क्षेत्र विशेष की जलवायु के अनुसार संकर धान की किस्मों का चयन आवश्यक है। बोआई हेतु प्रति वर्ष संकर धान का नया बीज विश्वसनीय एवं अधिकृत बीज वितरक से प्राप्त करनी चाहिए। झारखण्ड राज्य के लिए संकर धान बिरसा कृषि विश्वविद्यालय द्वारा प्रो एग्रो 6444 किस्म का अनुमोदन किया गया है।

पौधशाला (Nursery) की तैयारी

मई-जून में प्रथम वर्षा के बाद, पौधशाला के लिए चुने हुए खेत की दो बार जुताई करें। खेत में पाटा चला कर जमीन को समतल बनायें। पौधशाला सूखे या कदवा किये गये खेत में तैयार की जाती है। कदवा वाले खेत में बढ़वार अच्छी होती है। पौधशाला ऊँची, समतल, तथा 1 मीटर चौड़ाई की होनी चाहिए। पानी की निकासी के लिए 30 सेंटी मीटर चौड़ाई की नाली बना दें। खेत की अंतिम तैयारी से पूर्व 100 किलोग्राम गोबर की सड़ी खाद तथा नेत्रजन, स्फुर, व पोटाश, 500ः500ः500 ग्राम प्रति 100 वर्ग मीटर की दर से डालें। प्रति हेक्टेयर क्षेत्र में रोपाई हेतु 750 वर्गमीटर पौधशाला की आवश्यकता पड़ती है तथा प्रति वर्ग मीटर क्षेत्र में 20 ग्राम बीज डालनी चाहिए। श्री विधि में 250 वर्गमीटर में 5 किलो बीज नर्सरी में डालते हैं।

बीज दर

15 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर तथा श्री **(SRI)** विधि में 5 किलो प्रति हेक्टेयर

बीजोपचार

बीज को 12 घंटे तक पानी में भिंगोयें तथा पौधशाला में बोआई से पूर्व बीज को कार्बेन्डाजिम (बैविस्टीन) फफूदनाशी की 2 ग्राम मात्रा प्रति किलो

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

बीज में उपचारित कर बोयें। पौधशाला अगर कदवा किये गये खेत में तैयार करनी है तब उपचारित बीज को समतल कठोर सतह पर छाया में फैला दें तथा भींगे जूट की बोरियों से ढंक दें। बोरियों के ऊपर दिन में 2-3 बार पानी का छिड़काव करें। बीज 24 घंटे बाद अंकुरित हो जायेगा। फिर अंकुरित बीज को कदवा वाले खेत में बिखेर दें।

बुआई का समय

संकर धान की खेती सिंचित व असिंचित दोनों जमीन में की जा सकती है। पहली वर्षा के बाद मई में जुताई के समय तथा खेत में रोपाई के एक माह पूर्व, गोबर की सड़ी खाद अथवा कम्पोस्ट 5 टन प्रति हेक्टेयर की दर से डालें। श्री विधि में 10 टन तक जैविक खाद का प्रयोग करते हैं। नीम या करंज की खली 5 क्विंटल प्रति हेक्टेयर की दर से रोपाई के तीन सप्ताह पूर्व जुताई के समय खेत में बिखेर दें। रोपाई के 15 दिनों पूर्व खेत की सिंचाई एवं कदवा करें ताकि खरपतवार, सड़कर मिट्टी में मिल जायें। रोपाई के एक दिन पूर्व दुबारा कदवा करें तथा खेत को समतल कर रोपाई करें।

रोपाई

पौधशाला से बिचड़ो को उखाडने के बाद जड़ों को धोकर रोपाई से पूर्व बिचड़ो की जड़ों को क्लोरपायरीफॉस **(Cholorpyriphos)** कीटनाशी के घोल (1 मिली लीटर प्रति लीटर पानी) में पूरी रात (12 घंटे) डुबो कर उपचारित करें। रोपाई के लिए 15-20 दिनों की उम्र के बिचड़ों का प्रयोग करें। रोपाई पाटा लगाने के पश्चात? समतल की गयी खेत की मिट्टी में 2 से 3 सेंटीमीटर छिछली गहराई में करें। यदि खेत में जल-जमाव हो तो रोपाई से पूर्व पानी को निकाल दें। रोपाई से पूर्व रासायनिक खाद का प्रयोग करें। कतारों एवं पौधों के बीच की दूरी क्रमशः 20 सेंटीमीटर×15 सेंटीमीटर रखते हुए एक स्थान पर केवल एक या दो बिचड़े की रोपाई करें। कतारों को उत्तर-दक्षिण दिशा की ओर रखें।

खरपतवार प्रबंधन

- स्थिर जल की अनुपस्थिति में श्री पौधे में अधिक घास उत्पन्न होता है।
- दो पौधों के बीच वीडर चलाकर घासपात हटा देनी चाहिए।
- पौधे के निकट के घास को हाथ से उखाड़नी चाहिए।

श्री से लाभ

- उच्चतर उपज ङ्क अनाज़ व चारा दोनों का
- तैयार होने की अवधि में कमी (10 दिनों तक)
- कम रासायनिक खाद का उपयोग
- कम पानी की आवश्यकता
- कम भूसी अनाज की प्रतिशतता
- अनाज के आकार में बदलाव हुए बिना अनाज के वजन में वृद्धि
- उच्चतर स्तर के चावल की प्राप्ति (धान से चावल बनाने की प्रक्रिया के दौरान)
- चक्रवाती तूफान में भी खड़ा रहता
- ठण्ड सहने में सक्षम।
- जैविक क्रियाकलाप द्वारा मिट्टी को उपजाऊ बनाता है

हानियाँ

- प्रारंभिक वर्षों में उच्च मजदूरी लागत
- आवश्यक कौशल हासिल करने में कठिनाई
- सिंचाई स्रोत उपलब्ध नहीं होने की स्थिति में अनुकूल नही

रासायनिक उर्वरकों का उपयोग

संकर धान में नेत्रजनः स्फुरः पोटाश क्रमशः 150:75:90 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से डालें। खेत में नेत्रजन की 1/4 मात्रा, स्फुर की पूरी एवं पोटाश की 3/4 मात्रा खेत से पानी निकालने के बाद डालें। नेत्रजन की शेष 3/4 मात्रा को तीन बराबर भागों में यूरिया द्वारा रोपाई के 3 व 6 सप्ताह बाद, एवं शेष बालियाँ निकलते समय डालें। पोटाश की बची हुई 1/4 मात्रा को भी बालियाँ निकलते समय खड़ी फसल में टॉपड्रेसिंग करें। स्फुर (सिंगल सुपर फॉस्फेट) के द्वारा प्रयोग करें जिससे सल्फर की कमी को दूर किया जा सके। डीएपी **(DAP)** के साथ 25 किलो प्रति हेक्टेयर सल्फर (जिप्सम) प्रयोग करें।

सिंचाई एवं निकाई-गुडाई

बिचड़ों की रोपाई के 5 दिनों बाद खेत की हल्की सिंचाई करें इसके बाद खेत में 5 सेंटीमीटर की ऊँचाई तक पानी दानों में दूध भरने के समय तक बनाये रखें। खाली स्थानों पर एवं मृत बिचड़ों की जगह पर रोपाई के 5 से 7 दिनों के अंदर पुनः बिचड़ो की रोपाई करें। खरपतवारों की निकाई-गुड़ाई रोपाई के 3 सप्ताह बाद, तथा दूसरी 6 सप्ताह बाद करें। लाईन में रोपी गयी फसल में खाद डालने के बाद रोटरी या कोनों वीडर का प्रयोग करें। यूरिया की टॉपड्रेसिंग करने से पहले निकाई गुड़ाई अवश्य करें।

कीट प्रबंधन

खेत में दानेदार कीटनाशी **Carbofuran (Furadan)** 3 जी (30 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर) या **Phorate** 10 जी (10 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर) बिचड़ों की रोपाई के 3 सप्ताह बाद डाले। इसके पश्चात मोनोक्रोओफॉस 36 ई.सी. (1.5 लीटर प्रति हेक्टेयर) या क्लोरपायरीफॉस 20 ई.सी. (2.5 लीटर प्रति हेक्टेयर) का 15 दिनों के अंतराल पर दो छिड़काव करें ताकि फसल कीटों के आक्रमण से मुक्त रहें। एक हेक्टेयर में छिड़काव के लिए 500 लीटर जल की आवश्यकता पड़ती है। गंधी कीट के नियंत्रण के लिये इंडोसल्फॉन 4 प्रतिशत धूल या क्वीनालफॉस 1.5 प्रतिशत धूल की 25 किलोग्राम मात्रा का भुरकाव प्रति हेक्टेयर की दर से या मोनोक्रोटोफॉस 36 ई.सी. (1.5 लीटर प्रति हेक्टेयर) का छिड़काव करें। उपरोक्त वर्णित दानेदार एवं तरल कीटनाशी के उपयोग से साँढ़ा **(Gallmidge)** एवं तना छेदक कीटों की भी रोकथाम होगी। पत्र लपेटक **(Leaf folder)** कीट की रोकथाम के लिए क्वीनालफॉस 25 ई.सी. (2 लीटर प्रति हेक्टेयर) का छिड़काव करें।

रोग प्रबंधन

कवक-जनित झोंका **(Blast)** तथा भूरी चित्ती रोगों की रोकथाम के लिए या काब्रेन्डाजिम (वैविस्टीन 50 **WP)** 0.1 प्रतिशत या ट्राइसाय्क्लाजोल (0.06 प्रतिशत) का छिड़काव करें। फॉल्स स्मट **(False Smut)** रोग की रोकथाम के लिए बालियाँ निकलने से पूर्व प्रोपीकोनाजोल **(Tilt)** 0.1 प्रतिशत या कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (**Blito&**-50) 0.3 प्रतिशत का दो बार 10 दिन के अंतराल पर छिड़काव करें। पत्रावरण अंगमारी **(Sheath Blight)** रोग एवं जीवाणु- जनित रोगों के लिए खेत के पानी की निकासी करें। खेत में पोटाश की अतिरिक्त मात्रा (30 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर) टॉपड्रेसिग द्वारा डालें। नेत्रजन की बची किस्तों को बिलंब से डालें। सीथ ब्लाइट की रोकथाम के लिए हेक्साकोनाजोल (कोन्टाफ) 0.2 प्रतिशत या विलीडामाइसिन **(Validamycin)** का 0.25 प्रतिशत का छिड़काव करें।

फसल की कटाई, सुखाई एवं भंडारण

बालियों के 80 प्रतिशत दाने जब पक जायें तब फसल की कटाई करें। कटाई के पश्चात् झड़ाई कर एवं दानों को अच्छी तरह सुखाकर भण्डारण करे।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

दुधारू पशुओं में थन के विकार एवं उनका शल्य क्रिया द्वारा निदान

डॉ. प्रवेश कुमार द्विवेदी
डॉ. अपूर्वा मिश्रा
पशु शल्य चिकित्सा एवं छ: रश्मि विभाग पशु चिकित्सा एवं पशुपालन महाविद्यालय जबलपुर (म.प्र.)

दुधारू में थन के विभिन्न विकारों से किसानो को काफी नुकसान ऊठाना पड़ता है। समय पर उचित उपाय अपना कर इन रोगों से निजात पाया जा सकता है। ये रोग विश्व के सभी भागों में पाया जाता है । इन रोगों से दुग्ध उद्योग को भारी नुकसान से गुजरना पड़ता है। आमतौर पर ये रोग पशुओं को पालने के तरीकों, आनुवांशिकी, दूध दूहने की विधिओं और उनके वातावरण पर निर्भर करता है।

भैंसों की अपेक्षा गायों मे ये रोग ज्यादा पाये जाते हैं। समय पर पशु चिकित्सक द्वारा शल्य क्रिया से इन व्याधियों से छुटकारा पाया जा सकता है, अन्यथा किसानों को काफी आर्थिक नुकसान से गुजरना पड़ता है।

थन में पाये जाने वाले कुछ विकार निम्नतः हैं

- टीट स्टेनोसिस / हार्ड मिल्कर ■ टीट लीकर / फ्री मिल्कर ■ टीट लैसरेसन ■ मिल्क स्टोन
- टीट फिश्चुला ■ टीट केनाल पोलिप
- टीट सोर / बोवाइन अलसरेटिव मैमिलाइटिस
- फ्यूस्ड टीट

टीट स्टेनोसिस

इस रोग में टीट केनाल की चैड़ाई काफी कम होती है। इसको टीट केनुला लगाकर या फिर विडियो आसिस्टेड थेलोस्कोपिक एलेक्ट्रोसेक्सनविधि द्वारा सही किया जाता है, या फिर एक्स-आकार का चीरा लगाकर सही किया जा सकता है।

टीट लीकर/ फ्री मिल्कर

इस अवस्था में टेयत केनाल की चैंडाई सामान्य से ज्यादा हो जाती है। जिसे 0.25 मिली लीटर लुगोल्स आयोडीन टीट केनाल के अंदर डालने सही किया जा सकता है अथवा नायलान के द्वारा एक या दो टांके लगाकर सही किया जा सकता है।

टीट लैसरेसन

यदि घाव छोटा है तो उसे प्रतिजैविक घोल द्वारा उपचरित कर दर्द निवारक दवाइयाँ देंगे अथवा घाव बड़ा होने की स्थिति में उस घाव की सफाई के उपरांत टांके लगाकर उसको प्रतिजैविक क्रीम द्वारा सर्जिकल ड्रेसिंग करनी पड़ती है।

मिल्क स्टोन

ये दूध में खनिज तत्वों की अधिकता से बनते हैं और जब ये आकार में बहुत बड़े होते हैं तो इन्हें लीची टीट नाइफ द्वारा अथवा टीट बिसचूरी द्वारा टीट स्फिंक्टर को काटकर निकाला जाता है।

टीट फिश्चुला

यह विकार उन पशुओं में ज्यादा होता है जिनके टीट लंबे और आयन बड़े होते हैं। जब ऐसे जानवर कटीली झाड से गुजरते अथवा कूदते हैं गहरा टीट लैसरेसन जो की टीट केनाल तक होता है तो उसे टीट फिश्चला कहते हैं। इसे सही करने कके लिए लारसन्स टीट प्लग लगाकर घुलने वाले टांकों की मदद से दो परत में सिंपल कंटिन्युयस टांके लगाने होते हैं जो कि पशु के टीट के छोटे से भाग को रिंग आकार में निश्चेतना दे कर किया जाता है।

टीट केनाल पोलिप

यह मटर के दाने के समान टीट केनाल के अंदर ऊतक वृदधी होती है जिसको हग्स टीट अक्स्ट्रैक्टर की मदद से काट कर निकाला जा सकता है।

टीट सोर/ बोवाइन अलसरेटिव मैमिलाइटिस

इस बीमारी में थन के ऊपर के ऊतक में दरारें पद जाती हैं , जो की मुख्यतः चेचक या खुर पका - मुँह पका बीमारी के उपरांत जनित होता है। यदि इसे समय पर इलाज नहीं किया गया तो यह अल्सर का रूप ले लेता है। जो कि एक दर्दकारी अवस्था होती है। आईएसकेई यूपीसीएचएआर के लिए थन को 1:1000 भाग घोल से धो कर फिर उसमें आयोडाइस्ड ग्लिसरीन या बिस्मथ आयोडोफार्म का पेस्ट ये जिंक ऑक्साइड क्रीम लगाना चाहिए।

फ्यूस्ड टीट

यह एक आनुवांशिक बीमारी है , जिसको यदि दोनों टीट कि केनाल अलग - अलग होने कि अवस्था में दोनों टीट के बीच की चमड़ी के बीच में चीरा लगाकर , दोनों टीट केओ अलग कर के 10- 15 दिनों तक ड्रेसिंग करनी पड़ती है और घाव को द्वितीय भराव तरीके से भरने दिया जाता है।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

ग्रीष्मकालीन मौसम में कद्दूवर्गीय सब्जियों की खेती

डॉ. आर.पी. सिंह, डॉ. पी.एन. त्रिपाठी
डॉ. आर.के. जायसवाल, रितेश बागोरा
डी.पी. सिंह एवं डॉ. नेहा शर्मा
जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय
कृषि विज्ञान केन्द्र, पन्ना (म.प्र.)

सामान्य जानकारी एवं पोषकीय महत्व

कद्दूवर्गीय सब्जियों को मानव आहार का एक अभिन्न अंग माना जाता है। इन्हें बेल वाली सब्जियों के नाम से भी जाना जाता है जैसे- लौकी, खीरा, तोरई, गिल्की, करेला, कद्दू, तरबूज एवं खरबूज की खेती गर्मी के मौसम में आसानी से की जा सकती है। इन सब्जियों की अगेती खेती करके किसानों द्वारा अच्छा मुनाफा कमाया जा सकता है। पोषण की दृष्टि से यह बहुत ही महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमें आवश्यक विटामिन, खनिज तत्व पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं जो हमें स्वस्थ्य रखने में सहायक सिद्ध होते हैं। कद्दूवर्गीय सब्जियों की उपलब्धता वर्ष में आठ से दस महीने तक रहती है एवं इसका उपयोग सलाद के रूप में (खीरा, ककड़ी) पकाकर सब्जी के रूप में (लौकी, करेला, गिल्की, तोरई) मीठे फल के रूप में (तरबूज व खरबूज) मिठाई बनाने में (लौकी व पेठा) उपयोग मुख्यः रूप से किया जाता है।

उपयुक्त भूमि एवं खेत की तैयारी: कद्दूवर्गीय सब्जियों की खेती सभी प्रकार की मिट्टी में की जा सकती है। लेकिन दुमट व वलुई दुमट मिट्टी अच्छी मानी जाती है क्योंकि इसमें जल निकास अच्छी तरह से हो जाता है। मिट्टी में कार्बनिक तत्व पर्याप्त मात्रा में होना चाहिए साथ ही पी एच मान करीब 6 से 7.5 के मध्य होना चाहिए। बीज बुवाई से पूर्व खेत की एक गहरी जुताई एवं दो तीन हल्की जुताई करके मिट्टी को भुरभुरा बना लेना चाहिए एवं खेतों को समतल करने के लिए ऊपर से पाटा लगा देना चाहिए।

खाद व उर्वरक: ज्यादातर बेल वाली सब्जियों में खेत की तैयारी के समय 15-20 टन प्रति हेक्टेयर अच्छी पकी हुई गोबर की खाद व 80 किलोग्राम नत्रजन की आधी मात्रा, 50 किलोग्राम फास्फोरस तथा 50 किलोग्राम पोटास की पूरी मात्रा बुवाई के पूर्व उपयोग करना चाहिए एवं शेष बची हुई नत्रजन की मात्रा को 20-25 दिन एवं 40 दिन की फसल अवस्था में देना चाहिए।

बीज बुवाई: खेत में लगभग 45-50 से.मी. चैड़ी तथा 30-40 से.मी. गहरी नालियां बना लें। एक नाली से दूसरी नाली की दूरी फसल की बेल की बढ़वार के अनुसार 2 मीटर से 05 मीटर तक रखना चाहिए। जब नाली में नमी की मात्रा बीज बुवाई के लिए उपयुक्त हो जाये तो बुवाई के स्थान पर मिट्टी भुरभुरी करके थाले में एक स्थान पर 4-5 बीज की बुवाई करना चाहिए।

बीजदर: विभिन्न फसलों के लिए बीजदर निम्न प्रकार से है। खीरा 2-2.5 कि.ग्रा., लौकी 4-5 कि.ग्रा., करेला 5-6 कि.ग्रा., तोरई 4.5-5 कि.ग्रा., कद्दू 3-4 कि.ग्रा., खरबूजा 2.5-3 कि.ग्रा., तरबूज 4-4.5 कि.ग्रा., टिण्डा 5-6 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की आवश्यकता होती है।

बुवाई का समय: गर्मी की फसल की बुवाई के लिए मध्य फरवरी से मार्च तक का समय उपयुक्त होता है।

सिंचाई: गर्मी की फसल में 6-7 दिन के अंतराल पर एवं आवश्यकतानुसार समय-समय पर सिंचाई करना चाहिए।

उपज: खीरा 110-120 क्विं., लौकी 300-350 क्विं., करेला 80-100 क्विं., तोरई 100-120 क्विं., कद्दू 300-400 क्विं., खरबूजा 150-200 क्विं., तरबूज 200-250 क्विं. तथा टिण्डा 80-100 क्विं. प्रति हे. तक उपज प्राप्त होती है।

सब्जियों की तुड़ाई उपरांत प्रबंधन: बेल वाली फसलें जैसे खीरा, घिया, तोरी, करेला व कद्दू में तुड़ाई कच्चे व मुलायम अवस्था में करें। फलों को डंठल सहित तोड़ें एवं इसके पश्चात् रंग व आकार के आधार पर श्रेणीकरण कर पैकिंग करें तथा पैक किये गये फलों को शीघ्र मण्डी पहुंचाये या शीतगृह में रखें।

कद्दूवर्गीय फसलों के प्रमुख कीट एवं रोग

लाल कद्दू भृंग : इस कीट के शिशु एवं वयस्क दोनों ही फसल को नुकसान पहुंचाते हैं। वयस्क पौधों के पत्ते में टेढ़े-मेढ़े छेद कर देते हैं। जबकि शिशु पौधों की जड़ों, भूमिगत तने एवं भूमि से सटे फलों तथा पत्तों को हानि पहुंचाते हैं।

प्रबंधन : फसल खत्म होने पर बेलों को खेत से हटाकर नष्ट कर दें तथा फसल की अगेती बुवाई से कीट के प्रभाव को कम किया जा सकता है। इसके प्रबंधन हेतु नीम तेल 5 मि.ली./लीटर पानी या डेल्टामेथ्रिन 250 मिली. प्रति एकड़ की दर से 150-200 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें। पीला चिपचिपा प्रपंच के माध्यम से भी इसका प्रबंधन कर सकते हैं।

फल मक्खी : इस कीट की मक्खी फलों में अंडे देती है तथा शिशु अंडे से निकलने के तुरंत बाद फल के गूदे को भीतर ही भीतर खाकर सुरंग बना देते हैं।

प्रबंधन : ग्रसित फलों को एकत्रित करके नष्ट कर दें तथा फल मक्खियों को आकर्षित करने के लिए मीठे जहर जो एण्डोसल्फान 35 ई.सी. 5 एमएल प्रति लीटर पानी में व गुड 25 ग्राम प्रति लीटर पानी में खराब हुई सब्जियों के साथ में मिलाकर किसी मिट्टी या प्लास्टिक के बर्तन में 20-25 जगह पर प्रति हेक्टेयर के हिसाब से रखने पर फल मक्खी को नियंत्रित किया जा सकता है। इसी के साथ-साथ फसलों की पुष्पन एवं फलन के समय फैरोमौन ट्रेप 12-15 प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करने से नियंत्रित किया जा सकता है।

सफेद मक्खी : इस कीट के शिशुओं व वयस्कों के रस चूसने से पत्ते पीले पड़ जाते हैं। इनके मधुबिन्दु पर काली फफूंद आने से पौधों की भोजन बनाने की क्षमता कम हो जाती है। जिससे उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

रोकथाम: इस कीट की रोकथाम हेतु वर्टीसिलियम लैकेनी 3 एमएल/लीटर पानी में या इमिडाक्लोप्रिड (17.8 एसएल) 1 मिली ली. प्रति 3 ली. पानी में या स्पिनोसेड (45 एस.सी.) 1 मिली प्रति 4 ली. पानी में मिलाकर छिड़काव करें।

चेंपा : चेंपा लगभग सभी कद्दूवर्गीय फसलों में नुकसान पहुंचाते हैं। ये फसलों के कोमल भागों से रस चूसकर हानि पहुंचाते हैं।

रोकथाम : इसके रोकथाम के लिए वर्टीसिलियम लैकेनी 03 एमएल/लीटर पानी में या इमिडाक्लोप्रिड (17.8 एसएल) 1 मिली ली. प्रति 3 लीटर पानी में या स्पिनोसेड (45 एस.सी.) 1 मि.ली. प्रति 4 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।

मृदु रोमिल आसिता: इस बीमारी से पत्तियों के ऊपरी भाग पर पीले धब्बे तथा निचले भाग पर बैगनी रंग के धब्बे दिखाई देते हैं।

रोकथाम: इसके नियंत्रण हेतु क्लोरोथेलेनिल + मेंकोजेब की 2 ग्राम मात्रा प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें तथा आवश्यकतानुसार 15 दिवस के अंतराल में छिड़काव करें।

चूर्णिल असिता: इस बीमारी से ग्रस्त पौधों पर सफेद चूर्णिल धब्बे दिखाई देते हैं तथा अधिक प्रकोप की स्थिति में पत्तियां गिर जाती हैं और पौधा मुरझा जाता है।

रोकथाम: रोगग्रस्त पत्तियों को काटकर पौधों से अलग कर देना चाहिए। इस रोग के लक्षण दिखाई देने पर एजोक्सीस्ट्रोबिन . डाईफेनोकोनाजोल की 2 ग्राम/लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

मोजेक रोग: यह एक विषाणु जनित रोग है जो सफेद मक्खी के द्वारा फैलता है इस रोग से प्रभावित पत्तियों की लंबाई व चौड़ाई कम रह जाती है तथा फलों का रंग व आकार भी प्रभावित होता है।

प्रबंधन: रोग रोधी किस्मों का चुनाव करना चाहिए। पौधों में रोग के लक्षण दिखाई देते ही रोग ग्रस्त पौधों को उखाड़कर खेत से दूर गड्ढे में दबाकर नष्ट कर देना चाहिए। सफेद मक्खी के नियंत्रण हेतु इमिडाक्लोप्रिड (17.8 एसएल) 1 मिली ली. प्रति 3 ली. पानी में या स्पिनोसेड (45 एस.सी.) 1 मि.ली. प्रति 4 ली. पानी में मिलाकर छिड़काव करें।

कद्दूवर्गीय सब्जियों की विभिन्न किस्में व संकर प्रजातियां

फसल	किस्म
लौकी	पूसा हाईब्रिड-3, पूसा संदेश, अर्का बहार, पूसा नवीन, पंत लौकी चार, पूसा संतुष्टि, पूसा समृद्धि
करेला	पूसा विशेष, काशी मयूरी, पूसा दो मौसमी, पूसा हाईब्रिड 2
तोरी	चिकनी तोरी - पूसा स्नेहा, पूसा सुप्रिया, पूसा चिकनी एवं धारीदार तोरी-पूसा नसदार, पूसा नूतन एवं सतपुतिया
खीरा	पूसा संयोग, पूसा बर्खा, पूसा उदय, पूसा हाईब्रिड 1
तरबूज	सुगर बेबी, दुर्गापुर मीठा, अर्का मानिक
खरबूज	पूसा मधुरस, अर्का मधु, हरा मधु, अर्का राजहंश, दूर्गापुर मधु
कद्दू	पूसा विश्वास, पूसा विकास, पूसा हाईब्रिड 1
पेठा	पूसा उज्जवल,
टिण्डा	पंजाब टिण्डा, अर्का टिण्डा

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

वर्टीकल फार्मिंग या खड़ी खेती से संबंधित जानकारी

माया बिसेन (सहायक प्रोफ़ेसर)
उद्यानिकी विभाग डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम विश्वविद्यालय इंदौर (म.प्र.)

आज के समय में खेती के क्षेत्र में नई-नई तकनीकों का प्रयोग कर खेती करने का चलन तेज़ी से हो रहा है। ऐसे ही एक और नई तकनीक वर्टिकल/खड़ी खेती का है। देश में लगातार कृषि योग्य भूमि की दर के कम होने की स्थिति में कम जगह में अधिक पैदावार वाली खेती की तकनीकों की आवश्यकता बढ़ी है। इसको देखते हुए वर्टिकल खेती का चलन तेजी से बढ़ा है।

वर्टीकल फार्मिंग या खड़ी खेती क्या होती है

खड़ी खेती **(Vertical Farming)** सामान्य रूप से खुली जगह तथा इमारतों व अपार्टमेंट की दीवारों का उपयोग कर छोटी-मोटी फसल को उगाने में किया जाता है। यह एक तरह की मल्टी लेवल पद्धति है। इस तरह की खेती में एक कमरे में बहु-सतही ढांचा खड़ा किया जाता है। इस ढाँचे के निचले हिस्से में पानी से भरा टैंक होता है। टैंक की ऊपरी सतह में पौधों के छोटे-छोटे गमले रखे जाते है। पंप का उपयोग कर पोषक तत्व युक्त पानी को धीरे-धीरे इन पौधों तक पहुंचाया जाता है। इससे पौधों में तेजी से वृद्धि होती है। प्रकाश उत्पन्न करने के लिए **LED** बल्बों का इस्तेमाल किया जाता है।

इस तरह की खेती में मिट्टी की आवश्यकता नहीं होती है, तथा उगाई गई फसल खेतो के मुकाबले अधिक पौष्टिक व ताजी होती है। यदि आप इस तकनीक का इस्तेमाल खुली जगह में करते है, तो आपको तापमान नियंत्रण करना होगा। इसमें ऐरोपोनिक, एक्वापोनिक और हाइड्रोपोनिक जैसे माध्यमों का उपयोग किया जाता है। इस तरह की खेती का एक लाभ यह भी है की इसमें बहुत ही कम पानी का इस्तेमाल होता है इसमें लगभग 95 प्रतिशत पानी की बचत होती है। शहर में बने घर की छतो, बालकनी, और बहुमंजिला इमारतों के कुछ हिस्सों में उगाई गई फसल भी वर्टिकल कृषि का ही एक रूप है।

वर्टिकल खेती से होने वाली कमाई

खड़ी खेती में अधिक जगह की आवश्यकता नहीं होती है। इसमें एक गमले से लेकर एक एकड़ तक की भूमि में फसल का उत्पादन किया जा सकता है। इस तरह की खेती में बेल तथा छोटे पौधों वाली फसलों को अधिक उगाया जाता है जैसे-लौकी, टमाटर, मिर्च, धनिया , खीरा तथा पत्तेदार सब्जिया शामिल है। खेतो में की जाने वाली खेती की तुलना में खड़ी खेती में बैल की फसल का उत्पादन अधिक होता है, क्योकि इसमें बारिश के समय फसल ख़राब होने का खतरा नहीं होता है। परंपरागत खेती में पौधों में पानी देते समय फल और पौधे कई बार ख़राब भी हो जाते हैं। इस तकनीक की एक खास बात यह भी है कि इसमें रासायनिक खाद तथा कीटनाशक दवाइयों की आवश्यकता नहीं होती है। इसमें होने वाला उत्पादन पूरी तरह से ऑर्गेनिक होता है।

भारत में वर्टिकल खेती का चलन

भारत में खड़ी खेती **(Vertical Farming)** का चलन अभी कम है किन्तु कुछ विश्वविद्यालयो में अभी इस तकनीक पर शोध हो रहे हैं। मुख्य रूप से इस वर्टिकल कृषि को मेट्रो सिटी बंगलौर, हैदराबाद, दिल्ली और कुछ अन्य शहरो में किया जा रहा है। शुरुआती तौर पर इसे उद्यमियों ने शौक में चालू किया किन्तु बाद में इसे व्यावसायिक उधम का रूप दे दिया गया। इन शहरों के उद्यमी हाइड्रोपोनिक्स और एयरोपोनिक्स जैसी तकनीक का इस्तेमाल कर करते है खड़ी खेती करने में तकनीकी ज्ञान का होना बहुत जरूरी है। अमेरिका, चीन, सिंगापुर और मलेशिया तथा कई ऐसे देश भी है जहां यह फार्मिंग पहले से हो रही है।

खड़ी खेती के लाभ

बढ़ती जनसंख्या और कम होती कृषि योग्य भूमि भविष्य की एक बहुत बड़ी समस्या होगी. आने वाले समय में खेती योग्य भूमि बहुत कम होगी ऐसे समय में वर्टीकल खेती या खड़ी खेती ही हमारी इस समस्या का समाधान कर सकता हैं.

(खड़ी खेती) के माध्यम से कम जमीन में अधिक उत्पादन किया जा सकता है। खड़ी खेती में बनावटी प्रकाश और बनावटी पर्यावरण का निर्माण किया जाता हैं, जिसके कारण मौसम सम्बन्धी समस्याओं से संरक्षण प्राप्त होता हैं. फ़सल नष्ट होने या खराब होने की संभावना कम होती है। परम्परागत खेती में कई तरह के रासायनिक खाद और खतरनाक कीटनाशक दवाओं का उपयोग होता हैं जिससे तरह-तरह की बीमारियाँ फैलती हैं. खड़ी खेती में रासायनिक खाद और कीटनाशक दवाओं का उपयोग नही होता हैं और इसमें उत्पादित सामान स्वास्थ के लिए लाभदायक होता हैं. खड़ी खेती की वजह से जब कम जमीन में उत्पादन अधिक होगा तो किसानो की आय बढ़ेगी और उनके जीवन स्तर में सुधार आएगा. इस प्रकार की खेती में पानी की आवश्यकता बहुत कम होती हैं. कम वर्षा वाले जगहों के लिए वर्टीकल फार्मिंग एक सही विकल्प हो सकता है। (खड़ी खेती) में मजदूर की आवश्यकता कम होती हैं क्योकि यह ऑटोमेटेड तकनीकी पर आधारित खेती हैं.

वर्टीकल फार्मिंग या खड़ी खेती का उदाहारण

- वर्टिकल खेती में अधिकतर उद्यमी लेटिस, ब्रोकली, औषधीय व सुगन्धित जड़ी-बूटियों, फल तथा सजावटी पौधे, टमाटर, बैगन, मध्यम आकार की फसलें और स्ट्राबेरी जैसे फलो को उगाया जाता है।
- वर्टिकल खेती का सबसे अच्छा उदाहरण अलमारियों में ट्रे में लगाए गए मशरूम की खेती है। उच्च तकनीकी खेती का एक अन्य उदाहरण टिश्यू कल्चर की खेती है। इसमें सिंथेटिक बीजो को टेस्ट ट्यूब प्रक्रिया द्वारा उगाया जाता है। यह सभी उत्पाद कीट, कीटनाशक और बीमारी रहित होते है। अच्छी गुणवत्ता के चलते इनके मूल्य भी अधिक होते है।
- वर्टिकल तकनीकी में मृदा की बजाय एयरोपोनिक एक एक्वापोनिक या हाइड्रोपोनिक माध्यमों का उपयोग किया जाता है।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

मध्यप्रदेश में नर्मदा नदी की मात्स्यिकी में महाशीर मछली का महत्व और संरक्षण आवश्यकताएं

निधि कटरे
केन्द्रीय मात्स्यिकी शिक्षा संस्थान, मुंबई

सोना दुबे
नानाजी देशमुख पशु चिकित्सा विज्ञान
विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

मध्य प्रदेश, भारत का एक केंद्रीय राज्य है, जो प्रचुर संसाधनों जैसे नदियों के लिए जाना जाता है। नर्मदा नदी पश्चिम की ओर बहने वाली पांचवीं सबसे लंबी नदी है और इसे मध्य प्रदेश की जीवन रेखा के रूप में जाना जाता है। नदी मछली विविधता की व्यापक क़िस्म का प्राकृतिक आवास है। साइप्रिनफॉर्मिस दुनिया की सबसे महत्वपूर्ण मछलियां है और विभिन्न प्रकार के समूहों के बीच मीठे पानी की मछलियों के सबसे बड़े ऑर्डर में से एक है। महाशीर नर्मदा नदी की मूल निवासी है जो कि साइप्रिनफोर्मिस ऑर्डर से संबंधित है और इसे आमतौर पर ÷भारतीय मीठे पानी/जलीय प्रणालियों के राजा÷ के रूप में जाना जाता है। इस शब्द का प्रयोग अक्सर मछली प्रजातियों के लिए किया जाता है जो टैक्सोनॉमिक रूप से

टोर, नेओलिसोचिलस और नाज़िरिटोर श्रेणी से संबंधित हैं। हालाँकि, टोर श्रेणी की प्रजातियों को केवल %सच्चा महाशीर% माना जाता है। महाशीर मछलियां तेजी से खत्म होने के कारण विलुप्त होने के खतरे का सामना कर रही हैं। इंटरनेशनल यूनियन फॉर कंजर्वेशन ऑफ नेचर रेड लिस्ट, 2018 के अनुसार टोर मछलियों की तीन प्रजातियों का मूल्यांकन %खतरे के निकट%, एक %कमजोर%, तीन %लुप्तप्राय% और एक %गंभीर रूप से लुप्तप्राय% के रूप में किया गया है। हालांकि, आठ प्रजातियां में %डेटा की कमी% हैं। कई रिपोर्टों के अनुसार, महाशीर उत्पादन 2015 में घटकर 4त्न से भी कम रह गया है, जो एक दशक पहले तक नर्मदा के उत्पादन का 50त्न से अधिक था। संख्या में गिरावट के साथ, पिछले कुछ वर्षों में महाशीर का आकार कम हुआ है। 15 से 20 किलोग्राम और पांच फीट लंबी मछली का आकार अब घटकर लगभग 1 किलोग्राम हो गया है। इससे पहले नर्मदा में तीन महाशीर प्रजातियां पाई जाती थीं, जिनमें टोर पिटुटोरा, टोर खुद्री और टोर टोर शामिल हैं। वर्तमान में टोर पिटुटोरा, टोर खुद्री पहले से ही विलुप्त हो चुके हैं और केवल टोर टोर की सूचना है, जो अपने अस्तित्व के लिए भी संघर्ष कर रही है। मध्य प्रदेश में नर्मदा के तट पर बसे होशंगाबाद जिले ने देश के कुछ सर्वोपरि महाशीर उत्पादन का लुत्फ उठाया। साठ के दशक में, अकेले होशंगाबाद जिले में महाशीर की मासिक पकड़ 2-3 टन तक थी। तवा बांध और अन्य जलविद्युत परियोजनाओं के निर्माण ने महाशीर के प्रजनन के लिए प्रवास को प्रतिबंधित कर दिया है जिसके परिणामस्वरूप उनके उत्पादन में उल्लेखनीय गिरावट आई है।

महाशीर की संख्या में कमी का मुख्य कारण जलीय पारिस्थितिक तंत्र का ह्रास, ब्रूडर और किशोरों को अंधाधुंध पकड़ना, औद्योगिक प्रदूषण, विस्फोटक, जहर और इलेक्ट्रोफिशिंग, विदेशी मछली प्रजातियों का प्रभुत्व और कम उर्वरता दर है। प्रमुख पनबिजली नदी-घाटी परियोजनाओं का प्रतिकूल प्रभाव, पानी की गुणवत्ता में गिरावट और आक्रामक प्रजातियां भी भारत में महाशीर मात्स्यिकी में गिरावट के अन्य कारण हैं।

महाशीर के संरक्षण की तत्काल आवश्यकता है। उपरोक्त कारणों से, इस मूल्यवान मछली की रक्षा के लिए राज्य सरकार द्वारा 2011 में महाशीर (ट. टोर) को मध्य प्रदेश की %%राज्य मछली%% घोषित किया गया है। नतीजतन, 2011 से महाशीर मछली पकड़ने पर प्रतिबंध लगा दिया गया है। इस दिशा में, राष्ट्रीय मात्स्यिकी आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, लखनऊ ने महाशीर को एक संभावित पालन योग्य प्रजाति के रूप में पहचाना है और मछली के जर्मप्लाज्म का संरक्षण किया है। मध्य प्रदेश में टोर टोर के पालन को पिंजड़े और तालाब प्रणाली में भी किया गया है। चूंकि महाशीर एक संभावित पालन योग्य प्रजाति है, इसलिए इसका पालन पिंजरे और तालाबों में किया जा सकता है और मछली के जर्मप्लाज्म को भी संरक्षित किया जा सकता है। इसके अलावा, मछुआ समुदाय-आधारित संरक्षण कार्यक्रम आयोजित करने की तत्काल आवश्यकता है, जिसका उद्देश्य मछुआरों के बीच महाशीर के महत्व, संरक्षण और पुनर्वास आवश्यकताओं के बारे में जागरूकता पैदा करना है। महाशीर की उपस्थिति एक जलीय पारिस्थितिकी तंत्र की स्वस्थ स्थिति का संकेत है।

जनेकृविवि में सांस्कृतिक विधाओं के विशेषज्ञों ने किया छात्र-छात्राओं का मार्गदर्शन

जबलपुर। जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय में कुलपति डॉ. प्रदीप कुमार बिसेन के निर्देशन एवं अधिष्ठाता कृषि संकाय डॉ. धीरेन्द्र खरे के मार्गदर्शन में अधिष्ठाता छात्र कल्याण डॉ. अमित कुमार शर्मा द्वारा नाहेप परियोजना के सौजन्य से राष्ट्रीय स्तर पर आयोजित होने वाली विभिन्न सांस्कृतिक प्रतियोगिताओं में उत्कृट प्रदर्शन हेतु 9 दिनी कार्यशाला का आनलाइन आयोजन किया जा रहा है। छात्रों में सांस्कृतिक कार्यक्रमों हेतु प्रतिस्पर्धी भावना को उत्पन्न करने, आत्मविश्वास और रचनात्मकता पैदा करने एवं उनके समग्र व्यक्तित्व विकास को आकार देने राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्पर्धाओं में सांस्कृतिक प्रतियोगिआतों में अपनी गुणवत्ता में सुधार लाने के उद्देश्य से इस कार्यशाला का आयोजन किया जा रहा है। जिसमें विवि के सभी 10 महाविद्यालयों के छात्र-छात्राएँ लाभान्वित हो रहे हैं। अधिष्ठाता छात्र कल्याण डॉ. अमित कुमार शर्मा ने बताया कि इस कार्यशाला के अन्तर्गत राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सांस्कृतिक, साहित्यिक एवं ललितकला के ख्यातिलब्ध अनुभवी विशेषज्ञों के मार्गदर्शन में बुनियादी, विशिष्ट ज्ञान, सांस्कृतिक कार्यक्रमों हेतु तकनीक, रणनीति, प्रशिक्षण कार्यक्रम, संतुलित आहार, पोषण एवं विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रमों, प्रतियोगिताओं और उनकी तकनीकी जानकारियों से विवि के सभी 10 महाविद्यालयों के 450 से अधिक विद्यार्थियों को अवगत कराया जा रहा है।

इसके साथ ही विद्यार्थियों को सांस्कृतिक बारीकियों को समझाने एवं राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर उत्कृष्ट प्रदर्शन के उद्देश्य से भी इस कार्यशाला का आयोजन किया जा रहा है। कार्यशाला में अब तक संदीप पाण्डे, फिल्म एवं धारावाहिक निर्देशक, डॉ. सुलेखा मिश्रा, साहित्य विशेषज्ञ, मनीष दुबे ललितकला विशेषज्ञ एवं फिल्म व धारावाहिक सेट डिजाईनर अनिमेष तिवारी, संगीत निर्देशक सचिन वर्मा, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय दिल्ली संजय पाण्डे रंगमंच एवं साहित्य विशेषज्ञ द्वारा विद्यार्थियों को एग्रीयूनीफेस्ट रंगमंच, संगीत, साहित्यिक विधाओं व ललितकता की प्रतियोगिताओं के संबंध में विस्तृत प्रशिक्षण प्रदान किया गया है। कार्यशाला के उद्घाटन कार्यक्रम में अधिष्ठाता कृषि संकाय डॉ. धीरेन्द्र खरे, अधिष्ठाता कृषि अभियांत्रिकी संकाय डॉ. अतुल श्रीवास्तव, अधिष्ठाता कृषि महाविद्यालय डॉ. शरद तिवारी, डॉ. आर.के. नेमा एवं मुख्य आयोजक अधिष्ठाता छात्र कल्याण डॉ. अमित कुमार शर्मा की उपस्थिति रही। इस कार्यशाला का संचालन अधिष्ठाता छात्र कल्याण डॉ अमित कुमार शर्मा द्वारा किया जा रहा है। कार्यक्रम का संचालन डॉ. सीमा नबेरिया ने किया एवं आभार प्रदर्शन डॉ. आशीष कुमार निगम ने किया। आयोजन समिति में डॉ. धर्मेन्द्र सिंह नरवरिया, इंजी. आलोक राजपूत एवं विश्वविद्यालय के सभी सांस्कृतिक समन्वयक एवं सहायक छात्र कल्याण अधिकारियों का विशेष सहयोग रहा।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

पशु मूल के खाद्यान्न में पशु औषधि अवशेषों का सार्वजनिक स्वास्थ्य पर परिणाम

डॉ. आर. एस. तायडे एवं डॉ. आर.पी. सिंह
(सहायक प्राध्यापक) पशुजन स्वास्थ्य विभाग पशु चिकित्सा एवं पशुपालन महाविद्यालय महू, (म.प्र.)

पशु उत्पादन के क्षेत्र में पशु औषधियों का उपयोग अपरिहार्य है। पशु औषधि बीमारियों का इलाज, रोकथाम, शारीरिक कार्य में संशोधन व बदलाव, पशु विकास एवं उत्पादकता में सुधार तथा खाद्य सुरक्षा को सुनिश्चित करने हेतु आवशयक होती है। यह दवाए समूचे विश्व में उपयोग में लायी जाती है व इनमे विविध प्रकार की रासायनिक यौगिक जैसे टीके, रोगाणु व परजिविरोधी दवाए एवं हार्मोन्स आदि शामिल है। पशुओं में उच्च उपज तथा मांस की गुणवत्ता के माध्यम से पशु उत्पादन की लाभप्रदता और उत्पादकता को बढ़ाने के लिए भी इनका उपयोग किया गया है।

हालाँकि, पशुऔषधियों के नियम एवं मात्राओं की अल्प समझ के साथ-साथ अनियंत्रित उपयोग व निकासी अवधी को नजरंदाज करना पशु उत्पादों में दवा अवशेषों का कारण बन सकते है। पशु मूल के भोजन जैसे दूध आदि उत्पादों को व्यापक रूप से दुनिया भर में ग्रहण किया जा रहा है व इनमे दवा के अवशेष बड़ी सार्वजनिक स्वास्थ्य चिंता का विषय है। अतः जन स्वास्थ्य एवं पर्यावरणीय मुद्दो को ध्यान में रखते हुए, नियत सांद्रता (एम.आर.एल) से अधिक अवशेषों वाले ऐसे खाद्य उत्पादों का उपयोग को मानव उपभोग के लिए अयोग्य माना जाता है। वर्तमान में पशु उपचार एवं रोग नियंत्रण हेतु उपयोग में आने वाली अधिकांश दवाए सुरक्षित एवं गैर विषैली है, किंतु कुछ दवाओं की भोजन में पर्याप्त सांद्रता, मनुष्य के लिए औषधीय विषाक्तता, जीवाणुजन्य एवं प्रतिरक्षा-रोग से सम्बंधित स्वास्थ्य समस्याए पेश कर सकती हैं। जीवाणुरोधी दवाए स्वास्थ्य पर व्यापक परिणाम करती है। वह मनुष्य में विकास से संबंधीत विसंगतियां जैसे अस्थि मज्जा अप्लासिया (क्लोरैमफेनिकॉल), पेट व आंतो की समस्या (आंतों की शिथिलता) एवं बैक्टीरिया के प्रतिरोधी उपभेदों का विकास, जो मानव और पशु दोनों रोगों के उपचार को जटिल बनाते हैं। फ़ीड योजक के रूप में उपयोग किए जानेवाले जीवाणुरोधी एजेंट जैसे टेट्रासाइक्लिन, नाइट्रोफुरन्स और सल्फोनामाइड्स भी दूध में उत्सर्जित हो सकते है व कभी-कभी मनुष्य में विषाक्त प्रभाव से जुड़े होते है। दूध के अलावा, ऑक्सीटेट्रासाइक्लिन और एन्ड्रोफ्लोक्सासिन जैसे जीवाणुरोधी एजेंटो के, अधिकतम अवशिष्ट सीमा (एमआरएल) से अधिक अवशेष चिकन में भी पाए गए हैं। इसी तरह, बेंज़िमिडाज़ोल जैसे एंटीहेल्मिंथ एवं उनके चयापचय अवशेषों की खाद्य पदार्थों में उपस्थिति, मनुष्य में जन्मजात विकृतियां, टेराटोजेनिटी, डायरिया, फुफ्फुसीय एडिमा, पॉलीप्लाइडी और नेक्रोटिक लिम्फोएडेनोपैथी जैसे अनेक विषैले प्रभावों का कारण होती है। इसके अलावा, कई बार, जिन रोगजनकों के खिलाफ एंटीबायोटिक दवाओं का उपयोग किया जा रहा है, वे रोगाणु दवाओं के अनुचित उपयोग की तुलना में कम घातक सिद्ध होते है, जैसे की दुधारू पशुओं में थनैला रोग के उपचार हेतु एंटीबायोटिक थेरेपी का लापरवाह उपयोग। सार्वजनिक स्वास्थ्य की दृष्टी से, मनुष्य प्रत्यक्ष, पशु मूल के भोजन (दूध, मांस, और या अंडे) में दवा अवशेषों के माध्यम से, या फिर अप्रत्यक्ष रूप से, रोगाणुओं में एंटीबायोटिक प्रतिरोध निर्धारकों के चयन के माध्यम से प्रभावित हो सकता है। अतः दवा अवशेषों से संपर्क की अवधि और स्वास्थ्य परिणामों की शुरुआत के समयानुसार, इन खतरों को प्रत्यक्ष-अल्पकालिक और अप्रत्यक्ष-दीर्घकालिक खतरों के रूप में निम्नानुसार दो प्रकारों में वर्गीकृत किया जा सकता है। कई जीवाणुरोधी (एंटीबायोटिक्स) एक शक्तिशाली एंटीजन की तरह कार्य करती हैं और उनके प्रति दैनिक एक्सपोजर एलर्जी प्रतिक्रियाओं का कारण बन सकता है। इनमे अधिकांश समस्याएं दूध या मांस में पाए जाने वाले एंटीबायोटिक अवशेषों से संबंधित हैं।

एलर्जी या अतिसंवेदनशीलता प्रतिक्रियाएं: दवाओं से सम्बंधित अतिसंवेदनशीलता या एलर्जी को, एक संवेदनशील रोगी में, दवा के प्रति प्रतिरक्षा के माध्यम से होने वाली प्रतिक्रिया के रूप में परिभाषित किया गया है। यह प्रभाव काफी हद तक प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट और लिपिड मैक्रोमॉलिक्युलस से होनेवाली एलर्जी के समान ही होता है। इसमें एनाफिलैक्सिस, सीरम सिकनेस, त्वचीय प्रतिक्रिया व विलंबित अतिसंवेदनशीलता शामिल हो सकती है जिनमे अधिकतर प्रतिक्रियाएं सामान्यतः एंटीबायोटिक दवाओं, विशेष रूप से पेनिसिलिन आदि के साथ जुड़ी होती है। यह माना जाता है कि लगभग 4-11% मानव आबादी पेनिसिलिन से सम्बंधित

एलर्जी से ग्रस्त है एवं पेनिसिलिन अवशेषों वाले उत्पादों को उपभोग करने वाले मनुष्य में एलर्जी विकसित होने का खतरा अधिक होता है। पेनिसिलिन के अलावा सल्फोनमाइड एक्सपोज़र के कारण हल्के दाने से लेकर गंभीर टॉक्सिडर्मिया जैसी समस्याए उत्पन्न होती है। अध्ययन से यह भी पता चला है कि मैक्रोलाइड एंटीबायोटिक्स (जैसे एरिथ्रोमाइसिन, क्लेरिथ्रोमाइसिन) के प्रति एलर्जी लिवर कोशिकाओं को नुकसान पहुँचा सकती है। मनुष्य में दवा अवशेषों से दीर्घकालिन संपर्क के कारण उत्परिवर्तजन (mutagenicity), कार्सिनोजेनेसिटी, टेराटोजेनिसिटी और प्रजनन प्रभाव जैसे कई अन्य अप्रत्यक्ष और दीर्घकालिक परिणाम शामिल हैं।

उत्परिवर्ती (Mutagenic) प्रभाव: म्यूटैजन्स वे रसायन या भौतिक तत्व होते हैं जो डीएनए अणु में उत्परिवर्तन का कारण बन सकते हैं व जिससे कोशिका या जीव के आनुवंशिक संरचना में परिवर्तन होता है। अध्ययनों से पता चला है कि क्षारीय तत्व एवं डीएनए अनुरूप सहित कई अन्य रसायन, उत्परिवर्तजन गतिविधि को परिणाम दे सकते हैं। दवा से संबंधित जीन म्यूटैशन, जो संभवतः मनुष्य की प्रजनन क्षमता पर भी प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता है, एक बढ़ती चिंता का विषय है।

कार्सिनोजेनिक प्रभाव: इसके अतिरिक्त, कुछ जीवाणुरोधी (ऑक्सीटेट्रासाइक्लिन और फ्युराज़ोलिडोन) कार्सिनोजेन्स और प्रो-कार्सिनोजेन्स के रूप में कार्य कर सकते हैं। कार्सिनोजेन वह पदार्थ होते है जो जीव के आनुवंशिक संरचना को बदलने में सक्षम होता है व कैंसर के गठन या कार्सिनोजेनिक गतिविधि को बढ़ावा देता है। कार्सिनोजेनिक दवा अवशेष, डिऑक्सी राइबोन्यूक्लिक एसिड (डीएनए), राइबोन्यूक्लिक एसिड (आरएनए), प्रोटीन, ग्लाइकोजेन, फॉस्फोलिपिड्स और ग्लूटाथिएन जैसे इंट्रासेलुलर घटकों के साथ एक सहसंयोजक के रूप में कार्य करते है। उपभोक्ताओं में पशु औषधि अवशेषों से जुड़े कार्सिनोजेनिक एवं जीनोटॉक्सिक प्रभाव, रासायनको नियमित रूप से लंबे समय तक निगले जाने से, संभव हो सकता है। ऑक्सीटेट्रासाइक्लिन जैसे एंटीबायोटिक की नाइट्राइट के साथ प्रतिक्रिया के फलस्वरूप तयार होने वाले संयोजन नाइट्रोसामाइन एक संभावित कैंसरजनक है। इसी तरह, डायथिल स्टिलबेस्टरोल (डीईएस), का भोजन उत्पादक जानवरों में दीर्घकालिक उपयोग योनि कोशिका से सम्बंधित एडेनोकार्सिनोमा और सौम्य संरचनात्मक असामान्यताओं का कारण बन सकता है। नाइट्रोफुरन्स की उच्च और दीर्घकालिक उपयोग किए जाने पर जानवरों पर कैंसरजनक और उत्परिवर्तनीय प्रभाव का भी प्रदर्शन किया है। साथही उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर इंटरनेशनल एजेंसी फॉर रिसर्च ऑन कैंसर (आईएआरसी) के अनुसार, मेट्रोनिडाजोल दवा की पशुओं में कैंसरजनक के रूप में पहचान कि गई है। तथा एफ.ए.ओ./डब्ल्यू.एच.ओ. द्वारा संभावित कैंसरजनकों के रूप पहचान किए गए अन्य पदार्थों की श्रेणी में भी एंटीबायोटिक एडिटिव्स जैसे क्विनोक्झालिन, कार्बाडॉक्स और ओलाक्विन्डोक्स आदि सम्मिलित हैं। अतः पशु उत्पादन में उपयोग के लिए अधिकांश देशों में इन रोगाणुरोधी का उपयोग निषिद्ध है।

टेराटोजेनिक प्रभाव: वह औषधि या रासायनिक एजेंट जो गर्भावस्था के महत्वपूर्ण चरण के दौरान भ्रूण पर विषाक्त प्रभाव पैदा करता है उसे टेराटोजेन कहा जाता है। नतीजतन, जीव की संरचनात्मक और कार्यात्मक अखंडता को प्रभावित करने में सक्षम एक जन्मजात विकृति उत्पन्न हो सकती है, उदा- बेंजिमिडाजोल (एथेलमिनेटिक्स)। यह दवाई न केवल म्यूटाजेनिक होती हैं बल्कि टेराटोजेनिक गतिविधियोंको भी अंजाम देती हैं और गर्भधारणा या गर्भावस्था के शुरुआती चरण में भ्रूण के लिए अत्यधिक विषाक्त होती हैं। यूरोप में बच्चों में घटी थैलिडोमाइड विषाक्तता की प्रसिद्ध घटना उस खतरे का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

प्रजनन प्रभाव: जानवरों में किए गए दीर्घकालिक अध्ययन में, एमोक्सिसिलिन, क्लोरैम्फेनिकॉल, डॉक्सीसाइक्लिन, जेंटामाइसिन और रिफैम्पिन जैसी जीवाणुरोधी औषधियों का, माता-पिता के प्रजनन प्रदर्शन पर प्रभाव एवं संतानों में विकासात्मक विषाक्तता दिखाते हैं।

आंतों की सामान्य जीवों का विघटन: आंतों के सामान्य जीव मानव शरीर क्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। यह शरीर में पोषक तत्वों के अवशोषण के साथ-साथ मनुष्य की प्रतिरक्षा प्रणाली के विकास एवं शारीरिक क्रियान्वयन में सहायता करते है। इसके अलावा, कॉमेंसल बैक्टीरिया रक्त वाहिका जनन (एंजियोजेनेसिस) व आंतों के अधिस्तर (एपिथेलियम) के विकास को भी बढ़ावा देते हैं। यह जीव सामान्यतः आंत में रहते हैं, व रोगजनकों के आक्रमण को रोकने के साथ साथ अवरोधक के रूप में कार्य करते हैं। यह रोगजनक बैक्टीरिया को, शरीर में स्थापित होने एवं बीमारी पैदा करने से रोकता है। अतः आवश्यक होता है। हालांकि, अध्ययनों से पता चला है कि चिकित्सीय उद्देश्यों के लिए उपयोग में लाये रोगाणुरोधी आंतों में जीवों की पारिस्थितिक संरचना को संभवतः बदल सकते हैं व भोजन में उनके अवशेष सामान्य बैक्टीरिया की कुल संख्या को कम करने या कुछ चुनिंदा महत्वपूर्ण प्रजातियों को नष्ट कर सकते है। विशेषतः ब्रोड स्पेक्ट्रम रोगाणुरोधी दवाए आंतों में जीवों की एक विस्तृत श्रृंखला को प्रतिकूल रूप से प्रभावित कर सकती हैं व परिणामस्वरूप पेट एवं आंतो में अशांति का कारण बन सकते हैं। उदा. पशुओं में फ्लूनिक्सिन, स्ट्रेप्टोमाइसिन और टाइलोसिन एवं मनुष्यों में वैन्कोमाइसिन, नाइट्रोमिडाजोल और मेट्रोनिडाजोल जैसी दवाओं का उपयोग इस प्रभाव के लिए जाना जाता है।

रोगाणुरोधी प्रतिरोध का विकास : पशुधन उत्पादन में रोगाणुरोधी दवाओ (एंटीबायोटिक) का उपयोग मनुष्य में एंटीबायोटिक प्रतिरोध के विकास के साथ जुड़ा हुआ है। वह एंटीबायोटिक प्रतिरोधी जीवाणु, प्रतिरोधी वंशाणु (जीन्स) अन्य रोगजनक बैक्टीरिया में हस्तांतरीत करने की क्षमता रखते हैं। अतः वह जीवाणु मनुष्य में रोगजनक न होने की स्थिति में भी खतरनाक हो सकते है। उदा- मनुष्य में साल्मोनेला, कैम्पायलोबैक्टर और स्टेफिलोकोकस जैसे दवा प्रतिरोधी बैक्टीरिया का विकास।

पशु औषधियाँ, मुख्य रूप से रोगाणुरोधी, एंथेलमिनेटिक्स और एकैरिड्स, का खाद्य पशुओं में अनियंत्रित उपयोग, रोगाणुरोधी प्रतिरोध (एएमआर) के विकास में एक प्रमुख भूमिका निभाते हैं जिसने सार्वजनिक स्वास्थ्य को खतरे में डाल दिया है। यह समस्या, लंबे समय तक बिना चिकित्सीय सलाह के आसानी से उपलब्ध होनेवाली दवाओं के अशास्त्रीय एवं उप-चिकित्सीय सांद्रता पर तर्कहीन उपयोग से और कठीण हो जाती है। ऐसी स्थितियां पशु, पर्यावरण और मनुष्यों में प्रतिरोधी उपभेदों के चयन और प्रसार में सहायक होती है। इसके अलावा, जीवाणुओं में रोगाणुरोधी प्रतिरोध के फलस्वरूप होनेवाले परिणामों में, मनुष्य में संक्रमण की संख्या में वृद्धि, उपचार विफलताओं की आवृत्ति, संक्रमण की गंभीरता (बीमारी की लंबी अवधि, संक्रमण की आवृत्ति में वृद्धि, अस्पताल में भर्ती होना, और मृत्यु दर) एवं अंततः रोग से जुड़े लागत में वृद्धि शामिल है। खाद्य पशुओं में एक विकास प्रमोटर के रूप में एंटीबायोटिक (जैसे एवोपारिसिन) के उपयोग के फलस्वरूप व्हान्कोमाइसिन प्रतिरोधी एंटोकोकाई का विकास और प्रवर्धन हुआ। दूध में भी एंटीबायोटिक अवशेषों के दीर्घकालिक सेवन के कारण आंतों की माइक्रोफ्लोरा में दवा के प्रति प्रतिरोध में परिवर्तन हो सकता है। अंततः यह प्रतिरोधी जीवाणु लाईलाज बीमारी का कारण बन सकते है। अतः कृषि क्षेत्र में पेनिसिलिन, टेट्रासाइक्लिन और सल्फा दवाओं के उप-चिकित्सीय उपयोगों से प्रतिरोधी सूक्ष्मजीवों की उत्पत्ती डब्ल्यूएचओ द्वारा उच्च प्राथमिकता वाला मुद्दा होने का सुझाव दिया जाता है।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

अधिक लाभकारी है ग्रीष्म में तिल की खेती

श्रीमती निधी वर्मा, विजय सिंह सूर्यवंशी
डॉ. आशुतोष शर्मा एवं डॉ. के.व्ही. सहारे
कृषि विज्ञान केन्द्र, नरसिंहपुर (म.प्र.)

तिलहनी फसलों में तिल (सीसमम इंडिकम) दुनियां की सबसे पुरानी और ख़ास फसल है। 'तेल' शब्द की उत्पत्ति संभवत: तिल से ही हुई मानी जाती है। भारत के प्रमुख पर्व मकर संक्रांति के मौके पर आमतौर पर घरों में क्रंची और मीठी तिल की चिक्की और स्वादिष्ट लड्डू बनाने की परंपरा है। देश में अनेक धार्मिक अनुष्ठानों में तिल का उपयोग प्रमुखता से किया जाता है।

तिल में उत्तम गुणवत्ता वाला पौष्टिक तेल होता है जिसका उपयोग खाने में और सौंदर्य प्रसाधन सामग्री तैयार करने में किया जाता है। तिल के बीज से तैयार की जाने वाली लोकप्रिय मिठाइयों यथा गजक, रेवड़ी, तिल पट्टी आदि का व्यवस्थित व्यवसाय है जो लाखों लोगों की जीविका एवं आमदनी का साधन बन गया है। गजक तिल और गुड़ या शक्कर से निर्मित एक प्रकार की खस्ता मिठाई है। मध्यप्रदेश के मोरेना में विगत 100 वर्षो से गजक का कारोबार फल फूल रहा है। यहां की विभिन्न प्रकार की गजक पूरे देश में लोकप्रिय है।

तिल से निर्मित मुरैना की लोकप्रिय गजक

पोषक तत्वों में समृद्ध तिल के बीज से प्राप्त तेल का उपयोग खाने के अलावा वैकल्पिक चिकित्सा एवं उपचार में भी किया जाता है। पोषण की दृष्टी से तिल का तेल शक्तिवर्धक आहार है। तिल के प्रति 100 ग्राम बीज में प्रोटीन.18.3 ग्राम प्रोटीन, 43.3 ग्राम वसा, 25 ग्राम कार्बोहाइड्रेट, 1450 मि.ग्रा. कैल्शियम, 570 मि.ग्रा. फॉस्फोरस, 9.3 मि.ग्रा. आयरन विद्यमान रहता है। तिल के फेटी ऑयल में सीसमिन (163 मि.ग्रा. प्रति 100 ग्राम) तथा सीसमोलिन 101 मि.ग्रा. प्रति 100 ग्राम पाए जाते हैं जो कि शरीर में कॉलिस्ट्रोल स्तर कम करने तथा उच्च रक्तचाप को कम करने में सहायक होते हैं। इसके बीज को उर्जा का भंडार माना जाता है क्योंकि इसमें 640 कैलोरी प्रति 100 ग्राम विद्यमान होती है। इसमें दो अच्छे फीनोलिक एंटी ऑक्सीडेंट सीसमोल तथा सीसमिनोल पाए गए हैं जो कि इसे लंबे समय तक सुरक्षित बनाए रखते हैं। तिल के तेल को तेलों की रानी कहा जाता है क्योंकि इस में त्वचा निखारने और खूबसूरती बढ़ाने के गुण मौजूद होते हैं। तिल में मोनो-सैचुरेटेड फैटी एसिड होता है जो शरीर से

कोलेस्ट्रोल को कम करता है। दिल से जुड़ी बीमारियों के लिए भी यह बेहद फायदेमंद है। तिल में सेसमीन नाम का एंटीऑक्सिडेंट पाया जाता है जो शरीर में कैंसर कोशिकाओं को बढ़ने से रोकता है। इसके अलावा तिल में कुछ ऐसे तत्व और विटामिन पाए जाते हैं जो तनाव और डिप्रेशन को कम करने में सहायक होते हैं। तिल में कई तरह के लवण जैसे कैल्शियम, आयरन, मैग्नीशियम, जिंक और सेलेनियम होते हैं जो हृदय की मांसपेशियों को सक्रिय रूप से काम करने में मदद करते हैं। तिल में डाइट्री प्रोटीन और एमिनो एसिड होता है जो हड्डियों के विकास में सहायक होता है।

तिल की लाभकारी खेती ऐसे करें

विश्व में तिल के क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत का प्रथम स्थान है परन्तु प्रति हेक्टेयर उपज के मामले में मैक्सिको, चीन और अफगानिस्तान हमसे काफी आगे है। भारत में मुख्य रूप से गुजरातए पश्चिम बंगाल, कर्नाटक, राजस्थान, मध्य प्रदेशए छत्तीसगढ़, तमिलनाडु, आंध्रप्रदेश, महाराष्ट्र, उत्तरप्रदेश तथा उड़ीसा में तिल की खेती प्रचलित हैं। तिल के विविध उपयोग एवं व्यवसायिक महत्ता को देखते हुये यदि इसको मुख्य फसल के रूप में अपनाया जाए तो यह किसानों की आर्थिकी का बेहतर विकल्प बन सकता है। ग्रीष्मकालीन तिल की खेती बहुत आसान एवं लाभदायक होती है तथा उत्पादन भी खरीफ की फसल से अच्छा होता है।

भूमि एवं खेत की तैयारी

तिल शुष्क और अर्ध शुष्क क्षेत्रों में उगाई जाने वाली उष्णकटिबंधीय फसल है। पौधों की बुधवार के लिए आदर्श इष्टतम तापमान 25-27 डिग्री सेल्सियस होता है। तिल छोटे दिन का पौधा है। उच्च प्रकाश में पौधों की बढ़वार एवं उपज अधिक होती है। भारत में सभी मौसमों में तिल लगाया जा सकता है। हल्की रेतीलीए दोमट भूमि तिल की खेती हेतु उपयुक्त होती हैं। खेती हेतु भूमि का पीएचण् मान 5.5 से 7.5 होना चाहिए। भारी मिट्टी में तिल को जल निकास की विशेष व्यवस्था के साथ उगाया जा सकताहै।तिल का बीज बहुत छोटा होने की वजह से इसका अंकुरण ठीक से हो इसके लिए खेत की भली-भांति जुताई कर मिट्टी को भुर-भुरा किया जाना आवश्यक है।

उन्नत किस्मों से अधिक उपज

भूमि का प्रकार, मौसम एवं पकने की अवधि के आधार पर तिल की उन्नत प्रजातियों का चयन करना चाहिए। देशी प्रजातियों की तुलना में तिल की उन्नत प्रजातियां 25 से 100 फीसदी अधिक उपज देती हैं। बहुउपयोग एवं बाजार में अधिक मांग होने के कारण सफेद बीज वाली उन्नत किस्मों के बीज खेती हेतु इस्तेमाल करना चाहिए। अधिक उत्पादन के लिए तिल की निम्न किस्मों के बीज का प्रयोग करना चाहिए।

टी.के.जी. 308: तिल की यह किस्म 80-85 दिनों में तैयार होकर 600-700 किग्रा प्रति हेक्टेयर तक उत्पादन देती है। यह किस्म तना एवं जड सड़न रोग के लिये सहनशील है। इसके दानों में तेल की मात्रा 48-50ः होती है ।

जेण्टी-11 (पी.के.डी.एस.11) : यह 82.85 दिनों में तैयार हो जाती है। औसतन 650.700 किग्रा प्रति हेक्टर तक उत्पादन क्षमता होती है। इस किस्म के बीज गहरे भूरे रंग के होते है जिनमें 46.50 प्रतिशत तेल पाया जाता है ।

जेण्टी-12 (पी.के.डी.एस.12) : तिल की यह किस्म 82.85 दिन में पककर तैयार हो जाती हैण् इसकी उपज क्षमता 650.700 किग्रा प्रति हेक्टेयर होती है। इस किस्म के बीज सफेद रंग के होते है जिनमें तेल की मात्रा 50.53 प्रतिशत होती है ।

जवाहर तिल 306: यह किस्म 85-90 दिनों में तैयार होकर 700.900 किग्रा प्रति हेक्टेयर तक उपज देती है। यह किस्म पौध गलनए सरकोस्पोरा पत्ती घब्बा, भभूतिया एवं फाइलोड़ी रोग के लिए सहनशील पाई गई है। इसके बीजों में 50-52% तक तेल पाया जाता है ।

जे.टी.एस. 8: यह किस्म 80-86 दिनों में तैयार होकर औसतन 600.700 किग्रा प्रति हेक्टेयर उपज देती है। इसके दाने का रंग सफेद होता जिनमे 50-52% तेल पाया जाता है। यह किस्म फाइटोफ्थोरा अंगमारीए आल्टरनेरिया पत्ती धब्बा तथा जीवाणु अंगमारी रोगों के प्रति सहनशील पाई गई है ।

टी.के.जी.-55: तिल की यह सफेद बीज वाली उन्नत किस्म है जो 76-78 दिनों में तैयार होकर 630 किग्रा प्रति

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

हेक्टेयर उपज देती है। इसके दानों में तेल की मात्रा 50-53 प्रतिशत होती है। यह किस्म फाइटोफ्थोरा अंगमारी, मेक्रोफोमिना तना एवं जड़ सड़न रोगों के लिये सहनशील होती है। उपरोक्त किस्मों के अलावा टीकेजी-22, रमा सलेक्शन-5 भी तिल की उन्नत किस्में है जो ग्रीष्मकालीन खेती के लिए उपयुक्त पाई गई है। ये किस्में 80-90 दिन में तैयार होकर 700.800 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर उत्पादन देने में सक्षम है।

बुवाई का समय

वर्षा आश्रित क्षेत्रों में तिल की बुवाई खरीफ ऋतु में की जाती है परंतु सिंचाई की सुविधा होने पर ग्रीष्मकाल में तिल की खेती से अधिक उत्पादन लिया जा सकता है। ग्रीष्मकालीन तिल की बुवाई जनवरी माह के दूसरे पखवाड़े से लेकर फरवरी माह के दूसरे पखवाडे तक करना चाहिए।

बीज दर एवं बीजोपचार

उत्तम उपज के लिए उन्नत किस्म के 3-4 किलोग्राम स्वस्थ बीज प्रति हेक्टेयर की दर से आवश्यकता होती है। बीज जनित बीमारियां जैसे पौध अंगमारी, तना एवं जड़ सड़न को रोकने के लिए बीज को 2 ग्राम थायरम+ 1 ग्रा. कार्बेन्डाजिम, 2:1 में मिलाकर 3 ग्राम/कि.ग्रा. फफूंदनाशी के मिश्रण से बीजोपचार करें।

बुवाई की विधि

तिल की बुवाई कतारों में करनी चाहिए जिससे खेत में खरपतवारों की निंदाईए गुड़ाई आसानी से हो सके। छिटकवां विधि की तुलना में 25 से 30% अधिक उपज प्राप्त होती है। तिल की बुवाई कतार से कतार की दूरी 30-45 सेंमी. तथा कतारों में पौधों से पौधों की दूरी 15 सेंमी रखते हुए 2-3 सेंमी. की गहराई पर करें। बीज का आकार छोटा होने के कारण इसके बीजों को छनी हुई गोबर की खादए रेतएराख या सूखी हल्की बलुई मिट्टी के साथ मिलाकर बोया जाना चाहिए।

खाद एवं उर्वरक

पौध पोषण के लिए 5.6 टन सड़ी गोबर की खाद प्रति हेक्टेयर खेत की अंतिम जुताई के समय डालकर मिट्टी में अच्छी तरह मिलाना चाहिए। इसके अतिरिक्त 60 कि.ग्रा. नत्रजन, 40 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 20 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हेक्टेयर की दर से दिया जाना चाहिए। स्फूर एवं पोटाश की पूरी मात्रा तथा नत्रजन की आधी मात्रा बोनी करते समय आधार रूप में दें तथा शेष नत्रजन की मात्रा खड़ी फसल में बुवाई के 30-35 दिनों बाद निंदाई करने के उपरान्त खेत में पर्याप्त नमी हाने पर देवें। स्फूर तत्व को सिंगल सुपर फास्फेट के माध्यम से देना लाभकारी होता है क्योंकि इससे फसल की लिए आवश्यक गंधक तत्व की पूर्ति भी हो जाती है।

सिंचाई एवं जल प्रबंधन

तिल की किस्मों की अवधि के आधार पर तिल को 350-450 मिमी जल की आवश्यकता होती है। मिट्टी के प्रकारए मौसम की स्थिति और फसल अवधि के आधार पर

तिल फसल में 12.15 दिनों में एक बार सिंचाई देना चाहिए। इष्टतम अंकुरण एवं पौध स्थापना हेतु बुवाई के बाद एक सिंचाई आवश्यक होती है। फसल से अच्छी उपज प्राप्त करने के लिये सिंचाई हेतु क्रान्तिक अवस्थाओं यथा फूल आते समय एवं फल्लियों (कैप्सूल) में दाना भरने के समय सिंचाई करना लाभप्रद होता है। फसल की किसी अवस्था में खेत में जल भराव की स्थिति नहीं रहना चाहिए।

निंदाई-गुड़ाई एवं खरपतवार नियंत्रण

तिल की फसल बुवाई से 15-25 दिनों तक खरपतवार प्रतिस्पर्धा के प्रति सवेदनशील होती है। बोनी के 15-20 दिन पश्चात् पहली निंदाई करें तथा इसी समय आवश्यकता से अधिक पौधों को निकालना चाहिए। खरपतवारों के प्रभावी नियंत्रण हेतु बुआई के तुरंत बाद किन्तु अंकुरण के पहले पेन्डीमिथिलीन 500.700 मिण्लीण् या थायोबेनकार्ब 2 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से 600 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करना चाहिए। खरपतवार नियंत्रित न होने पर बुआई के 15 से 20 दिन बाद क्यूजोलोफाप इथाईल 800 मि.ली. प्रति हेक्टेयर की दर सी 600 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करे।

कीट नियंत्रण

तिल पत्ती मोड़क एवं फल्ली बेधक कीटरू फसल के प्रारंभिक अवस्था में इल्लियां पत्तियों के अंदर रहकर खाती हैं। प्रोफ़ेनोफॉस 50 ईसी 1 ली. प्रति हेक्टेयर दवा को 500 से 600 ली. पानी में घोलकर फसल पर छिड़काव करें।

कली मक्खी

इस कीट की इल्लियां फूल के अन्दर घुसकर क्षति पहुंचाती है कलियां सिकुड़ जाती हैं। इसके नियंत्रण हेतु क्विनॉलफॉस 25 ईसी 1.5 मि.ली./ली. या ट्रायजफॉस 40 ईसी (1 मि.ली./ली) दवा को 500 से 600 लीटर पानी में घोलकर फसल पर छिड़काव करें ।

रोग नियंत्रण

फाइटोफ्थोरा अंगमारी: प्रारंभ में पत्तियों व तनों पर भूरे रंग के धब्बे दिखते हैं जो बाद में काले रंग के हो जाते हैं। इस रोग से फसल की सुरक्षा हेतु बुवाई पूर्व बीजों को थायरम (3 ग्राम) अथवा ट्राइकोडर्मा विरिडी (5 ग्रा.कि.ग्रा. बीज) द्वारा उपचारित करें। खड़ी फसल पर रोग दिखने पर रिडोमिल एम जेड (2.5 ग्रा. प्रति लीटर पानी) या कापर अक्सीक्लोराइड की 2.5 ग्राम मात्रा प्रति लीटर पानी में घोलकर 10 दिन के अंतर से छिड़काव करें।

भभूतिया रो

इस रोग में फसल की पत्तियों पर सफेद चूर्ण दिखाई देता हैं। रोग के लक्षण प्रकट होने पर घुलनशील गंधक (2 ग्राम/लीटर) का खडी फसल में 10 दिन के अंतर पर 2.3 बार छिड़काव करें।

तना एवं जड़ सड़न रोग

इस रोग से प्रभावित पौधे की जड़ों का छिलका हटाने पर नीचे का रंग कोयले के समान घूसर काला दिखता है। इस रोग से बचने हेतु थायरम+ कार्बेन्डाजिम (2:1 ग्राम) अथवा ट्राइकोडर्मा विरिडी (5 ग्रा. प्रति कि.ग्रा. बीज) द्वारा बीजोपचार करने के बाद बुवाई करें। खड़ी फसल पर रोग के लक्षण दिखने पर थायरम 2 ग्राम् कार्बेन्डाजिम 1 ग्राम इस तरह कुल 3 ग्राम मात्रा प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर पौधो की जड़ों को तर करें। एक सप्ताह पश्चात् पुनः छिड़काव दोहराएं।

पर्णताभ रोग (फायलोडी)

फसल में फूल आने के समय इस रोग का प्रकोप होता है जिससे फूल के सभी भाग हरे पत्तियों समान हो जाते हैं। रोग से प्रभावित पौधे में पत्तियाँ गुच्छों में छोटी .छोटी दिखाई देती हैं। फुदका कीट द्वारा फैलने वाले इस रोग के नियंत्रण हेतु सबसे पहले रोगग्रस्त पौधों को उखाड़कर नष्ट करें तथा खेत में पर्याप्त नमी होने पर फोरेट 10 जी 10 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर की दर से मिलाएं । खडी फसल में डायमेथोयेट (3 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोलकर बुवाई के 30-40 और 60 दिनों पर छिड़काव करने से रोग पर काबू पाया जा सकता है।

कटाई गहाई एवं भण्डारण

आम तौर पर तिल की फसल 80-120 दिन में तैयार हो जाती है। पौधो की पत्तियां पीली पड़कर झड़ने लगे और कैप्सूल पीले.भूरे रंग के होने लगे तब कटाई करे। कटाई करने उपरांत फसल के गट्ठे बाधकर खेत में अथवा खालिहान में खडे रखे। 8 से 10 दिन तक सुखाने के बाद लकड़ी के ड़न्डो से पीटकर तिरपाल पर झड़ाई करने के उपरान्त बीज को साफ कर धूप में अच्छी तरह सूखा लेवें । बीजों में जब 8 प्रतिशत नमीं होने पर भंडार पात्रों में/भंडारगृहों में भंडारित करें अथवा बाजार में बेचने की व्यवस्था करें।

संभावित उपज एवं आमदनी

उपरोक्तानुसार बताई गई उन्नत तकनीक अपनाते हुऐ 7 से 8 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक उपज प्राप्त होती है जिसपर 8.9 हजार प्रति हेक्टेयर रूपए उत्पादन लागत आ सकती है। बाजार में उत्तम किस्म का सफेद तिल 70-80 रुपए प्रति किलो के भाव से आसानी से बिक जाता है। इस प्रकार ग्रीष्म में तिल की उन्नत खेती से 40,000 प्रति हेक्टेयर की शुद्व आमदनी प्राप्त कर दुगुना लाभ कमाया जा सकता है। इसके अलावा तिल के साथ मूंग, उर्द या सोयाबीन की अन्तवर्तीय फसल लेकर अतिरिक्त मुनाफा अर्जित किया जा सकता है।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

राष्ट्रीय पशु रोग नियंत्रण कार्यक्रम–एक अनूठी पहल

डॉ. नितिन कुमार बजाज
डॉ. गोविंद प्रसाद चौधरी
डॉ. कमलेश साह
डॉ. शिविका चौकसे, डॉ. शिल्पा साहू

पशु प्रजनन, मादा रोग एवं प्रसूति विज्ञान विभाग, पशु चिकित्सा एवं पशुपालन महाविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

भारत विश्व स्तर पर दूध (187.74 मिलियन मीट्रिक टन) का सबसे बड़ा उत्पादक है। फिर भी, पशु रोगों की व्यापकता पशुधन क्षेत्र के विकास में एक गंभीर बाधा है। इनमें से कुछ रोगों के कारण होने वाली हानियाँ अक्सर अनुमान से परे हैं। पशु रोगों की व्यापकता पशुधन क्षेत्र के विकास में एक गंभीर बाधा है। इनमें से कुछ रोगों के कारण होने वाली हानियाँ उदारण खुरपका एवं मुंहपका रोग (**FMD**), ब्रूसेलोसिस, आदि बहुत अधिक होते हैं और अक्सर अनुमान से परे होते हैं। एफएमडी की वजह से न केवल दुग्ध उत्पादन और पशुधन उत्पादों में व्यापार में कमी आई है बल्कि पशुओं में बांझपन की समस्या भी उत्पन्न होती है, पशुओं की खाल और खाल की गुणवत्ता में कमी आई है, जिसमें उनकी भर ढोने की ध् खेतों में कार्य करने की शक्ति भी शामिल है। इस प्रकार, खुरपका एवं मुहपका रोग (**FMD**) का दूध और अन्य पशुधन उत्पादों के व्यापार पर सीधा नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। ब्रूसीलोसिस पशुधन की प्रजनन से सम्बंधित बीमारी है जिसके परिणाम स्वरूप भारी वित्तीय नुकसान होता है एवं मानव स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। ब्रूसीलोसिस एक वैश्विक रोग है जो पशुओं से मनुष्यों में फैलती है (जूनोटिक रोगद्ध। ब्रूसीलोसिस एक संक्रामक रोग है जो पशुपालकों को आर्थिक रूप में क्षति पहुंचता है। पशुओं की देखभाल करने वाले मजदूरों, पशुपालकों एवं पशु चिकित्सकों को इस बीमारी से संक्रमित होने का खतरा हमेशा बना रहता है। अतः ब्रूसीलोसिस को नियंत्रित करने से न सिर्फ मानव एवं पशुओं के स्वस्थ पर प्रभाव् पड़ेगा अपितु पशु मालिकों ध् किसानों को समृद्ध आर्थिक लाभ भी होगा। इसलिए भारत देश में सभी गायों, भैंसों, बकरियों, भेड़ और सूअरों के टीकाकरण और ब्रूसीलोसिस से बचाव के लिए सभी मादा गौवंशीय बछड़ों (4-8 महीने की उम्र) के टीकाकरण द्वारा खुर और मुंह की बीमारी (एफएमडी) को नियंत्रित करना अनिवार्य है। यह न केवल जानवरों को स्वस्थ बनाएगा बल्कि दुनिया भर में हमारे पशु उत्पादों की बेहतर उत्पादकता और स्वीकार्यता में भी परिणाम देगा। अंततोगत्वा यह प्रयास किसानों की आय को दोगुना करने में और योगदान देंगे। राष्ट्रीय पशु रोग नियंत्रण कार्यक्रम (एनएडीसीपी) सितंबर, 2019 में माननीय प्रधानमंत्री द्वारा शुरू की गई एक प्रमुख योजना है, जो एफएमडी के नियंत्रण के लिए लिए 100: मवेशियों, भैंस, भेड़, बकरी और सुअर की आबादी का टीकाकरण और ब्रूसीलोसिस के नियंत्रण के लिए 100: 4-8 महीने की उम्र के: गोजातीय मादा बछड़ों का टीकाकरण करना है। राष्ट्रीय पशु रोग नियंत्रण कार्यक्रम (एनएडीसीपी) पांच साल (2019-20 से 2023-24) के लिए है एवं इसका कुल परिव्यय 13,343.00 करोड़ रुपये है।

कार्यक्रम का मूलाधार/मुख्य कारण

1. **खुरपका एवं मुहपका रोग/फुट एंड माउथ डिजीज (FMD):** खुरपका एवं मुहपका रोग/फीट एंड माउथ डिजीज (**FMD**) खुर वाले जानवरों जैसे मवेशी, भैंस, भेड़, बकरी और सूअर आदि का एक अत्यधिक संक्रामक जीवाणुजन्य रोग है जिस में पशु के मुँह एवं पैरों में छाले पद जाते हैं। इस रोग के मुख्या लक्षण हैं - तेज बुखार (104-106 डिग्री सेल्सियस), भूख न लगना, सुस्ती, अत्यधिक लार आना, मुंह में पुटिकाएं विशेष रूप से मसूड़ों और जीभ पर जिसके परिणामस्वरूप इंटर-डिजिटल स्पेस में खुर में अल्सर, अल्सर और घाव हो जाते हैं, टीट्स पर छाले आदि। खुरपका एवं मुँह पका रोग (**FMD**) के कारण दूध उत्पादन में कमी, शारीरिक विकास की दर में कमी , बांझपन, बैलों में काम करने की क्षमता में कमी इत्यादि होती है एवं अंतरराष्ट्रीय बाजार में पशु एवं पशु उत्पादों व्यापार प्रतिबंध रहता है। यह पशुओं की सबसे गंभीर बीमारियों में से एक है एवं इसका आर्थिक नकारात्मक रूप से भी गहरा पड़ता है और इसे नियंत्रण और उन्मूलन के लिए विश्व स्तर पर प्राथमिकता वाली बीमारी के रूप में मान्यता प्राप्त है। इस बीमारी के कारण किसानों को होने वाली आर्थिक क्षति बहुत अधिक है और पशु के जीवन चक्र के दौरान जारी रहती है। खुरपका एवं मुहपका संक्रमित जानवरों के साथ निकट संपर्क, दूषित चारा और पानी, जानवरों की आवाजाही के माध्यम से और एयरोसोल और दूषित वस्तुओं के माध्यम से फैलती है। जानवर के संक्रमित होने के बाद तत्काल कोई इलाज नहीं होता है। संक्रमित जानवर को अलग-थलग करना होगा और लक्षणादाहरित उपचार देना होता है और पशुशाला को उपयुक्त कीटाणुनाशक से साफ करना होत है। अतिसंवेदनशील पशुओं का खुरपका एवं मुहपका के विररुद्ध नियमित अंतराल में सामूहिक टीकाकरण ही रोग को कम करके एफएमडी पर नियंत्रण प्राप्त करने का एकमात्र उपाय है। इससे देश से धीरे-धीरे इस बीमारी के उन्मूलन का मार्ग प्रशस्त होगा।

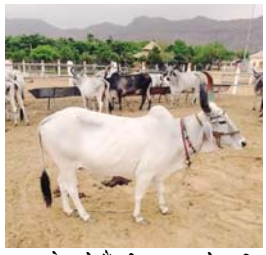

ब्रूसीलोसिस: ब्रूसीलोसिस गौवंशीय एवं महिषवंशीय पशुओं का प्रजनन सम्बंधित संक्रामक रोग है जो ब्रुरुसेला एबॉर्टस जीवाणु के कारण होता है। यह रोग के मुख्य लक्षण बुखार आना, गर्भावस्था के अंतिम चरण में गर्भपात होना, बांझपन, देरी से गर्मीध् मद में आना, दुग्ध उत्पादन में बाधा होना जिसके परिणाम स्वरूप बछड़ों ध् बछिया की हानि होती है एवं दूध के उत्पादन में कमी होती है। संक्रमित पशुओं से संपर्क में आने तथा संक्रमित पशु के दुग्ध उत्पाद के उपभोग ध् उपयोग से यह रोग मनुष्यों के स्वस्थ पर विपरीत प्रभाव डालता है।

कार्यक्रम कं उद्देश्य: खुरपका एवं मुहपका रोग (**FMD**) और ब्रूसीलोसिस (**NADCP**) के लिए राष्ट्रीय पशु रोग नियंत्रण कार्यक्रम का समग्र उद्देश्य 2025 तक (**FMD**) को टीकाकरण और 2030 तक इसके अंतिम उन्मूलन के साथ नियंत्रित करना है। इसके परिणाम स्वरूप घरेलू उत्पादन में वृद्धि होगी और अंततः दूध और पशुधन उत्पादों के निर्यात में वृद्धि होगी। ब्रूसीलोसिस को नियंत्रित करने के लिए पशुओं में गहन ब्रुसेलोसिस नियंत्रण कार्यक्रम की परिकल्पना की गई है, जिसके परिणाम स्वरूप पशुओं और मनुष्यों दोनों में रोग का प्रभावी प्रबंधन होगा।

निधि का प्रावधान: एफएमडी और ब्रूसीलोसिस (एनएडीसीपी) के लिए राष्ट्रीय पशु रोग नियंत्रण कार्यक्रम केंद्रीय क्षेत्र की योजना है जहां केंद्र सरकार द्वारा राज्यों/केंद्रशासित प्रदेशों को 100% धनराशि प्रदान की जाएगी।

एफएमडी और ब्रूसीलोसिस की रोकथाम के लिए एनएडीसीपी के तहत गतिविधियां

खुरपका एवं मुहपका का नियंत्रण: इस कार्यक्रम की प्रमुख गतिविधियां- ■ गायों, छोटे जुगाली करने वालों (भेड़ और बकरियों) और सूअरों की पूरी अतिसंवेदनशील आबादी को छह-मासिक अंतराल पर एफएमडी के खिलाफ सामूहिक टीकाकरण। ■ गोजातीय बछड़ों का प्राथमिक टीकाकरण (4-5 महीने की उम्र)। ■ टीकाकरण से पहले एक माह पूर्व कृमिनाशक दवाई का उपयोग करना। ■ कार्यक्रम के कार्यान्वयन के लिए प्रचार और जन जागरूकता अभियान। ■ पशु उत्पादकता और स्वास्थ्य (**INAPH**) के लिए सूचना नेटवर्क के पशु स्वास्थ्य मॉड्यूल में ईयर-टैगिंग, पंजीकरण और डेटा अपलोड करके लक्षित जानवरों की पहचान। ■ पशु स्वास्थ्य कार्ड के माध्यम से टीकाकरण का रिकॉर्ड बनाए रखना। ■ कोल्ड कैबिनेट्स (आइस लाइनर, रेफ्रिजरेटर, आदि) और एफएमडी वैक्सीन की खरीदारी एवं उपयोग। ■ रोग के प्रकोप के मामले में जांच और वायरस स्ट्रेन की पहचान और टाइपिंग। ■ अस्थायी क्वारंटाइनध्चेक-पोस्ट के माध्यम से पशुओं की आवाजाही की रिकॉर्डिंग/ विनियमन।

ब्रूसीलोसिस का नियंत्रण: इस कार्यक्रम की प्रमुख गतिविधियां

■ इस घटक की प्रमुख गतिविधियों में बीमारी की सटीक जानकारी जानने के लिए मवेशियों और भैंसों की सामूहिक जांच शामिल है। ■ सभी मादा बछड़ों का टीकाकरण बी. एबॉर्टस एस-19 स्ट्रेन वैक्सीन का उपयोग करके 4-8 महीने के बीच किया जाता है। ■ राज्य/ केंद्रशासित प्रदेश में एलिसा प्रयोगशाला को मजबूत करने के लिए, एलिसा प्रयोगशालाओं के लिए उपभोग्य वस्तुएं, पर्याप्त जनशक्ति के अभाव में निजी तौर पर लगे टीकाकरणकर्ताओं को पारिश्रमिक, राष्ट्रीय, राज्य और ब्लॉक स्तर पर प्रचार और जागरूकता अभियान, कार्यक्रम के कार्यान्वयन के लिए राज्य के पदाधिकारियों के उन्मुखीकरण और मुख्यालय में ऑनलाइन निगरानी और डेटा प्रबंधन इत्यादि के लिए एकमुश्त अनुदान का प्रावधान। ■ टीकाकरण की सभी गतिविधियों को करने के लिए केंद्र सरकार द्वारा 100% वित्तीय सहायता प्रदान की जाएगी। ■ 4-8 महीने की मादा गोजातीय बछड़ों में ब्रूसीलोसिस के विरुद्ध टीकाकरण एक बार किया जाना है। ■ ब्रूसीलोसिस अत्यधिक जूनोटिक है, इसलिए जीवित क्षीण टीकों और टीकाकरण वाले पशुओं को संभालने हेतु अतिरिक्त देखभाल की आवश्यकता होती है अतः पशुओं के टीकाकरण करने वाले वक्सीनेटर्स की व्यक्तिगत सुरक्षा उपकरण (पीपीई) गमबूट, काले चश्मे, दस्ताने और मास्क आदि की आवश्यकता होती है और टीकों को संभालने और जानवरों के टीकाकरण के लिए उचित प्रशिक्षण की भी आवश्यकता होती है। इन सभी सुरक्षा उपकरणों हेतु केंद्र सरकार द्वारा 100% वित्तीय सहायता प्रदान की जाएगी। ■ मनुष्यों में यह रोग खंडित त्वचा एवं नेत्र-श्लेष्मला,संक्रमित आहार- बिना पका दूध एवं दुग्ध उत्पाद एवं संक्रमित एयरोसोल से फैलता है एवं पशुओं में संक्रमित ऊतक या शारीरिक द्रव्य से, संक्रमित आहार एवं जल के सेवन से, सक्रमित जेर/ गर्भनाल एवं भ्रूण को चाटने से, संक्रमित सांड के वीर्य से एवं ग्याभिन मादा पशु से बच्चे में फैलता है। अतः पशुपालन से सम्बंधित व्यक्तियों एवं पशु स्वास्थ सेवाओं से संबंधित अधिकारियों एवं कर्मचारियों में ब्रूसीलोसिस के प्रति जागरूक करना।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

चीकू या सपोटा के मुख्य कीट एवं उनका नियंत्रण

Dr. Harendra (M.Sc. Agri., Ph.D. & 2×NET)
Assistant Professor (Horticulture)
Dr. Biwash Gurung (M.Sc. Agri., Ph.D. & NET)
Assistant Professor (Ag. Entomology) SOAG
(ICAR-Accredited), ITM University Gwalior (M.P.)

चीकू जिसे इंग्लिश में सपोटा कहते हैं, का वानस्पतिक नाम Achras zapota होता है तथा यह Sapotaceae कुल का पौधा है और इसका उद्भव स्थान मैक्सिको को माना जाता है। भारत में चीकू की खेती महाराष्ट्र, कर्नाटक, गुजरात तथा तमिलनाडु राज्यों में बड़े क्षेत्रफल में की जाती है। चीकू के फल में दो से लेकर पांच तक काले रंग के बीज पाए जाते हैं।

चीकू के फल के लिए को ज्यादा सिंचाई और अन्य रख-रखाव की जरूरत नहीं है। थोड़ा से खाद और पानी से इसकी खेती अच्छी होती हैं।

चीकू की फसल में कीट प्रबंधन

सामान्यतया चीकू की फसल में निम्न मुख्य कीट का प्रकोप होता है-

फल छेदक कीट

चीकू की फसल में लगने वाला यह कीट बहुत ही ज्यादा नुकसानदायक होता है यह कीट चीकू के फलों में छेद कर देता है जिससे उनमे गोंद निकलने लगता है साथ ही साथ वो सड़ने लगते हैं। फलस्वरूप वह सूख जाते है जिससे किसानों का बहुत ज्यादा आर्थिक नुक्सान हो जाता है।

रोकथाम

इस कीट की रोकथाम के लिए क्यूनालफॉस (0.05 प्रतिशत) या कार्बराइल 0.02 प्रतिशत के घोल का

छिड़काव करना चाहिए दवा के छिड़कने के बाद फलों को कपड़े या बटर पेपर से ढंक देते हैं।

मिली बग कीट

यह कीट भी चीकू की फसल के लिए भयानक है तथा लगने पर फसल पर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ता है यह कीट अग्रिम कलिकाओं पर और पत्तियों की सतह के नीचे सफ़ेद आटे का महीन चूर्ण के समान दिखाई पड़ता है जिससे पत्तियां सूख जाती है और बाद में झड भी जाती है।

रोकथाम

इस कीट की रोकथाम के लिए फेनथोइड 0.05 प्रतिशत या डाईमेक्रोंन की 30 मिली लीटर मात्रा को पानी में घोलकर छिड़काव करने से रोग का नियंत्रण किया जा सकता है तथा अंडे और कीट इकट्ठा करके दोनों को नष्ट कर देना चाहिए।

हैयरी कैटरपिलर

पीले भूरे रंग का कीट जिसके ऊपर काले धब्बे और लंबे बाल होते हैं। यह भी चीकू की फसल का नुकसानदायक कीट है इसके प्रभावी ढंग से नियंत्रण के लिए क्लोरोपायरीफ़ॉस 20 ई.सी. को पानी में मिलाकर छिड़काव करने से इसका नियंत्रण किया जा सकता है। इसके साथ साथ चीकू में तना बेधक एवं पत्ती लपेटक (चीकू मोथ) आदि कीटों का भी प्रकोप होता है जिसके नियंत्रण के लिए मैंकोजेब 2 ग्रा./लीटर तथा मोनोक्रोटोफास 1.5 मिली./लीटर के घोल का छिड़काव किया जा सकता है।

औषधीय एवं संगधीय फसलों की खेती के लिए किया जागरूक

जबलपुर

जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय स्थित पादप कार्यिकी विभाग के अन्तर्गत संचालित अखिल भारतीय औषधीय संगधीय एवं पान परियोजना के तहत कृषि विज्ञान केन्द्र दमोह में अनुसूचित जाति एवं आदिवासी सहपरियोजना द्वारा दो दिवसीय प्रशिक्षण का आयोजन किया गया।

प्रशिक्षण कार्यक्रम में संयुक्त संचालक अखिल भारतीय औषधीय संगधीय एवं पान परियोजना एवं कृषि विज्ञान केन्द्र दमोह द्वारा वर्तमान समय में औषधीय एवं संगधीय फसलों की खेती करने एवं इससे लाभ कमाने के लिये जागरूक किया गया। परियोजना प्रमुख डॉ. विभा पांडेय ने औषधीय एवं संगधीय फसलों की खेती के विषय में जानकारी दी। डॉ. अनुभा उपाध्याय ने प्रसंस्करण विधि द्वारा इन फसलों में मूल्य संवर्धन की जानकारी प्रदान की तथा डॉ. ज्ञानेन्द्र तिवारी ने इन फसलों के औषधीय एवं कृषि महत्व को समझाया। कृषि विज्ञान केन्द्र प्रमुख डॉ. मनोज अहिरवार ने उत्पादन से कृषि आय को दोगुना करने का विकल्प बताया।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

पलक डोंगरे, जगत प्रताप सिंह दांगी
पीएच.डी. शोधार्थी (सब्जी विज्ञान) राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)

निखिल परिहार पीएच.डी. शोधार्थी (फल विज्ञान)
राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय, ग्वालियर

नम्रता चौहान पीएच.डी. शोधार्थी (सस्य विज्ञान)
राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय, ग्वालियर

कसूरी मेथी की खेती

कसूरी मेथी एक सुगन्धित मेथी की प्रजाति हैं । यह एक वर्षीय शाकीय पौधा हैं । इसकी ऊँचाई लगभग 46 से 56 सेंटी मीटर तक होती हैद्य यह स्वःपरागित पौधा हैं । इसकी बढ़वार बहुत धीमी गति से होती है तथा पत्तिया छोटे आकार की गुच्छे में लगी होती है । पत्तियों का रंग हल्का हरा होता है । इसके फूल, चमकदार नांरगी पीले रंग के एवं तने परआतेहैद्य फली की लम्बाई 2 से 3 सेंटीमीटर होती है । बीज अपेक्षाकृत छोटे होते है। भारत में कसूरी की खेती कुमार गंज, फैजाबाद (उत्तरप्रदेश) और नागौर (राजस्थान) में अधिक क्षेत्र में की जाती है लेकिन अच्छी सुगन्ध नागौर जिले में ही आती है और यहीं पर यह व्यवसायिक रूप में पैदा की जाती है और इसी कारण से यह मारवाड़ी मेथी के नाम से भी जानी जाती है ।

जलवायु: कसूरी मेथी की खेती रबी के मौसम में की जाती है यह ठंडी जलवायु की फसल है । इसकी प्रारंभिक वृद्धि के लिए मध्यम आर्द्रजलवायु तथा कम तापमान उपयुक्त रहता है। यह पाले के प्रति काफी सहनशील होती है।

उपयुक्त भूमि: दोमट तथा बलुई दोमट मिटटी कसूरी मेथी की खेती के लिए उत्तम होती है । इसमें कार्बनिक पदार्थ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होने चाहिए खेती दोमट मटियार भूमि में भी सफलता पूर्वक की जा सकती है। यह क्षारीय भूमि के प्रति अन्य फसलों की तुलना में अधिक सहनशील होती है। कसूरी मेथी की खेती 5.5-6.5 तक ची मान वाली भूमि से आसानी से की जा सकती है।

खेत की तैयारी: कसूरी मेथी के अच्छे उत्पादन के लिए हल्की मिट्टी में कम जुताई व भारी मिट्टी में अधिक जुताई कर के खेत को तैयार करें । मिट्टी पलटने वाले हल से एक जुताई करके, एक या दो जुताई देशी हल या हैरो चलाकर मिट्टी को भुरभूरी बनालेवें और शीघ्र पाटा लगा देना चाहिए जिससे नमी का ह्रास न हो ।

उन्नत किस्में

कसूरी की प्रचलित किस्में पुसा कसूरी वना गौरी मेथी या मारवाड़ी मेंथी हैं ।

पूसा कसूरी: यह किस्म भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद दिल्ली द्वारा विकसित की गई है। इस किस्म की खेती मुख्यतः हरी पत्तियों के लिए की जाती है। इसकी पत्तियां छोटी और हंसिए के आकार की होती हैं। इसमें 2-3 बार कटाई की जा सकती है। इस किस्म की यह खूबी है कि इसमें फूल देर से आते हैं और पीले रंग के होते हैं, जिनमें खास किस्म की महक भी होती है। बोआई से लेकर बीज बनने तक यह किस्म लगभग 5 महीने लेती है। इसकी औसत पैदावार 35-40 क्विं. प्रति हेक्टेयर है।

बुआई का समय: कसूरी मेथी की बुआई के लिए उपयुक्त समय 15 अक्टूबर से नवम्बर माह है ।

बीज दर: कसूरी मेथी की बीज दर छिटकवां विधि से 100 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर एवं कतार विधि से 30 से 35 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर होती है ।

बीज उपचार: कसूरी मेथी की अच्छी वृदि और उपज के लिए बीज उपचार आवश्यक है। एक दिन पहले पानी में भिगोने पर जमाव में वृद्धि होती है द्य 50 से 100 पीपीएम साइकोसिल घोल में भिगोने से जमाव में वृद्धि एवं अच्छी बढ़वार होती है। बोने से पहले राइजोबियम/30 मिली लीटर/किलो ग्राम बीज की दर से बीजो का उपचार अवश्य करें ।

बुवाई व विधि: कसूरी मेथी को बोने की दो विधियाँ प्रचलित है । जो इस प्रकार है-

छिटकवां विधि: इसमें सुविधानुसार क्यारिया बनायी जाती हैं फिर बीजों को एक समान रूप से छिड़ककर मिट्टी से हल्का-हल्का ढक देते है ।

कतार विधि: इस विधि में 20 सेंटी मी. कतार से कतार की दूरी तथा 10 सेंटी मी. पौधे से पौधे की दूरी रखी जाती है । बीज की गहराई 2 सेंटी मी. से ज्यादा नही होनी चाहिए।

खाद एवं उर्वरक: कसूरी मेथी के लिए नत्रजन, फास्फोरस तथा पोटाश का अनुपात 1:2:1 का होता है। गोबर या कम्पोस्ट की खाद 15 से 20 टन प्रति हैक्टेयर देनी चाहिए । कसूरी मेथी में 20 किलो ग्राम नत्रजन, 40 किलो ग्राम फास्फोरस एवं 20 किलो ग्राम पोटाश देने से पत्तियों की अच्छी उपज प्राप्त होती है। इसके अलावा 2 प्रतिशत एनपीके के घोल का स्प्रे करने पर पत्तियों की उपज में 20 प्रतिशत वृद्धि पाई गई है। अतः फास्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा एवं नत्रजन की आधी मात्रा बुआई के समय देनी चाहिए । शेष आधी नत्रजन की मात्रा और 2 प्रतिशत एनपी के का छिड़काव हर कटाई के बाद देवें।

सिंचाई: कसूरी मेथी की बुआई के तुरन्त बाद सिंचाई करनी चाहिए । इसके बाद 10 से 15 दिन के अन्तराल पर सिंचाई करनी चाहिए , पुष्पन एवं बीज बनते समय मिटटी में प्रर्याप्त नमी होनी चाहिए ।

खरपतवार नियंत्रण: कसूरी मेथी की खेती प्रायः पत्तियों की कटाई के लिए की जाती हैं । इसकी बुआई के 15 दिन बाद और पत्तियों की कटाई करने से पहले खरपतवारों को हाथ से निकाल देना चाहिए । बुवाई से पहले खरपतवार नाशी फ्लूक्लोरेलीन 1 किलो ग्राम क्रियाशील तत्व प्रति है. की दर से मिला ने पर खरपतवार कम उगते है।

रोग एवं रोकथाम

चूर्णिल आसिता: इसे छाछ्या रोग भी कहते हैं, प्रारम्भ में पत्तियों पर सफेद चूर्णिल पुंज दिखाई देते हैं और उग्र रूप में पूरे पौधे को चूर्णिल आवरण से ढक देते हैं। इससे बीज की उपज एवं गुणवता में कमी आ जाती है।

रोकथाम: 0.2 प्रतिशत निलम्बन शीलगंधक 500 लीटर घोल प्रति हैक्टेयर 0.1 प्रतिशत बावस्टिन तथा 0.1 प्रतिशत कैराथेन एल सी का पर्णीय छिड़काव करें।

मृदुरोमिलआसिता: रोग के प्रारंभ में पत्ती की निचली सतह पर सफेद मृदुरोमिल वृद्धि दिखायी देती है। रोग के बढ़ने पर पत्तियां पीली होकर गिरने लगती हैं और पौधों की बढ़वार रूक जाती है ।

रोकथाम: ब्लाइटाक्स 50 का 0.3 प्रतिशत को 400 से 500 लीटर घोल प्रति हैक्टेयर याडायथेन जेड-78 या डायथेनएम-45 का 0.3 प्रतिशत घोल का 15 दिन के अन्तराल पर छिड़काव करें ।

मूलगलन: यह कसूरी मेथी की गंभीर बीमारी हैं । जिसमें जड़ों के पास सड़न तथा बुआई के 30 से 35 दिनों के बाद पौधे पीले होकर सूख जाते है ।

रोकथाम: नीम की खली 1 टन प्रति हैक्टेयर बुआई से पूर्व भूमि मे मिलाए और बीज उपचार कार्बेन्डाजीम 2 ग्राम दवा प्रति 1 किलो ग्राम बीज दर के हिसाब से करना चाहिए।

कीट एवं रोकथाम

माहू: इसके नियंत्रण के लिए 0.03 प्रतिशत डाइमेथोएट 30 ईसी या फास्फेमिडान 40 ईसी में से कोई एक दवा का 400 - 500 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टेयर छिडकाव प्रभावी होता है ।

दीमक: इसकी रोकथाम के लिए 4 लीटर प्रति है. क्लोरोपायरीफास सिंचाई के साथ पानी में देते है ।

जैविक रोकथाम: उपर्युक्त कीट एवं रोगों के लिए 2 टन प्रति हेक्टर की दर से नीम की खली एवं 2.5 किलो ग्राम प्रति हेक्टर की दर से ट्राइकोडर्मा विरिडी भूमि में मिलावें और 5 प्रतिशत नीम बीज अर्क का छिडकाव 10 दिन के अंतराल पर (दो से तीन बार) करना प्रभावी पाया गया है।

फसल कटाई: अक्टूबर में बोई गई फसल से पत्तियों की पांच व नवम्बर में बोई गई फसल से पत्तियों की चार कटाई लेनी चाहिए । उसके बाद फसल को बीज के लिए छोड़ देना चाहिये द्य पत्तियों की पहली कटाई बुआई के 30 दिन बाद करें फिर 15 दिन के अन्तराल पर कटाई करते रहे। कटाई करने के बाद पत्तियों को तिरपाल पर रखकर हल्की धूप में सुखा लेवें जिससे उनका रंग व सुंगध अच्छी होती है ।

पैदावार: कसूरी मेथी की पत्तियों की उपज उसकी कटाई की संख्या पर निर्भर करती है। यदि चार कटाई ली है, तो हरी पत्तियों की उपज 80 से 90 क्विं. प्रति है. तथा बीज की उपज 6 से 7 क्विं. के प्रति है. तथा पांच कटाई लेने पर हरी पत्तियों की उपज 90 से 110 क्विं. प्रति हैक्टेयर और बीज की उपज 4 से 6 क्विं. प्रति है. प्राप्त होती है।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

संक्रामक श्लेषपुटी (बर्सल) रोग (आईबीडी)

डॉ. विशम्भर दयाल शर्मा
डॉ. सूर्य प्रताप सिंह परिहार
डॉ. गया प्रसाद जाटव
डॉ. सुप्रिया शुक्ला
डॉ. निधि श्रीवास्तव, डॉ. जयवीर सिंह

पशु विकृति विज्ञान विभाग, पशु चिकित्सा एवं पशु पालन महाविद्यालय, (नानाजी देशमुख पशु चिकित्सा विश्वविद्यालय जबलपुर) महू (म.प्र.)

संक्रामक श्लेषपुटी (बर्सल) रोग (आई बी डी), यह रोग मुख्यतः मुर्गियों में देखा जाता है। पिछले कई दशकों से यह रोग मुर्गियों की मृत्यु का मुख्य कारण रहा है। यह बीमारी मुर्गियों की प्रतिरक्षा तंत्र को क्षीण कर देती है। मुख्यतः यह युवा मुर्गियों में पानी जाने वाली बीमारी है। यह बीमारी मुख्य रूप से लिम्फोइड (लसिकावत) अंगों को प्रभावित करती है, जैसे की बर्सा ऑफ फेब्रिसियस में पायी जाने वाली लिंफोइड (लसीकावत) कोशिका। जिसके परिणाम स्वरूप लसिकावत की मुर्गियों में कमी हो जाती है और बर्सा धीरे-धीरे नष्ट हो जाती है।

युवा मुर्गियाँ जिनकी उम्र 3 सप्ताह से 6 सप्ताह के मध्य होती है, वे इस रोग के विषाणु के लिए अतिसंवेदनशील होती है। यह युवा मुर्गियों में पाया जाने वाला एक बहुत ही तीव्र संक्रामक रोग है।

रोगकारक

यह एक विषाणु जनित रोग है जो कि मुख्यतः बिरना वायरस से होता है। यह विषाणु बिरनाविरीडी परिवार (फैमिली) मे आता है। यह एक RNA (आरएनए) वायरस है जिसकी संरचना दोहरी किनारा, बिना ढका हुआ, विंशतिफलक कैप्सिड (पेटिका), दो विभाजित जीनोम जैसी होती है।

इस वायरस के मुख्यतः दो सीरोटाइप होते हैं

सीरोटाइप-1

यह मुख्यतः रोगजनक होता है

सीरोटाइप-2

यह रोगजनक नहीं होता है

इसमें 50 प्रतिशत तक मृत्युदर पायी जाती है। यह बी लिम्फोसाईट (लसिकावत) की कोशिकाओं को संक्रमित करता है।

रोग का फैलना

यह रोग प्रत्यक्ष अंतःग्रहण से, संक्रमित मल मूत्र और पानी से फैलता है। यह संक्रमित पदार्थों से तथा भौतिक रोगवाहक जैसे जंगली पक्षी, मानव और कीट आदि से भी फैल सकता है।

रोगजनन

यह विषाणु सर्वप्रथम मुख, नेत्र श्लेष्मा और श्वसन तंत्र के मार्ग से शरीर में प्रवेश करता है। वहाँ से विषाणु यकृत (लीवर) की कुप्फर कौशिका तक पहुँच जाता है। उसके बाद विषाणु रक्त की कोशिकाओं पर आक्रमण कर देता है अर्थात रक्त में चला जाता है। तत्पश्चात् विषाणु रक्त के द्वारा दूसरे उत्तकों में वितरित कर दिया जाता है जैसे-छोटी आंत्र, सीकल गलतुंडिका (टॉन्सिल), बर्सा आदि। बर्सा में यह विषाणु लगातार अपनी संख्या बढ़ाता रहता है एवं बर्सा, प्लीहा और सीकल टॉन्सिल में लसीकावत कोशिकाओं को लगातार नष्ट करता रहता है। यह विषाणु मुख्य रूप से B - लसिकावत कोशिकाओं को नष्ट करता है और T - लसिकावत कोशिकाएँ इस से प्रभावित नहीं होती है।

धीरे-धीरे बर्सा का आकार बढ़ता चला जाता है और किडनी (गुर्दा) में यूरेट्स क्रिस्टल जमा होता चला जाता है। बर्सा में लसीकावत कूपों की कमी होती चली जाती है और इस प्रकार प्रतिरक्षा तंत्र धीरे-धीरे क्षीण होता चला जाता है। यह विषाणु रक्त के थक्का बनने के समय को भी बढ़ा देता है और इस प्रकार यह रक्त के थक्का बनने की प्रक्रिया को भी प्रभावित करता है ।

लक्षण

मुर्गियों में इसके इस रोग के कई लक्षण देखने को मिलते हैं- • मुगियों में उदासीपन • दस्त • भूख न लगना • झालरदार पंख • चलने में दिक्कत • मृत्यु दर में वृद्धि इत्यादि

विभिन्न अंगों में विक्षति

- मृत्यु के बाद मुर्गियों का शव निर्जलीकृत दिखाई देता है।
- जाँघ और अंसपेशीयों में रक्तस्राव
- ग्रंथिलजठर (प्रोवेन्ट्रीकुलर) और पेषणी (गिजार्ड) के संयोजन स्थल पर रक्तस्राव
- बर्सा में सूजन और आकार का बढ़ जाना
- यकृत (लीवर) में सूजन और रोगगलन हो जाना
- खून की कमी
- गुर्दा में सूजन, गुर्दा की नलिकाएँ फूल जाती है एवं इनमें भी सूजन आ जाती है

उपचार एवं रोकथाम

यह एक विषाणु जनित बीमारी है। इसका पूर्ण रूप से ईलाज संभव नहीं है। लेकिनफिर भी इसका लक्षण आधारित उपचार किया जा सकता है । इस बीमारी को अन्य मुर्गियों में फैलने से रोकने के लिए एवं नियंत्रण के लिए निम्नलिखित उपाय जरूर करने चाहिए-

उचित प्रबंधन, स्वच्छता एवं रखरखाव

- इस बीमारी से बचाव के लिए जैव सुरक्षा (बायो सिक्योरिटी) रखनी चाहिए ।
- मुर्गियों के आवास की सम्पूर्ण रूप से साफ सफाई एवं निःसंक्रामक दवाइयों का उपयोग करना चाहिए।
- बीमार एवं मृत मुर्गियों को स्वस्थ मुर्गियों से अलग रखना चाहिए।
- समय-समय पर पशुचिकित्सकों द्वारा मुर्गियों की जाँच करवाना चाहिए।
- दाना-पानी एवं दवाइयों का समय के हिसाब से उचित प्रबंधन होना चाहिए।
- मुर्गियों के आवास में नमी, प्रकाश आदि चीजों का संपूर्ण रूप से ध्यान रखना चाहिए।

टीकाकरण

मुर्गियों के प्रतिरक्षा तंत्र को मजबूत करने के लिए समय-समय पर उनका टीकाकरण अवश्य कराना चाहिए ताकि सभी मुर्गियों की अन्य बीमारियों से सुरक्षा की जा सकें। उचित टीकाकरण ही बचाव एवं उपचार का माध्यम होता है।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

पॉलीहाउस में शिमला मिर्च का उत्पादन

नवीन (पी.एचडी. शोधार्थी, कृषि कीट विज्ञान विभाग, राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि वि.वि., ग्वालियर (म.प्र.)

नीरज कुमार, गोपीलाल अंजना

(पी.एचडी. शोधार्थी) कृषि कीट विज्ञान विभाग

जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

शिमला मिर्च, मिर्च की एक प्रजाति है जिसका प्रयोग भोजन में सब्जी की तरह किया जाता है। अंग्रेजी मे इसे कैप्सिकम (जो इसका वंश भी है) या पैपर भी कहा जाता है। शिमला मिर्च एक ऐसी सब्जी है जिसे सलाद या सब्जी के रूप में खाया जा सकता है। पोली हाऊस में उगायी जाने वाली सब्जियों में शिमला मिर्च का प्रमुख स्थान है। बाजार में शिमला मिर्च लाल, हरी या पीले रंग की मिलती है। रंगीन शिमला मिर्च की मांग बड़े शहरों, होटलो एवं शादी समारोहों में लगातार बढ़ रही है, यह अधिक लाभ देने वाली फसल है, एवं इसका गुणवत्तायुक्त उत्पादन केवल पोली हाऊस में ही संभव हो पाता है। चाहे शिमला मिर्च किसी भी रंग की हो लेकिन उसमें विटामिन सी, विटामिन ए और बीटा कैरोटीन भरा होता है। इसके अंदर बिल्कुल भी कैलोरी नहीं होती इसलिए यह खराब कोलेस्ट्रॉल को नहीं बढ़ाती। साथ ही यह वजन को स्थिर बनाए रखने में भी मददगार है। भारत में शिमला मिर्च की खेती हरियाणा, पंजाब, झारखंड, उत्तरप्रदेश, कर्नाटक आदि प्रदेशों में सफलतापूर्वक की जाती है। इसके अलावा अब तो पूरे भारत में इसकी खेती की जाने लगी है। इनका प्रयोग सलाद के रूप में भी किया जाता है। पोली हाऊस में शिमला मिर्च की सफल खेती निम्न प्रकार से की जा सकती है ।

उन्नत किस्में

लाल शिमला मिर्च: बौम्बी, नन 3019, नताशा, टोरकल, महाभारत, तनवी प्लस, बचाटा।

पिली शिमला मिर्च: स्वर्णा, फिएस्टा, नन 3020, औरोवेले यू. एस. 26, परसिलीया।

हरी शिमला मिर्च: इन्दिरा, भारत, केलिफोर्निया वन्डर, गिनगोल्ड।

तापमान एवं आर्द्रता : शिमला मिर्च जलवायविय कारको से अत्यधिक संवेदनशिल फसल है अतः इसकी खेती अन्य सब्जियों की अपेक्षा कठिन होती है। पौधो की सामान्य वृद्धि के लिए 20-25 से मृदा ताप उपयुक्त रहता हैं। फलस्थापन के लिए दिन का तापमान 20-22 से एवं रात का तापमान 18 से उपयुक्त होता है। आपेक्षित आर्दता 75-80 प्रतिशत वांछित होती है।

नर्सरी तैयार करना : एक हजार वर्ग मीटर क्षेत्र में शिमला मिर्च के 3000 पौधो की आवश्यकता होती है। नर्सरी उठी हुई क्यारियों अथवा प्रो- ट्रे में तैयार की जा सकती है। क्यारियों में पौध तैयार करने से कवक जनित मृदोढ़ रोगों के फैलने का अंदेशा रहता है क्योकि शुरूआती अवस्था में पौधे इन रोग कारको से अति संवेदनशिल होते हैं। अतः जहां तक सम्भव हो पौध प्रो- ट्रे में ही तैयार करनी चाहिए। सर्वप्रथम प्रो- ट्रे को साफ पानी से धोकर 2 घन्टे धूप में सुखाना चाहिए अथवा प्रो- ट्रे का निर्जलीकरण करना चाहिए तत्पश्चात प्रो ट्रे में वर्मीकुलाइट, परलाइट एवं कोकोपिथ का मिश्रण क्रमशः 1:1:2 के अनुपात में (आयतानुसार) भरना चाहिए। मिश्रण में पर्याप्त पानी मिलाना चाहिए। इस मिश्रण में इतना पानी मिलाना चाहिए जिससे यह मिश्रण हाथ में लेकर बधा जा सके । प्रो ट्रे में मिश्रण करने के बाद प्रति कक्ष में एक बीज बोना चाहिए। बीज कोष्ठिका के बिचो बिच डालना चाहिए। बीजाई के तुरन्त पश्चात झारे की सहायता से पानी देना चाहिए। अकुरण के लिए तापमान

एवं नमी का पर्याप्त बना रहना आवश्यक होता है, इसलिए बीजाई के बाद प्रो- ट्रे के उपर थर्माकोल अथवा पालीथिन ढकी जाती है। मौसम के अनुसार दो या तीन दिन बाद ढकी हुई परत हटा लेते है, एवं प्रतिदिन एन.पी.के. 19:19:19 का एक प्रतिशित (1 किलोग्राम एन पी के 100 लीटर पानी में घोल बनाकर) विलयन बनाकर पानी पिलाना चाहिए। सामान्यतया 30-35 दिन बाद पौध स्थानान्तरण योग्य हो जाती है । इस अवधी में प्रो- ट्रे को जमीन के उपर नहीं रखना चाहिए अन्यथा पौधे की जड़े मृदा के अन्दर चली जाती है, एवं पौध निकालते हुए जड़े टूटने का खतरा रहता है अतः प्रो- ट्रे को लकड़ी अथवा लोहे का स्टेण्ड बनाकर रखा जाता है।

रोपाई के लिए क्यारिया तैयार करना: पौध स्थानान्तरण योग्य हो, उससे पहले पोली हाऊस में क्यारिया अच्छे से तैयार करनी चाहिए। इसके लिए 1 मीटर चौडी एवं 30 सेमी ऊंची क्यारिया बनायी जाती है, क्यारियों की लम्बाई पोली हाऊस के आकार पर निर्भर करती है। क्यारिया बनाते समय दो क्यारियों के बीच 60 सेमी का पथ रखा जाता है। जिससे कर्षण कार्यों में सुविधा रहती है। तैयार क्यारियों के रोपण से दो दिन पहले निर्जलीकरण किया जाता है, इसके लिए काँच की प्लेट (पेट्रिडिश) में 8-10 ग्राम पोटेशियम परमैगनेट के क्रिस्टल डाले जाते हैं तथा पुरी बेड के पालीथिन से ढक दिया जाता है। तत्पश्चात प्रत्येक पेट्रिडिश में 5-7 मिली लिटर फोर्मेलिन डाल दिया जाता है। इससे तुरन्त गैस निकलती है, जिससे मृदा में उपस्थित हानिकारक सुक्ष्मजीव नष्ट हो जाते हैं।

मल्चिग: पॉलीहाउस में तैयार क्यारियों को 100 गेज (25 माइक्रोन) की काली पॉलीथीन से ढक कर दोनों तरफ किनारे से मिट्टी को दबा देना चाहिए।

पौधरोपण: कतारों के बीच 60 सेंटीमीटर और पौधों के बीच 30 सेंटीमीटर के अंतर पर दोहरी कतार पॉलिथीन में छेद बनाये जाते हैं। शिमला मिर्च के पौधों को पॉलीहाउस में प्लास्टिक की ट्रे में तैयार करने के बाद रोपण किया जाता है। पौधों को रोग एवं कीटों से बचाने के लिये रोपण के एक दिन पहले 0.3 मिलीलीटर इमिडाक्लोप्रिड प्रति लीटर पानी का मिश्रण बनाकर छिड़काव किया जाता है। रोपने से पहले 1 लीटर पानी में 1 ग्राम फफूंदनाशक (कार्बेन्डाजिम) के मिश्रण से पौधों की जड़ों को गीला किया जाता है। पौधों को पॉलीथीन के छिद्रों के मध्य में लगाया जाता है। रोपण के तत्काल बाद हजारे से हल्की सिंचाई करना चाहिये। पौध स्थापित होने तक प्रतिदिन इसी तरह सिंचाई होना जरूरी है। यदि पॉलीहाउस में आर्द्रता कम हो तो फॉगर चलाये जाते हैं। पॉलीहाउस को रोग मुक्त करने के बाद भी अगर पौध मरने लगे तो एक लीटर पानी में 3 ग्राम कॉपर ऑक्सीक्लोराइड या एक लीटर पानी में एक ग्राम कार्बेन्डाजिम से क्यारियों को गीला किया जाता है।

फर्टिगेशन: सामन्यतया शिमला मिर्च के लिए 250 किलो नत्रजन 125 किलो फास्फोरस एवं 125 किलो पोटाश प्रति हेक्टेयर की आवश्यकता है। अतः प्रति 1000 वर्ग मिटर क्षेत्र में प्रति सप्ताह 5-7 किलोग्राम जल में घुलनशिल उर्वरक मिश्रण देने से पौधो की बढचार अच्छी रहती है, एवं उपज भी अच्छी प्राप्त होती है। प्रारम्भिक चार- पांच सप्ताह 2-3 किलो एन पी के 19:19:19 एवं उसके बाद धीरे-धीरे उर्वरक मिश्रण बढाया जाता है। फल बनते समय सुक्ष्म पोषक तत्वों का मिश्रण जैसे एग्रोमिन अथवा बायोविटा इत्यादि लगभग 1 किलोग्राम प्रति हजार वर्ग मिटर के हिसाब से डालना चाहिए।

पौधों का प्रशिक्षण एवं कृन्तन: 40-50 दिन तक पौधों की सामान्य बढवार होने के बाद पौधों में ट्रेनिंग एवं कटिंग शुरू की जाती है। इसके लिए प्रत्येक पौधो पर केवल 2-3 शाखाओं को छोड़कर अन्य शाखाओं को हटा दिया जात है, तथा पौधों को सूतली अथवा प्लास्टिक की रस्सियों के सहारे बढ़ाया जाता है। कृन्तन करते समय पास-पास वाली शाखाओं को एवं कमजोर शाखाओं को हटा दिया जाता है ।

फसल संरक्षण: शिमला मिर्च में फसल संरक्षण के लिए कीट व बिमारियों से रोकथाम का समुचित उपाय किया जाना आवश्यक है। सफाई व नियंत्रित आवागमन से काफी हद तक कीटों पर संपूर्ण नियंत्रण प्राप्त किया जा सकता है।

कीट व रोकथाम

थ्रिप्स, माइट, मॉहू: ये कीट पॉलीहाउस में शिमला मिर्च की पत्तियों का रस चूसते हैं। जिससे पत्तियाँ सिकुड़ जाती या एकदम छोटी रह जाती है। इनकी वजह से पैदावार में भारी गिरावट आती है। यह कीट विषाणु रोग को फैलाने में भी मदद करता है।

रोकथाम: थ्रिप्स की रोकथाम के लिए नूवाक्रान 1.0 से 1.5 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी में घोलकर 15 दिनों के अन्तराल पर छिड़काव करना चाहिये। माइट की रोकथाम हेतु 2.5 से 3.0 ग्राम प्रति लीटर घुलनशील गंधक का छिड़काव 10 दिनों के अन्तराल पर करना चाहिये। मॉहू के लिए नुवान या रोगार की एक लीटर मात्रा 650 से 700 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर छिड़काव करें।

सूत्रकृमि: ये पॉलीहाउस में शिमला मिर्च के पौधों की जड़ों में छोटी-छोटी गाँठ या ग्रंथियाँ उत्पन्न करते हैं। जिनके कारण पौधों में पोषक तत्वों की आपूर्ति बंद हो जाती है तथा पौधे मर जाते हैं। इसके नियंत्रण के लिए कार्बोयूरान या फीनेमीफास का 1 से 2 किलोग्राम (सक्रिय तत्व) प्रति हेक्टेयर की दर से मिट्टी में मिलायें।

रोग एवं रोकथाम: शीर्षमरण रोग (डाइबैक) एवं फल सड़न- इस रोग में पौधों का ऊपरी भाग से सूखना प्रारम्भ होता है और नीचे तक सूखता जाता है। प्रारम्भिक अवस्था में ये टहनियाँ गीली होती हैं तथा उस पर रोएंदार कवक दिखायी देते हैं। रोगग्रस्त पौधों के फल सड़ने लगते हैं। लाल फलों पर इस रोग का प्रकोप अधिक होता है। इससे बचाव के लिए कार्बेन्डाजिम 2.5 ग्राम दवा प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित कर बोये हैं और क्षतिग्रस्त टहनी को सुबह के समय कुछ नीचे से काट कर इकट्ठा कर जला दें7 डाइफोल्टान (2 ग्राम दवा प्रति लीटर पानी) और कार्बेन्डाजिम 0.1 प्रतिशत (1 ग्राम प्रति लीटर पानी) घोल का छिड़काव बारी-बारी से करें।

आर्द्रगलन: पॉलीहाउस में शिमला मिर्च के इस रोग से तने सड़ने लगते हैं तथा पौधे मरने लगते हैं, जिससे उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। इससे बचाव के लिए बुवाई से पहले थीरम या कैपटॉन 6 ग्राम प्रति किलोग्राम से बीजोपचार अवश्य करना चाहिए।

श्यामव्रण (नथ्रकनोज़): पॉलीहाउस में शिमला मिर्च पर इसका प्रभाव छोटे और पके फलों, पत्तियों तथा तनों पर भूरे धब्बे के रूप में दिखायी देता है। इसके लिए बेनलेट 0.1% या थीरम 0.2% का छिड़काव पन्द्रह दिन के अंतर से दो बार करें, बाविस्टिन के 0.1% घोल का छिड़काव भी काफी लाभकारी पाया गया है।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

आंवला में लगने वाले कीट रोग एवं उनका नियंत्रण

डॉ. जी.एस. चुण्डावत केविके मन्दसौर
राहुल पाटीदार विद्यार्थी पी.एचडी. (कीट विज्ञान)
सुश्री ज्योती शर्मा, सुश्री अंगूरबाला राठौर
एम.एससी.(कीट विज्ञान)

आंवला का उत्पादन सूखे तथा अर्ध सूखे क्षेत्रों में बहुतायात से किया जाता है। यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण औषधीय फल है, यह विटामिन 'सी' का सर्वोत्तम स्रोत है। यदि इसमें लगने वाले रोगों और कीटों से बचाया जाये तो यह अच्छे फल प्राप्त करना आसान हो जाता हैं । अत: आंवला में लगने वाले कीट और रोग को जानना बहुत जरूरी है:-

आंवला में लगने वाले कीट

- **छालभक्षी कीट :** इनडरबेला टेट्राओनिस

पहचान: इसका वयस्क पीली भूरी रंग की होती हैं जिसके आगे के पंखों पर भूरी धारियां बनी होती है।

लक्षण

- इस कीट की इल्ली तने एवं मुख्य शाखाओं में घुसकर छाल को खाते एवं छेद करते है।
- इसके प्रकोप से शाखाओं और तनों में सुरंग बन जाती है, जिससे रेशम के समान जाल बन जाते है।
- छाल में से बुरादा जैसा चाकलेटी रंग का अवशेष निकलता जिसमें मल सम्मिलित होता है।
- प्ररोह सूख कर मर जाते हैं।

नियंत्रण

- बगीचे की साफ-सफाई का ध्यान रखें । • छिद्र की सफाई करके छिद्रों में बारीक तार डालकर कीडों को मार देना चाहिए । • अधिक प्रकोप होने पर सुरंगों एवं आवासीय छिद्रो को साफकर रूई के फोयों को 1 एमएल/लीटर डाईमिथोएट का घोल में भिगों कर छिद्रो में और 10 भाग मिट्टी का तेल मिलाकर और उसमें रूई भिगोंकर छिद्रो में डालकर, गीली मिट्टी से छिद्रों को बन्द कर देना चाहिए ।

शूट गाल मेकर- बेटौसा स्टाइलोफोरा

लक्षण

- इसकी छोटी इल्लियॉं शाखाओं के शीर्ष भाग में छेदकर भीतर घुस जाती हैं, जिसमें ग्रसित भाग फूल कर गॉठों के रूप में दिखाई देने लगता हैं ।
- इसकी गंभीर प्रकोप अवस्था में पेड़ की शाखाओं का शीर्ष भाग बढ़ना बंद हो जाता है जिससे पुष्पन और फलन पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

नियंत्रण

- गॉठ वाली प्ररोहों को समय समय पर काटकर कीडों सहित जला देना चाहिये ।
- अण्डे और गिडारे नष्ट करने के लिए 3 मि. ली. डाइमेक्रान/डाईमिथोएट 30 प्रतिशत ई.सी.की 10 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करना चाहिए, आवश्यकता लगने पर 15 दिन बाद पुनः छिड़काव करें ।

शल्यकीट (स्केल कीट)

पहचान- यह सफेद रंग के होते है।

लक्षण

- इस कीट के झुंड के झुड पत्तियों, टहनियों तथा फूलों पर चिपके रहते है और उनका रस चूसते है।
- सफेद रूई जैसे पदार्थ से ये कीट ढ़के रहते हैं ।
- प्रौढ़ एवं शिशु कीट एक प्रकार का मीठा तरल पदार्थ निकालते है, जिससे काली फफूंदी उगने से पत्तियों का प्रकाश संश्लेषण रूक जाता हैं ।
- इसके फलस्वरूप पौधों की वृद्धि रूक जाती है व उपज में कमी हो जाती है।

नियंत्रण

- प्रभावित भागों की कॉट-छॉट करके कीडों की प्रारंभिक अवस्था को नष्ट कर देना चाहिए।
- इसके नियंत्रण के लिए डाईमिथोएट 30 प्रतिशत ई.सी. की 10 से 20 मि.ली. कीटनाशक प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें ।
- कीटनाशक छिड़काव करते समय पौधों के थालों के पास भी छिड़काव 6-7 दिन के अंतर पर करें।
- खरपतवार नियंत्रण का भी ध्यान रखें ।

सफेद मक्खी

पहचान: वयस्क अवस्था छोटी, सफेद मक्खी जैसी होती है

लक्षण

- यह सफेद रंग की मक्खी की प्रारंभिक अवस्था (निम्फ) के और वयस्क पत्तियों से रस चुसते है ।
- इसके परिणाम स्वरूप पत्तियॉं पीली पड़ जाती है।

नियंत्रण

- खरपतवार प्रबंधन करना चाहिए • पीले चिप-चिपे टेऊस का इस्तेमाल करें • नीम के तेल का 5 एमएल/लीटर के दर से छिड़काव करें ।

रोग प्रबंधन

उकठा (विल्ट): रोग कारक- फुजेरियम

रोग के लक्षण

- इस रोग के कारण आंवला के पेड की छाल का फटना पत्तियों का सड़ना तथा पत्तियों के सूखने की समस्या देखी जा रही है। • इस रोग की समस्या बारिश तथा पाले के कारण देखी जा रही हैं । • अत्यधिक वर्षा के कारण पौधा पूर्णतः सूख जाता हैं
- यह रोग फुजेरियम नामक कवक द्वारा होता हैं ।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

नियंत्रण

- आंवले के पौधे को पाले से बचाने के लिए पौधे के आस-पास की मिट्टी को हमेशा नम रखना चाहिए। जिससे पाले का असर कम हो
- पौधे के आस-पास मल्चिंग करना चाहिए
- शुरूआती लक्षण दिखाई देने पर कार्बेन्डाजिम 50 प्रतिशत डब्ल्यू.पी. फफुंदनाशक की 2 ग्राम मात्रा प्रति लीटर पानी में घोल कर पौधे के आस पास की मिट्टी से भीगा देना चाहिए

रतुआ रोग (रस्ट)

यह रोग आंवला में खेलिया इम्बलिकी नामक कवक द्वारा होता हैं

लक्षण

इस रोग में फलों पर काले छोटे फफोले जैसी रचना दिखाई देती है एवं बाद में धब्बे पूरे फल पर फैल जाते है। इस रोग से आंवले के फलों की गुणवत्ता कम हो जाती है।

नियंत्रण

इस रोग के प्रबंधन के लिए सल्फर 80 प्रतिशत डब्ल्यु. जी. की 4 ग्राम मात्रा प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें ।

काली फफूंद (ब्लेक मोल्ड)

लक्षण

- इसकी वजह से पत्तियों, टहनियों तथा फूलों पर मखमली काली फफूंद विकसीत होती है।
- यह कीट द्वारा छोडें गये चिपचिपे पदार्थ के उपर विकसीत होती हैं ।
- यह फंफूदी सतह तक ही सीमित रहती है।

नियंत्रण

अधिक प्रकोप होने की अवस्था में 2 ग्राम मात्रा कापर ओक्सीक्लोराईड 50 प्रतिशत डब्ल्यु. पी. की प्रति लीटर मिलाकर छिड़काव करना चाहिए ।

नीली फफूंद (ब्लू मोल्ड)

यह पेनीसीलियम सिट्रिनम नामक कवक द्वारा होती हैं ।

लक्षण

- आरंभ में फलों पर भूरे पानी की बुन्दें जैसे धब्बें बनते हैं
- रोग के बढ़ने पर फलों में फफूंद के तीन प्रकार के रंग एक के बाद एक दिखाई देते है। पहले चमकीला पीला रंग फिर भूरा रंग अंत में हरा नीला रंग विकसीत होता है, जो सतह पर उभरती फंफूद के कारण होता है।

- फल की सतह पर पीली बूंदे भी दिखाई देती हैं ।
- फलों से बदबू भी आने लगती है।
- पूरा फल बाद मे दानेदार नीली हरी फफूंद से ढका हुआ नजर आता हैं ।

नियंत्रण

- फलों की तुडाई अत्यंत सावधानीपूर्वक करनी चाहिए
- भण्डारण में साफ-सफाई का पूरा ध्यान रखना चाहिए तथा भण्डारण स्थल को उपचारित करना चाहिए ।
- फलों को बोरेक्स या नमक से उपचारित करना चाहिए
- फलों पर तुडाई से 20 दिन पूर्व कार्बेन्डाजिम 50 प्रतिशत डब्ल्यु. पी. की 1 ग्राम/लीटर के दर से छिड़काव करें ।

फल सड़न (पेस्टेलोशिया क्रुएन्टा)

लक्षण: यह रोग नवबर माह में अधिक होता है। इस रोग में भूरे रंग के धब्बे बनते है । ग्रसित भाग पर रूई की तरह सफेद फफूंद दिखाई देती हैं । संक्रमित फल के अंदर का हिस्सा सूखा गहरा भूरा नजर आता है।

नियंत्रण

- इसके बचाव के लिए आंवला के फल तोड़ने के 15 दिनों पूर्व कार्बेन्डाजिम 50 प्रतिशत डब्ल्यु. पी. की 1 ग्राम/लीटर का छिडकाव करना चाहिए ।
- फलों की तुडाई के समय सावधानी रखनी चाहिए, जिससे फलों में किसी प्रकार की चोट न लगे ।
- परिवहन तथा यातायात के समय स्वच्छता का ध्यान रखना चाहिए ।
- फलों का उपचार बोरेक्स या नमक से करना चाहिए । जिससे रोग का प्रकोप न हो सके ।

एन्थ्रेक्नोज

लक्षण

- इस रोग का प्रकोप फूलों तथा पत्तियों पर सितंबर -अक्टूबर में दिखाई देता हैं ।
- इस रोग में पत्तियों पर छोटे, गोल भूरे, पीले किनारे वाले धब्बे नजर आते है।
- फलों पर धसे हुए भूरे धब्बे बनते है जिनके मध्य में गोलाई में गहरे काले उभार दिखाई देते है। अधिक नमी होने पर धब्बे से बीजाणु अधिक मात्रा में निकलते है, साथ ही फल सिकुडें से नजर आते है, और फिर सड़ भी जाते है।

नियंत्रण

- इस रोग के प्रबंधन के लिए फल लगने के पूर्व मिश्रित कार्बेन्डाजिम . मेन्कोजेब फफूंदनाशक की 2 ग्राम मात्रा प्रति लीटर के हिसाब से छिड़काव करे ।
- इसी घोल से फलों की तुडाई के 20-25 दिन पूर्व पूनः छिड़काव करें ।

मृदू सड़न

यह फोमोप्सिस फाइलेन्थाई के द्वारा होती है।

लक्षण

- इसमें धुंए से भरे काले, गोल धब्बे फलों पर 2 से 3 दिनों में विकसित होते है।
- संक्रमित भाग पर जलसिक्त भूरे रंग का धब्बा बनाता है, यह फल के आकृति को विकृत कर देना है।
- यह रोग फलों में चोट लगने के कारण बढ़ जाता है।

नियंत्रण

इस रोग से बचाव के लिए तुडाई से 20 दिन पूर्व फलों पर डाइथेन एम-45 की 2 ग्राम/लीटर दर से छिडकाव करें

आन्तिरिक सड़न

लक्षण

- यह सबसे पहले अन्दर की ओर से भूरा होना आरंभ करती है
- बाद में मध्य उत्तक तथा अन्त में बाहरी भूरी काली नजर आती है।
- रोग के बढ़ने पर ये भाग कार्कनुमा कड़ा हो जाता है, तथा रिक्त स्थान बनते है, जो गोंद से भरें होते है।

नियंत्रण

- चकैया, एन ए-6 और एन ए-7 में यह रोग नहीं देखा जाता है अतः इन प्रजातियों को लगाना चाहिए
- प्रबंधन हेतु जिंक सल्फेट (4 ग्राम /लीटर), कॉपर सल्फेट(4 ग्राम /लीटर) तथा बोरेक्स (4 ग्राम /लीटर), के दर से छिड़काव सितंबर से अक्टूबर के मध्य करना लाभप्रद है।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

केन्द्रीय बजट और किसान

डॉ. भागचन्द्र जैन (प्राध्यापक)
(कृषि अर्थशास्त्र) प्रचार अधिकारी इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय कृषि महाविद्यालय,रायपुर (छ.ग.)

'कृषिरेव महालक्ष्मी:' अर्थात् कृषि ही सबसे बड़ी लक्ष्मी है। भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ कृषि कहलाती है, भारत विकासशील देश है। भारत सबसे बड़ा चावल निर्यातक देश है। भारत सबसे बड़ा गेहूँ उत्पादक और मसाला उत्पादक देश है। भारत मे सबसे ज्यादा दूध का उत्पादन होता है। फलों और सब्जियों के उत्पादन में भारत का दूसरा स्थान है। कोरोना के संकट काल में वर्ष 2021-22 में भारत की आर्थिक विकास दर 9.2 प्रतिशत होने का अनुमान लगाया गया है, जबकि कृषि विकास दर 3.9 प्रतिशत होने का आंकलन किया गया है।

वर्ष 2020-21 में खाद्यान का रिकार्ड उत्पादन 30.865 करोड़ टन हुआ है। कृषि को लाभकारी व्यवसाय बनाने के लिए वर्ष 2022-23 के बजट में विभिन्न प्रावधान किए गए है, जैसे - समर्थन मूल्य पर फसलों की खरीदी, आपूर्ति श्रृंखला में किसानों को अनुदान, पांच नदियों को जोड़ना, किसान ड्रोन का उपयोग, कृषि स्टार्ट अप, डिजिटल और हाई-टेक तकनीक, तिलहन उत्पादन को बढ़ावा, रसायनमुक्त और प्राकृतिक खेती, लघु धान्यों की ब्रांडिग, कृषि वानिकी और निजी वानिकी को मदद, भारतीय रेल का सहयोग, थर्मल पावर संयत्रों की स्थापना, कृषि विश्वविद्यालयों के पाठयक्रमों में संशोधन और कृषि ऋण में वृद्धि आदि।

समर्थन मूल्य पर फसलों की खरीदी

न्यूनतम समर्थन मूल्य पर फसलों की रिकार्ड खरीदी का बजट में प्रावधान किया गया है, जिसमें गेहूँ और धान की खरीदी 2.37 करोड़ रूपये का भुगतान सीधे किसानों के खाते में किया जाएगा। वर्ष 2021-22 में 1.63 करोड़ किसानों से 12.08 करोड़ टन गेहूँ ओर धान की खरीदी का अनुमान है।

आपूर्ति श्रृंखला में मदद हेतु एक स्टेशन एक उत्पाद

स्थानीय उत्पाद की आपूर्ति श्रृंखला में मदद के लिए 'एक स्टेशन एक उत्पाद' का प्रावधान किया गया है, जिसमें 1.32 लाख करोड़ रूपये की राशि का लाभ किसानों को मिलेगा।

पांच नदियों को जोड़ा जाएगा

केन्द्रीय बजट दूरदर्शी बजट है, जिसमें पांच नदियों को जोड़ने के लिए 44 हजार करोड़ रूपये खर्च किए जायेगें। केन-बेतवा के

साथ साथ पांच और नदियों को जोड़ने से 9 लाख किसान लाभान्वित होगे। इससे एक करोड़ से अधिक व्यक्तियों को पेयजल की सुविधा प्राप्त होगी। इसके अलावा 200 मेगावाट पन बिजली का उत्पादन होगा, जिससे लाखों एकड़ भूमि पर उन्त खेती संभव हो सकेगी।

कृषि में ड्रोन का उपयोग

फसल मूल्यांकन, भू अभिलेख और कीटनाशकों के छिड़काव के लिए किसान ड्रोन का उपयोग किया जाएगा, जिससे ग्रामीण युवकों को रोजगार मिलेगा। कृषि में ड्रोन के उपयोग से फसलो की लागत में कमी आयेगी।

कृषि स्टार्ट अप

नाबार्ड द्वारा कृषक उत्पादक संगठनों ;ंतउमत च्तवकनबमत व्तहदंप्रंजपवदद्ध की मदद कर स्ट्रार्ट अप द्वारा किसानों को हाई-टेक बनाया जाएगा।

किसानों को डिजिटल और हाई-टेक सेवाएं

किसानों को डिजिटल और हाई-टेक बनाने के लिए पी पी पी मोड में नई योजनाएं शुरू की जाएगी। इससे सार्वजनिक क्षेत्र के अनुसंधान से जुड़े किसानों को लाभ होगा।

तिलहन उत्पादन को बढ़ावा

खाद्य तेलों के आयात को कम करने के लिए तिलहन का उत्पादन बढ़ाने को युक्तिसंगत और व्यापक योजना लागू की जाएगी।

रसायनमुक्त और प्राकृतिक खेती

रसायनमुक्त और प्राकृतिक खेती को बजट में बढ़ावा दिया गया है, जिसमें जीरो बजट, जैविक खेती, आधुनिक कृषि, मूल्य संवर्धन और प्रबंधन पर जोर दिया जायेगा। गंगा नदी के किनारे 5 कि.मी. कछार में किसानों की जमीन पर फोकस के साथ पूरे देश में रसायनमुक्त प्राकृतिक खेती को बढ़ावा दिया जाएगा।

मोटे अनाज की ब्रांडिंग

बजट में जानकारी दी गई है कि वर्ष 2023 को अंतर्राष्ट्रीय मोटे अनाज का वर्ष घोषित किया गया है। बजट में प्रावधान किया गया है कि राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर कटाई उपरांत मूल्य संवर्धन को बढ़ावा दिया जाएगा, जिससे मोटे अनाजों का उपभोग बढ़ेगा।

कृषि वानिकी और निजी वानिकी

अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति वर्ग के किसानों के लिए कृषि वानिकी और निजी वानिकी हेतु वित्तीय मदद देने का प्रावधान किया गया है।

भारतीय रेल की मदद

लघु किसानों और सूक्ष्म लघु तथा मध्यम उद्योगों **(Micro Small and Medium enterprises)** के लिए भारतीय रेल की मदद मिलेगी, जिसमें नये उत्पाद **(New Product)** और कुशल लाजिस्टिक विकसित की जाएगी। इसमें रेल की सुविधा प्रभावी बनायी जाएगी।

कार्बन डाई-आक्साइट में कमी

बजट में कार्बन डाई-आक्साइड में कमी करने प्रयास किए जाएंगे, जिसमें 5 से 7 प्रतिशत कमी करने के लिए बायोमास द्वारा थर्मल पावर संयंत्र स्थापित किए जाएंगे।

कृषि विश्वविद्यालयों का पाठ्यक्रम संशोधन

भारत कृषि प्रधान देश है, जहां कृषि विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में संशोधन किया जाएगा, जिसमें जैविक खेती, आधुनिक खेती का समावेश कर मूल्य संवर्धन से जोड़ा जाएगा।

कृषि ऋण में वृद्धि

कृषि में ऋण इंजेक्शन की भूमिका निभाता है। किसानों को समय पर कर्ज मिले तथा कर्ज की उपयोगिता बढ़े, इसलिए बजट में कृषि ऋण का प्रावधान 16.5 लाख करोड़ रूपये से बढ़ाकर 18 लाख करोड़ रूपये किया गया है। कर्ज के सदुपयोग से कृषि आदानों जैसे-उन्नत बीज, उर्वरक, पौध संरक्षण दवाओं की उपलब्धता बढ़ेगी तथा उन्नत कृषि तकनीक को बढ़ावा मिलेगा।

बजट से जनता का कल्याण और राजधर्म

- केन्द्रीय बजट प्रस्तुत करते हुये वित्त मंत्री ने कहा कि महाभारत के शांतिपर्व के 72 वें अध्याय के 11 वें श्लोक में युधिष्ठिर ने राजधर्म और अनुशासन का जिक्र किया है तथा जनता के कल्याण और योगक्षेम की बात कही है:

दांपयित्वाकरं धर्म्य राष्ट्रं नित्यं यथाविधि।
अशेषान्कल्पयेद्राजा योगक्षेमानतन्द्रितः।।

इस देववाणी का अर्थ है कि किसी राष्ट्र का राजधर्म किसी भी विधि से जनता कुशलक्षेम और कल्याण ही है।

- केन्द्रीय बजट में कृषि को प्राथमिकता दी गई है। किसानों, ग्रामीणों के लिए कृषि योजनाओं-कार्यक्रमों को उपयोगी बनाया गया है, जिनका लाभ लेकर किसान, ग्रामीण, पशुपालक, सब्जी-फल उत्पादक नये आयाम स्थापित कर सकते है।

डिजिटल सेवा में एक क्लिक पर घर बैठे किसानों को जानकारी मिलेगी, जिससे सहकारी समितियों में खाद-बीज लेने की भीड़ से मुक्ति, मिलेगी। न्यूनतम समर्थन मूल्य का लाभ भी किसानों को आसानी से मिलेगा।

सीताफल की वैज्ञानिक खेती

कु. संध्या साहू, डॉ. प्रफुल्ल कुमार

पौध रोग विज्ञान विभाग, इंदिरा गाँधी कृषि विश्वविद्यालय रायपुर (छ.ग.)

सीताफल (एनोना स्क्वेमोसा) जिसे शरीफा के नाम से भी जाना जाता है, एक उपोष्णकटिबंधीय पर्णपाती पेड़ है जो एनोनेसी परिवार में आता है। इसके फल का आकार हृदय जैसा होता है इसलिये इसे बुल्स हार्ट भी कहा जाता है। फल के बाहरी सतह पर छोटे-छोटे खुरदुरे उभार होते हैं, गुदा सफेद दानेदार, मीठा, मलाई के समान तथा बीज अण्डाकार काला चमकीला होता है। फलों का वजन 125 से 250 ग्राम तक होता है। यह मूल रूप से वेस्ट इंडिज एवं अमेरिका में पाया जाता है। भारत में कई राज्यों में इसकी खेती की जाती है। छत्तीसगढ़ में कांकेर एवं दुर्ग जिले में इसकी खेती की जाती है।

सीताफल के पोषणकारी अवयव

सीताफल में कई एन्टीऑक्सीडेंट तत्व जैसे फ्लेवोनॉइड, फेनोलिक कम्पाउण्ड पाये जाते हैं जो तनाव कम करने में सहायक होते हैं तथा कैंसर से भी बचाते हैं। साथ ही विटामीन 'सी' रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाता है, विटामीन 'ए' त्वचा, बाल एवं आँखों के लिये अच्छे होते हैं। पोटेशियम ऊर्जा प्रदान करता है एवं मैग्निशियम शरीर के पी.एच. को संतुलित करता है। साथ ही आयरन एवं फाईबर भी प्रचुर मात्रा में उपस्थित होते हैं। इस फल में संतृप्त वसा एवं सोडियम कम होने के कारण उच्च रक्तचाप में फायदेमंद होता है।

प्रजातियाँ

भारत में इसकी रेड सीताफल, बालानगर, मैमथ, पुरंधर, हाइब्रीड आदि प्रजातियों की फसल ली जाती है।

मृदा एवं जलवायु: सीताफल की खेती के लिये बलुई दोमट मिट्टी उपयुक्त होती साथ ही उचित जल निकास वाली चिकनी दोमट मिट्टी में भी फसल ली जा सकती है। मृदा का पी.एच. मान 5.5 से 6.5 होना चाहिये। उष्ण जलवायु इसकी फसल के लिये उपयुक्त होता है। शुष्क , गर्म आद्र जलवायु इसके बढ़वार एवं फल निर्माण के लिये उपयुक्त होता है।

प्रवर्धन सामग्री: सीताफल का प्रवर्धन बीज, कलम एवं कलिका द्वारा किया जाता है। बीज द्वारा फसल लेने के लिये अच्छी गुणवत्ता वाले फल से बीज प्राप्त करना चाहिए।

बुवाई: इसकी बुवाई बरसात के मौसम में की जाती है। बुवाई के लिये मानसून आने से पूर्व 60×60×60 सेमी के गड्ढे 5×5 मी. की दूरी पर बनाये जाते हैं तथा गोबर खाद, सिंगल सुपर फॉस्फेट और ऊपरी मिट्टी से भर दिया जाता है। इस प्रकार 400 पौधा प्रति हेक्टेयर की दर से आवश्यक होते हैं।

खाद एवं उर्वरक

पहले एवं दूसरे वर्ष में 75:50:50 किग्रा /हे. तिसरे

से पाँचवे वर्ष में 150:100:100 किग्रा/ हेक्टेयर एवं पाँच वर्ष के बाद 250:125:125 किग्रा/हेक्टेयर की दर से नत्रजन, स्फूर एवं पोटाश की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक वर्ष मानसून से पूर्व हरी खाद एवं गोबर की खाद देना लाभदायक होता है।

सिंचाई एवं जलमांग

सीताफल एक वर्षा आधारित फसल है, परंतु फूल लगने एवं फल आने के पूर्व सिंचाई करना लाभदायक होता है। फव्वारा विधि से सिंचाई करना उपयुक्त माना जाता है।

खरपतवार नियंत्रण

सीताफल की खेती में समय समय पर निंदाई करते रहे। अगस्त-सितंबर में एक बार जुताई करे जिससे खरपतवार और घास खत्म हो जाएगी तथा जिन क्षेत्रों में पानी की कमी होती हैं वहां नमी को संरक्षित किया जा सकेगा।

कीट एवं व्याधियाँ

- मीली बग का प्रकोप होने पर डाइक्लोरोवॉस 0.05त्न का दो बार छिड़काव करें। साथ ही साथ इसके नियंत्रण के लिये प्रभावित पत्तियों, टहनियों एवं फलों को इकट्ठा करके नष्ट कर देना चाहिये। जैविक नियंत्रण के लिये क्रिप्टोलिमस मोन्ट्रोजिएरी बीटल को 10 बीटल प्रति पेड़ की दर से छोड़ना चाहिये
- स्केल का प्रकोप होने पर प्रभावित पत्तियों को इकट्ठा करके नष्ट कर देना चाहिये
- एन्थ्रेक्नोज एवं पत्ती धब्बा रोग से प्रभावित पौधों के हिस्सों को इकट्ठा करके जला देना चाहिये। रोग प्रतिरोधी किस्मों का प्रयोग करना चाहिए।

तुड़ाई एवं उपज

फूल आने के 3-4 माह बाद फल तोड़ने के लिये उपयुक्त होते हैं। इस समय इनका रंग हल्का हरा होते हैं तथा फलों में दरार आ जाते हैं। इनकी तुड़ाई हाथ से करना उचित रहता है। एक फसल से 4 से 5 तुड़ाई अगस्त से नवम्बर के बीच की जाती है। सीताफल की उपज इसकी प्रजाति, मृदा प्रकार, जलस्त्रोत आदि पर निर्भर करता है। 100 फल प्रति पौधा के दर से 7 टन प्रति हेक्टेयर औसत फल उत्पादन प्राप्त होता है।

कुछ सावधानियां

सीताफल के अच्छे उत्पादन के लिए निम्न बातों को ध्यान में रखें- ● सुखी टहनियों को काट दे। ● फलों के तुड़ाई के पश्चात अनावश्यक रूप से बढ़ी हुई टहनीयों की हल्की छटाई कर दे। ● फलों के आकार व भार में वृद्धि के लिए फलों को 50 मिलीग्राम प्रति लीटर जिबरेलिक एसिड **(Gibberellic acid)** के घोल में एक मिनट तक डुबोकर उपचारित करे। ● अच्छे उत्पादन हेतु हस्त परागण करे। ● गर्मी मे नियमित सिंचाई करे। ● फलों को खुली टोकरियों में पेड़ की पत्तियों एवं पुआल के साथ रख कर पकाये जिससे फलों में मिठास बढ़ेगी एवं फल ज्यादा समय तक सुरक्षित रहेंगे।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

प्याज के महत्व, फायदे, नुकसान

विवेक कुमार सांडिल्य
गजाला आमिन एवं ज्योति साहू
पीएच.डी. (कृषि) (अनुवांशिकी एवं पादप प्रजनन विभाग) कृषि महाविद्यालय रायपुर (छ.ग.)

प्याज हमारे खाने में एक अलग ही स्वाद तथा खुशबू जोड़ देता है. मुझे नहीं लगता कोई महिला अपने किचन में प्याज के बिना खाना बनाने का सोचती होगी. गुलाबी, सफ़ेद प्याज देखने में जितना मनभावन होता है, उतना ही खाने में लजीज भी. हर शाही खाने में इसे उपयोग किया जाता है. यह खाने की रंगत, स्वाद, एवं पौष्टिकता को बढ़ाता है. लेकिन इसे काटते वक़्त आंखों से पानी आने लगता है, एसा लगता है मानो हम रो रहे हों. लेकिन चाहे कितने ही आँसू क्यूँ ना निकाल आए हमारी आँखों से इसे काटते वक़्त, परंतु फिर भी हम इसका उपयोग बंद नहीं करते या यूं कहें कि बंद कर ही नहीं सकते. रोते-रोते आँखों से आँसू निकालते, इसे काटते ही हैं, क्योंकि हमे पता है प्याज हमारे खाने को एक अलग ही रूप, स्वाद, खुशबू एवं सेहत देने वाला है।

प्याज में पाए जाने वाले पोषण तत्व: प्याज में कई उपयोगी एवं स्वास्थवर्धक खनिज एवं विटामिन होते हैं. इसमें सल्फर के यौगिक, फ्लेवोनोइड्स तथा विटामिन बी, विटामिन सी, केल्शियम, जिंक, पॉटेशियम, तांबा, फाइबर, लोहा और कम केलोरी वाले वसा भरपूर मात्रा में पाये जाते हैं. एक कप प्याज किसी भी रूप में (कच्चा या भूना हुआ) में लगभग 210 ग्राम में शरीर के लिए कई लाभ देने वाले पोशक तत्व होते हैं।

पोषक तत्व	मात्रा (% प्रति 100 ग्राम)
बायोटीन	27
मेंगेनीस	16
तांबा	16
विटामिन बी 6	16
विटामिन सी	15
फाइबर	12
फास्फोरस	11
पॉटेशियम	10
विटामिन बी 1	08
फोलेट	08

प्याज को इस्तेमाल करने का तरीका

- प्याज में कई परतें होती हैं. उसे उपयोग करते समय हम उसके छीलके की कई परत निकालते जाते हैं. लेकिन प्याज की बाहरी परतों पर अधिक फ्लेवोनोइड्स होता है. इसलिए अगर प्याज के पोशक तत्वों का ज्यादा से ज्यादा फायदा लेना है, तो इसकी कम से कम परत छीलिये. क्यूंकी छोटी पतली परत निकालने से ही बहुत फ्लेवोनोइड्स नष्ट हो जाते हैं, तो सोचिए अगर आप ज्यादा मोटी परत निकालते हैं तो आप आँखों से आँसू के साथ साथ फ्लेवोनोइड्स भी निकाल देंगे।
- कहते हैं अनाज, सब्जी, फल आदि को ज्यादा देर तक आंच पर नहीं पकाना चाहिए. क्योंकि ज्यादा पकाने से खाद्य पदार्थ में मौजूद पोशक तत्व नष्ट होने लगते हैं. लेकिन प्याज को जब भी सूप बनाने के लिए ज्यादा देर तक उबाला जाता है तो उसमें मौजूद क्यूरसेटिन नष्ट होने के बजाय पानी में स्थानांतरित हो जाता है और बहुत ही पौष्टिक सूप तैयार हो जाता है. प्याज के पौशक तत्व सूप में सही मात्रा में आए इसके लिए जरूरी है कि सूप को मध्यम आंच पर पकाया जाये।
- वैसे तो प्याज का इस्तेमाल किसी भी रूप में भी किया जाये फायदेमंद ही होता है, परंतु फिर भी इसे सलाद के रूप में खाने में शामिल करना अधिक लाभदायी होता है. इससे अधिक क्यूरसेटिन (नमतबमजपद) हमारे शरीर में आता है, जो सेहत के लिए स्वास्थ्यवर्धक होता है।

प्याज के गुण एवं फायदे

रक्तचाप नियंत्रित करें: प्याज में क्रोमियम तत्व होते हैं, जो शरीर में रक्त में मौजूद शक्कर के स्तर को कम करता है, जिससे रक्तचाप नियंत्रित रहता है. इससे मधुमेह (डायबिटिस) होने का खतरा भी कम होने लगता है. उच्च रक्तचाप (हाई ब्लड प्रैशर) की शिकायत होने पर प्याज के सेवन की सलाह दी जाती है।

कोलेस्ट्रोल कम करने में सहायक: आपने कई बार या यूं कहे की हर बार प्याज को सलाद के रूप में खाने के साथ खाया होगा. प्याज का नियमित सेवन शरीर में बढ़ने वाले कोलेस्ट्रॉल को रोकता है, और आपको चुस्त, और फुर्तीला बनाता है. इससे हृदयाघात की संभावना भी कम हो जाती है. लीजिये, प्याज खाने का स्वाद तो बढ़ाता ही है साथ ही साथ आपकी सेहत का ध्यान भी रखता है।

संक्रमण कम करें: प्याज में प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने का गुण है. इससे शरीर किसी भी बीमारी से लड़ने के लिए सक्षम बनाता है. ये संक्रमण को रोकने में भी सहायक होता है. प्याज प्राकृतिक रूप से एन्टीबायोऑटिक, एन्टीसेप्टिक है जो आपको हमेशा ही संक्रमण से दूर रखता है।

प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाए: प्याज में मौजूद फायटोकेमिकल तथा विटामिन सी शरीर की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाते हैं। यह कई बीमारियों से लड़ कर हमारी रक्षा करता है।

कैंसर से बचाए: प्याज का रोजाना सेवन कैंसर से बचने के लिए प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाता है. यह सभी प्रकार के कैंसर जैसे कोलोरेक्टल, और ओवरियन कैंसर से बचाता है. एक प्याज लगभग आधा कप का सेवन आवश्यक रूप से रोजाना करना चाहिए।

अलसर से बचाए: प्याज में मौजूद फ्री रेडिकल्स पेट में होने वाली परेशानी तथा अलसर से बचाते हैं. प्याज का सेवन गेस्ट्रिक अलसर (पेट में होने वाले छाले) को खत्म करने में बहुत ही लाभदायक है।

पाचन शक्ति बढ़ाए: प्याज के सेवन से शरीर में पाचक रस अधिक मात्रा में बनने लगता है, जो की पाचन में होने वाली गड़बड़ी को रोकता है. प्याज का सेवन स्वाद तो बढ़ाता ही है, साथ ही साथ पाचन शक्ति बढ़ाने में भी सहायक होता है. इससे पेट संबधित रोग भी नष्ट होने लगते हैं।

आँखों को स्वस्थ रखें: हरे प्याज विटामिन ए से भरपूर होते हैं, जो की आँखों की परेशानियों को दूर करने तथा शरीर में विटामिन ए की कमी से होने वाली बीमारियों से बचाने में हितकारी होता है।

त्वचा चमकाए: अगर आप चमकदार, कांतिमय त्वचा चाहते हैं तो प्याज का सेवन एवं उपयोग शुरू कर दीजिये. प्याज में भरपूर मात्रा में एन्टीओक्सिडेंट्स, विटामिन ए, विटामिन सी, विटामिन ई होते हैं जो की त्वचा के लिए लाभदायक होते हैं।

मासिक धर्म में होने वाली तकलीफ कम करें: मासिक धर्म के दौरान महिलाओं में होने वाली तकलीफ को कम करने के लिए भी प्याज का सेवन हितकारी है. मासिक धर्म के शुरुआती दिनों में प्याज का सेवन मासिक चक्र को नियमित कर उस दौरान होने वाली समस्याओं को कम करने में सहायक होता है।

याद्दाश्त बढ़ाए: प्याज मे मौजूद फायटोकेमिकल्स मस्तिष्क को मजबूत बनाता है. यह तंत्रिका तंत्र को नियंत्रित करता है तथा याद्दाश्त बढ़ाने में सहायक होता है।

प्याज के रस के फायदे: प्याज का इस्तेमाल सभी रूपों में फायदेमंद ही होता है. प्याज को उसके रस के लिए भी कई जगहों पर इस्तेमाल किया जाता है. तो आइये देखते हैं प्याज के रस के कुछ लाभकारी फायदे।

आँखों की तकलीफ दूर करें: आँखों से पानी आना या आँखों की रोशनी कम होने पर प्याज के रस को दवाई के रूप में आँखों में डालने पर फायदा मिलता है. प्याज के रस को गुलाब जल के साथ मिला कर आँखों में कुछ बूंद डालने से भी आँखों की समस्या दूर होती है।

खूबसूरती बढ़ाए: प्याज के रस को हल्दी के साथ पेस्ट बना के लगाने से भी चेहरे के दाग मिटने लगते हैं और चेहरे की त्वचा चमकने लगती है, और आपकी खूबसूरती बढ़ने लगती है।

जलन से बचाए: अगर आपको चमड़ी पर जलने का निशान है तो प्याज का रस उस पर लगाये, कुछ ही दिनों में निशान जाने लगेंगे. किसी भी प्रकार जलने पर प्याज का रस तुरंत लगाने से जलन कम होती है।

बुखार का साथी: बुखार, सामान्य सर्दी, खाँसी, एलर्जी में प्याज का उपयोग तुरंत ही फायदा पहुंचाता है. प्याज के रस को शहद के साथ मिला कर सेवन करने से एलर्जी का प्रभाव कम होता है. अधिक बुखार आने पर प्याज के टुकड़े को सिर पर रखिए, यह ठंडक देता है, जिससे बुखार कम होने लगता है. अगर फिर भी बुखार कम नहीं हो रहा हो, तो प्याज के रस को सिर तथा हाथ पैर पर लगाने से भी फायदा मिलता है।

लू से बचाए: गर्मी के मौसम में गर्म हवा के कारण (लू लगने से) हम बीमार पड़ जाते हैं. इस समय प्याज का रस अमृत के समान है. प्याज के रस को सिर, हाथ पैर पर लगाने से तथा इसे सूँघने से लू का असर कम होने लगता हैं. अगर आप कहीं धूप में जा रहे हैं तो अपने साथ एक प्याज अवश्य रखिए. यह आपको लू (गर्म हवा) से बचाएगा।

मधुमक्खी के डंक से बचाए: यह जानना बहुत ही दिलचस्प होगा की प्याज का रस आपको मधुमक्खी के डंक से बचाता है. अगर आपको कभी अचानक मधुमक्खी काट ले तो घबराइए नहीं. प्याज के रस को तुरंत ही उस जगह लगाये और देखिये थोड़ी ही देर में आप उस परेशानी से दूर हो जाएंगे।

बालों के लिए अत्यंत लाभकारी: प्याज के रस को बालों की जड़ में लगाने से बालों का टूटना एवं झड़ना कम होता है. यह बालों में होने वाली जूँ से भी बचाता है. हफ्ते में कम से कम दो बार प्याज के रस का प्रयोग बालों में करना चाहिए. यह बालों को स्वस्थ एवं मजबूर बनाता है।

प्याज सूंघने के फायदे: प्याज सूंघने से आपको जुकाम जैसी समस्या पैदा नहीं होती है उससे इस समस्या से काफी फायदा पहुंचता है। जिसके बारे में हम ही नहीं कह रहे बल्कि ये हमारे बड़ो का भी कहना है कि प्याज को जुकाम के समय सूंघने से काफी आराम मिलता है। तो कच्ची प्याज ले और उसे सूंघे आपकी नाक और आपका जुकाम दोनों ही ठीक हो जाएंगे।

प्याज का भविष्य 2022: जो समय चल रहा है उसके मुताबिक प्याज के रेट लगातार बढ़ रहे हैं, तो कभी लगातार घट रही है जिसके मुताबिक 2020-21 की तरह प्याज इस साल तो बाजारों में से गायब नहीं होगी। क्योंकि इसके भाव पिछले सालो की तरह ज्यादा बड़े नहीं है जिसके कारण लोगों को काफी दिक्कत हो। जो आकड़े कहते हैं उसके मुताबिक इस साल प्याज की बिक्री पिछले सालो से कई गुना ज्यादा हुई है और अभी भी लगातार चल रही है। मंडी में प्याज के भाव 30-40 रूपये चल रहे हैं पिछले साल यही भाव 80-100 के पार पहुंच गए थे।

प्याज के नुकसान

- प्याज अधिका खाने से पैद दर्द जैसी परेशानी होने लगती है। इसलिए पेट दर्द की समस्या से जूझ रहे लोगों को प्याज का सेवन कम करना चाहिए। • अगर आप कच्ची प्याज खा रहे हैं तो उसे पचाने में आपको दिक्कत होगी। जिसके कारण आपको सीने में जलन और एसिडिटी की दिक्कत हो सकती है, साथ ही गैस की समस्या भी हो सकती है। • प्रेग्नेंट महिलाओं को कच्ची प्याज का सेवन कम करना चाहिए क्योंकि इससे उन्हें जलन और उल्टी जैसी समस्या हो सकती है। • अत्यधिक प्याज आपका ब्लड शुगर लेवल बढ़ा सकता है। • कच्ची प्याज खाने से आपके मुंह से भी बदबू आने लगती है।

प्याज में फ्लेवोनोइड्स तथा सल्फर के यौगिक का साथ प्याज को बहुत ही गुणकारी बनाता है और इसीलिए (वर्ल्ड हैल्थ ओर्गनाइसेशन) एक शोध के आधार पर प्याज को नियमित रूप से हमारे खाने में शामिल करने की सलाह देता है।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

किसानों की आय वृद्धि में सरसों की वैज्ञानिक खेती का योगदान

गुरुदयाल (परियोजना सहायक) जैव प्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार द्वारा अनुदानित परियोजना,मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विभाग, कृषि विज्ञान संस्थान बुंदेलखंड विश्वविद्यालय झांसी (उ.प्र.)

डॉ. सत्यवीर सिंह (प्रधान अन्वेशक/सहा.आचार्य) जैव प्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार द्वारा अनुदानित परियोजना,मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विभाग, कृषि विज्ञान संस्थान बुंदेलखण्ड विश्वविद्यालय झांसी (उ.प्र.)

इन्द्रजीत कुमार (परास्नातक छात्र) मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन,कृषि विज्ञान संस्थान, बुंदेलखंड वि.वि. झांसी (उ.प्र.)

डॉ. हरपाल सिंह (सहा.आचार्य) उद्यान विज्ञान विभाग, कृषि विज्ञान संस्थान, बुन्देलखंड विश्वविद्यालय झाँसी (उ.प्र.)

सरसों रबी की प्रमुख तिलहनी फसल है इसका भारत की अर्थव्यवस्था में महत्त्वपूर्ण स्थान है। सरसों की खेती भारत के सभी क्षेत्रों में प्रमुखता से की जाती है। सरसों राजस्थान, हरियाणा, मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश और महाराष्ट्र की प्रमुख फसल है। सरसों की खेती से कम लागत में अधिक मुनाफा कमाया जा सकता है। इसकी खेती सिचित और बारानी दोनों अवस्थाओं में की जाती है।

सरसों के बीजों से तेल के साथ-साथ ही तेल के आलावा खली भी निकलती है जिसे पशुआहार के रूप में प्रयोग किया जाता है। सरसों का उत्पादन भारत में आदिकाल से किया जा रहा है, भारत में लगभग 66.34 लाख हेक्टेयर भूमि में की जा रही है जिससे लगभग 75 से 80 लाख टन उत्पादन प्राप्त होता है। भारत में क्षेत्रफल की दृष्टि से इसकी खेती प्रमुखता से सबसे ज्यादा राजस्थान और मध्य प्रदेश में की जाती है, जबकि उत्पादकता (1721किलोग्राम/हेक्टेयर) की दृष्टि से हरियाणा प्रथम स्थान पर है।

जलवायु

भारत में सरसों की खेती शीत ऋतु में की जाती है। इसके पौधों को अच्छे से वृद्धि एवं विकास के

लिए 18 से 240 तापमान तथा वार्षिक वर्षा 625 से 1000 मि.मी. की जरूरत होती है। सरसों की फसल की जलमांग 400 मि.मी. पानी की आवश्यकता होती है। सरसों में फूल निकलने के दौरान वर्षा या छायादार मौसम फसल के लिए हानिकारक होता है अगर इस प्रकार का मौसम होता है तो माहू या चैपा के आने की अधिक संभावना हो जाती है।

भूमि

सरसों की खेती रेतीली से लेकर भारी मटियार मृदाओं में की जा सकती है लेकिन बलुई दोमट मृदा सर्वाधिक उपयुक्त होती है। क्षारीय तथा अम्लीय मृदा में इसकी फसल को सफलतापूर्वक नही ले सकते हैं। सामान्यत मृदा का पी.एच. 7 से 8 होना अति आवश्यक है।

खेत की तैयारी

सरसों की खेती के लिए भूमि को देशी हल या कल्टीवेटर से दो या तीन बार जुताई करने के पश्चात् पाटा लगाकर खेत को समतल करना अति आवश्यक है। सरसों के लिए मिटटी जितनी भुरभुरी होगी अंकुरण और बढवार उतनी ही अच्छी होगी।

उन्नत किस्में

अगेती किस्में (सितम्बर माह में बोई जाने वाली)

1. पूसा सरसों -28 (**NPJ** -124) 2. पूसा सरसों - 27 (**EJ** -17) 3. पूसा तारक (**EJ** – 13) 4. पूसा महक (**JD** -6) 5. पूसा अग्रणी (**SEJ**–2)

समय पर (अक्टूबर माह में बोई जाने वाली)

1. पूसा विजय 2. पूसा जगन्नाथ (**VSL**-5) 3. वरुणा (**T**–59) 4. नरेन्द्र राई

पछेती किस्में (नवम्बर माह में बोई जाने वाली)

1. पूसा सरसों-26 (**NPJ** -113) 2. वरदान 3. आशीर्वाद 4. वैभव

शुष्क क्षेत्रों में बोई जाने वाली किस्में

1. राज वरुणा (**T**-56) 2. रोहिणी 3. किरण 4. गिरिराज

बुवाई का समय

सरसों की बुवाई शुष्क क्षेत्रों में 25 सितम्बर से 15 अक्टूबर के मध्य तथा सिंचित क्षेत्रों में 10 अक्टूबर से 25 अक्टूबर के मध्य कर देनी चाहिये जिससे अच्छी पैदावार प्राप्त होती है।

दूरी

सरसों की बिजाई के लिए पंक्तियों से पंक्तियों की दूरी 30 से.मी. और पौधे से पौधे की दूरी 10 से.मी. रखें। सरसों के बीज 4 से 5 से.मी. गहराई में बोने से अंकुरण जल्दी होता है।

बीज दर

पंक्ति से पंक्ति में: 3 से 4 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर
छिड़काव विधि में: 5 से 7 किलोग्राम प्रति हे.
शुष्क क्षेत्रों के लिए: 4 से 5 किलोग्राम प्रति हे.
सिंचित क्षेत्रों के लिए: 2.5 से 3 किलोग्राम प्रति हे.

बीजोपचार

- जड़ सडन रोग से बचाव के लिए बीज को बुवाई से पहले फफूंद नासक कैप्टान या थिरम में से कोई एक 3 से 5 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से उपचारित करें • बीज को मिट्टी के अंदरूनी कीटों और बिमारियों से बचाने के लिए 3 ग्राम थिरम से प्रति किलोग्राम बीज के हिसाब से उपचारित करें

खाद और उर्वरकों का प्रबन्धन

खाद एवं उर्वरकों का प्रयोग मिटटी परीक्षण की संस्तुतियों के आधार पर किया जाना उचित रहता है इसीलिए किसान अपने खेत की मिट्टी की जाँच आवश्यक रूप से करवाएं। सिंचित क्षेत्रों के लिए 8 से 10 टन सड़ी गोबर की खाद प्रति हेक्टेयर की दर से बुवाई के 3 से 4 सप्ताह पहले खेत में डालकर मिला लें। जबकि बारानी क्षेत्रों में वर्षा से पूर्व 4 से 5 टन सड़ी खाद प्रति हेक्टेयर खेत में डालकर अच्छी तरह से मिला दें। सरसों के लिए 60 से 90 किलोग्राम

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

नाइट्रोजन, 60 किलोग्राम फोस्फोरस, 40 किलोग्राम पोटाश प्रति हक्टेयर की दर से प्रयोग करते हैं। नाइट्रोजन की आधी मात्रा, फोस्फोरस तथा पोटाश की पूरी मात्रा बुवाई के समय देना चाहिये एवं शेष नाइट्रोजन की मात्रा बुवाई के 25 से 30 दिन बाद टॉप ड्रेसिंग के रूप में प्रयोग करना चाहिए। गंधक की उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए 40 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से गंधक का प्रयोग करना चाहिए।

सिंचाई प्रबन्धन

सरसों की खेती के लिए 4 से 5 सिचाई पर्याप्त होती है यदि पानी की कमी हो तो चार सिचाई ; पहली सिंचाई बुवाई के समय, दूसरी सिंचाई शाखाएं बनते समय, तीसरी फूल प्रारम्भ होने के समय तथा अंतिम सिंचाई फली बनते समय की जाती है।

खरपतवार प्रबन्धन

सरसों के पौधे अच्छे विकास करें इसके लिए खरपतवार नियंत्रण अति आवश्यक होता है। खरपतवार नियंत्रण हेतु पहली गुड़ाई बुवाई के 25 से 30 दिन बाद कर देनी चाहिए इसके बाद समय-समय पर खरपतवार दिखाई दे तो उसकी गुड़ाई कर देना उचित रहता है। रसायन द्वारा खरपतवार नियंत्रण के लिए पेंडामेथिलिन 30**EC** की 3.3 ली. मात्रा प्रति हेक्टेयर की दर से 800 से 1000 लीटर पानी में घोल कर छिड़काव करना चाहिए।

फसल सुरक्षा प्रबन्धन

रोग प्रबन्धन

सफ़ेद रतुआः सफ़ेद रतुआ रोग प्रायः सभी जगह पाया जाता है जब तापमान 10 से 180 सेल्सियस के आस पास रहता है तब पौधों की पत्तियों की निचली सतह पर सफ़ेद रंग के फफोले बनते है पत्ती को ऊपर से देखने पर गहरे भूरे रंग के धब्बे दिखाई देते हैं।

नियंत्रण

- समय पर बुवाई करें • अधिक सिंचाई न करें
- मेन्कोजेब 1250 ग्राम प्रति 500 लीटर पानी में घोल बनाकर 2 छिड़काव 10 दिन के अन्तराल में करें

झुलसा या काला धब्बा रोगः पत्तियों पर गोले भूरे धब्बे दिखाई पड़ते हैं फिर ये धब्बे आपस में मिलकर पत्ती को झुलसा देते हैं रोग के बढ़ने पर गहरे भूरे धब्बे तने शाखाएं एवं फलियों पर फ़ैल जाते हैं।

नियंत्रण

- बीजोपचार थिरम 3 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से करें • रोग के प्रारंभ होने पर मेन्कोजेब 2 से 5 ग्राम प्रति लीटर पानी के हिसाब से घोल बनाकर 2 से 3 छिड़काव 10 से 12 दिन के अन्तराल में फसल पर करें

कीट प्रबन्धन

- **चितकबरा (पॉइंटेड बग):** चितकबरा कीट प्रारंभिक अवस्था की फसल के छोटे छोटे पौधों को ज्यादा नुकशान पहुचाते हैं। प्रौढ़ व शिशु दोनों ही पौधों से रस चूसते हैं जिससे पौधे मर जाते है।

नियंत्रण

- गर्मियों में खेत की गहरी जुताई करनी चाहिए
- छोटी अवस्था में यदि प्रकोप हो तो कुइनोलोफोस 1.5% 15 से 20 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से सुबह के समय छिडकाव करें। अत्यधिक प्रकोप के समय मैलाथियान 50 **EC** को 500 एम.एल. मात्रा को 500 लीटर पानी में घोलकर प्रति दर से छिड़काव करें

माहू

यह सरसों का प्रमुख कीट है। यह कीट दिसम्बर के अंत में दिखाई देते हैं और जनवरी-फरवरी में इसका प्रकोप अत्यधिक होता है। इस कीट के शिशु व प्रौढ़ पौधों का रस चूसते है और फसल को अत्यधिक हानि पहुंचाते हैं।

नियंत्रण

- फसल की बुवाई (1 से 15 अक्टूबर) अगेती करनी चाहिये • नीम की खली का 5% घोल बनाकर छिडकाव करना प्रभावशाली होता है
- आधिक प्रकोप होने पर ओक्सिमिटान-मिथाइल 25 **EC** या डाईमिथोएट 35 **EC**, 500 एम.एल. दवा बनाकर 500 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए

कटाई-मड़ाई प्रबन्धन

सरसों की फसल 120 से 140 दिन में पक कर तैयार हो जाती है जिसके बाद इसकी कटाई की जा सकती है। यदि समय पर कटाई नही की जाती है तो इसकी फलियाँ चटखने लगती हैं जिससे उपज में 5 से 10% की कमी आ जाती है। जैसे ही पौधे की पत्तियां व फलियाँ पीले पड़ने लगे कटाई कर लेनी चहिए। सरसों की कटाई केवल शाखाओं को काटकर बंडलों में बंधकर रख देना चाहिए। फसल को सुखाकर थ्रेसर या डंडों से पीटकर दाने को अलग कर लेना चाहिए। बीजो को सुखाने के बाद बोरियों में नमी रहित स्थान पर भंडारित कर लें।

उपज

सरसों का उत्पादन सिंचित क्षेत्रों में 20 से 30 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तथा असिंचित क्षेत्रों में 15 से 20 क्विंटल प्रति हेक्टेयर दाने की उपज प्राप्त होती है।

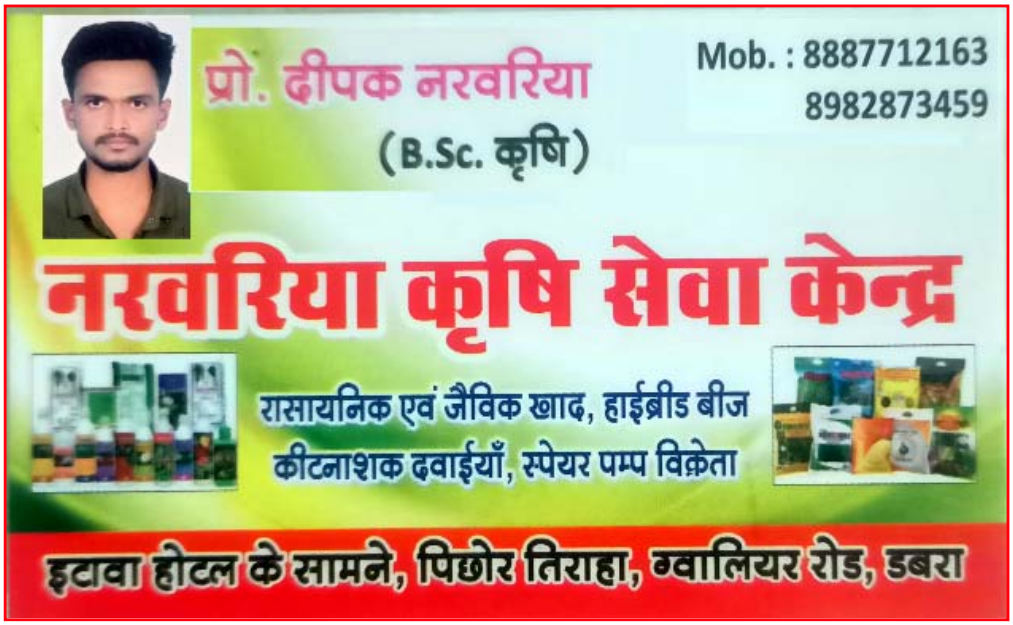

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

दलहनी फसलों में एकीकृत कीट प्रबंधन

सुशांत कुमार, रवि शंकर और आदित्य पटेल
(शोध छात्र) कीट विज्ञान, सरदार वल्लभ भाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय मेरठ (उ.प्र.)

दाल भारतीयों के भोजन का प्रमुख अंग है जो लगभग सभी पोषक तत्वों से भरपूर होती हैं। दलहनी फसलोत्पादन मे भारत सर्वाधिक उत्पादन करने वाले देशों में आता है। दलहनी फसलो का उत्पादन करने के मे बहुत सारे कारक होते हैं जिसमे से कीट एक प्रमुख हैं-

दलहनी फसलों में लगने वाले कुछ प्रमुख कीट हैं-

फली बेधक कीट : यह कीट मुख्यतः सभी फसलो का क्षतिग्रस्त करता है जैसे की उड़द, मूंग, चना, तथा अरहर आदि। इस कीट की सूडियां हरे रंग की होती हैं जबकि वयस्क के अग्रिम पंखों पर भूरे रंग के बिन्दु पाए जाते हैं तथा पिछले पंख हल्के सफेद रंग के होते हैं जो पूर्ण विकसित होने पर लगभग 35.40 मि.मी. लंबी हो जाती है। इस कीट की मादा पौधे के कोमल भागो पर अण्डो देती हैं। अण्डों से 2-5 दिन के बाद सूडियां निकलती हैं जो फलियां अपने जीवनकाल में 30-40 फलियों को प्रभावित कर सकती हैं। प्रकोप अधिक होने की दशा में फलियां खोखली हो जाती हैं तथा उत्पादन बुरी तरह से प्रभावित होता हैं।

फली मक्खी: यह अरहर का एक प्रमुख कीट है जिसका वयस्क धात्विक हर रंग का होता है। इस कीट की आखें बड़ी त्रिभूजाकार की होती हैं जो हरे रंग की दिखाई पड़ती है। इस कीट का प्रकोप फसल का अक्टूबर से अप्रैल के माह मे देखा जा सकता है किन्तु अधिक सर्दी पड़ने पर इसका प्रभाव कम हो जाता है। इस कीट की सूंडिया अण्डे से बाहर निकलकर फसल के विकसित दानों के बाहरी सतह को खाना प्रारंभ कर देती हैं जिसके कुछ समय पश्चात वह दानों मे छिद्र बनाकर उसके अन्दर प्रवेश कर जाती है। और अन्त मे सुरंग नुमा संरचना बनाकर दाने से बाहर आ जाती है।

तना मक्खी: यह मटर प्रमुख का कीट है जिस का प्रकोप फसल की उगने के साथ ही प्रारंभ हो जाता है। अगेती फसल में इसका प्रकोप सामान्यतया ज्यादा दिखाई पड़ता है। इसके व्यस्क काले गहरे रंग के तथा आकार में छोटे होते हैं। इस कीट की मादा तने के आधार में अंडे देती है जिसके नवजात पत्ती में सुरंग बनाकर उससे भोजन प्राप्त करते हैं जो कुछ समय पश्चात् पत्ती की मोटी सिरा से होते हुए तने के अंदर घुस कर उसकी दोनों दिशाओं में सुरंग बनाते हैं जिसके फलस्वरूप प्रभावित पौधे पीले पड़कर सूख जाते हैं तथा अंत में पूरा पौधा मुरझा जाता है और उत्पादन प्रभावित होता है

माहू या चेंपा: यह आकार मे छोटे, भूरे तथा हरे रंग के होते हैं जो फसल पर समूह मे आक्रमण करते हैं। इस कीट के वयस्क कालें रंग तथा आकार मे 2 मि.मी. के होते हैं तथा शरीर पर मोम जैसी संचरना पाई जाती है जिस कारण ये मटमैले दिखाई पड़ते है। इसके वयस्क तथा निम्फ पौधे के सभी कोमल हिस्सों पर आक्रमण कर पौधे से उसका रस चूस लेते हैं जिस कारण फसल की पत्तियां सूखकर पीली हो जाती हैं और नीचे गिरने लगती हैं जिसके फलस्वरूप पौधा मुरझा जाता है। यह मुख्यतः उर्द, मूंग, तथा मटर आदि फसलों को प्रभावित करते हैं।

सफेद मक्खी : यह कीट आकार में एक से दो मि.मी. के हल्के पीले अथवा सफेद रंग के होते हैं। ये पत्ती की निचली सतह पर देखे जा सकते है। इस कीट की निम्फ गोल, अण्डाकार होते हैं। जो सफेद रंग के होते हैं। इस कीट के वयस्क तथा निम्फ पत्ती की निचली सतह पर रह कर उससे रस चूसते है। जिससे पौधों की वृद्धि रूक जाती हैं। इसके अतिरिक्त यह कीट चिपचिपा पदार्थ निकालते हैं जो अन्य कीटों को आकर्षित करते हैं। यह चिपचिपा पदार्थ काले रंग के फफूंद से युक्त होता है। साथ ही यह कीट पीले मोजेक बीमारी का भी बाहक होता है। इस कीट के प्रकोप अधिक होने पर पौधें की पत्तियां पीली पड़कर मुरझा जाती है। अतंतः कुछ समय पश्चात पौधें की मृत्यु हो जाती हैं।

बिहार की बालदार सुंडी: यह मूंग, तथा उरद पर पाया जाने वाला एक प्रमुख कीट हैं। जिसका वयस्क हल्के पीले रंग का होता हैं। इस कीट की भृंगिकाऐ तथा आंख काले रंग की होती हैं। तथा पूरा शरीर घने बालों से ढंका रहता है। इस कीट सूडियां पत्तियों के ऊपरी भाग को खुरचकर खाती हैं। प्रकोप अधिक होने पर यह पौधे के तनें को छोड़कर पूरे पौध पर आक्रमण कर देती हैं। तथा पौधे को खरोंचकर खाकर क्षतिग्रस्त कर देती है जिसके फलस्वरूप पौधे की मृत्यु हो जाती है।

फुदका या हरा तेला: यह मूंग पर लगने वाला कीट हैं जिसके वयस्क हरे अथवा पीले रंग के होते हैं। यह कीट फसल की पत्तियों से उसका रस चूसते हैं। जिस कारण पत्तियों के किनारे पीलें पड़ जाते हैं। फसल में इस कीट की संख्या अधिक होने पर पत्तियां सूखकर नीचे गिर जाती हैं जिसके फलस्वरूप फसल उत्पादन कम हो जाता हैं।

कटुआ कीट: इस कीट की केवल सुंडी अवस्था ही नुकसान पहुंचाती है इसकी सूडियां गहरे धूसर रंग की तथा त्वचा चिकनी व मुलायम होती है। सूडियां अधिकतर दिन में भूमि के अंदर दरारों में अथवा मिट्टी के नीचे छिपी रहती हैं और रात में निकलकर उगते हुए पौधों को भूमि की सतह से काटकर गिरा देती हैं। यह उतने पौधे नहीं खाती जितने हानि करती हैं। इसका प्रकोप नवंबर से फरवरी तथा मार्च माह तक रहता है।

पत्ती एवं प्ररोह मोडक कीट: अरहर की फसल का प्रमुख कीट है जो छोटा सा गहरे भूरे रंग का पतंगा है। इस कीट का अगला भाग पीले रंग का होता है जो सामान्यतः जुलाई या अगस्त में फसल को सर्वाधिक प्रभावित करता हैं। यह 3- 4 पत्तियों को मोड़ कर एक लूप का आकार दे देता है तथा यह कीट इसी लूप मे रहकर उसे खाकर क्षतिग्रस्त करता है।

दलहनी फसलों में कीटों का प्रबंधन

- दलहनी फसलों में कीटों से बचाव के लिए ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई करनी चाहिए जिससे भूमि मे उपस्थित कींट या उसके अवशेष नष्ट हो जाए।
- कीट अवरोधी किस्में-जैसे नरेन्द्र अरहर-1,2, पूसा-9,202 (अरहर के लिए), नरेद्र उर्द-1, पंत उर्द-29, 30, आजाद उर्द, (उर्द के लिए), नरेंन्द्र मूंग-1, स्वाति, एमएच-421, पूसा-9531, (मूंग के लिए), पूसा 391 (चने के लिए) आदि का प्रयोग करना चाहिए।
- फसल की बुवाई संस्तुत दूरी पर ही करनी चाहिए।
- सूंडियों के अण्डे तथा समूह मे उपस्थित सूंडियों को सप्ताह मे दो बार एकत्रित कर नष्ट कर देना चाहिऐं।
- लेडी बर्ड और लेस विंग्स जैसे-लाभदायक कीटों को खेत में उपस्थित फुदका तथा माहू के नियंत्रण के लिऐ बढ़ावा देना चाहिए। ● आर्थिक क्षति के अनुसार गंधपास (फेरोमोन ट्रैप) का उपयोग करना चाहिए तथा खेत मे इन्हें एक दूसरे से 30 मीटर की दूरी पर लगाना चाहिऐं।
- मांहू या चेपा के नियंत्रण के लिए खेतों में 12.14 पीले रंग के चिप चिपे पास को प्रति हेक्टेयर की दर से उपयोग में लाना चाहिए
- नीम आधारित उत्पाद जैसे अचूक, नीमगोल्ड तथा निमेरिन आदि की तीन से चार मि.ली. मात्रा को प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाकर छिड़काव करें।
- दालों मे लगने वाली समस्त प्रकार की सूंडियों के लिए, क्षति आर्थिक स्तर पर पहुंचने के पश्चात् पन्द्रह दिनों के अन्तराल पर एन.पी.वी. की 250 लार्वा समतुल्यांक मात्रा प्रति हेक्टेयर की दर से 2 से 3 बार छिड़काव करें।
- रस चूसक कीटों के आर्थिक क्षति स्तर पर पहुँचने पर डाइमेथोऐट 30 ई.सी. 1 लीटर या इमिडाक्लोप्रिड 250 मि.ली. प्रति हैक्टेयर की दर से छिड़काव करें।
- फली छेदक तथा अन्य कीटों के नियंत्रण हेतु 2 से 3 छिड़काव स्पाइनोसाड 45 प्रतिशत एस. पी. की एक मि.ली. मात्रा को 2 लीटर पानी या ईमामेक्टीन बेन्जोएट 5 प्रतिशत एस.जी. की 1 मि.ली. मात्रा को 2 से 3 लीटर पानी की दर से फल तथा फूल आने पर करें।
- फली बेधक कीटों के लिए के लिए नोवालियोरॉन 10 ईसी की 750 मि.ली. मात्रा को आवश्यकतानुसार पानी में घोल बनाकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

प्राकृतिक खेतीः जरूरत भी, परंपरा भी

हिमांशु तिवारी सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय मेरठ (उ.प्र.)

अनामिका बर्मन भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

'माता भूमिः पुत्रोहं पृथिव्याः' अर्थात भूमि मेरी माता है और मैं उसका पुत्र हूं। माता और पुत्र के इस रिश्ते का पवित्र सेतु यानि- प्राकृतिक खेती। प्राकृतिक खेती जैसा कि नाम से ही जाहिर है यह खेती पूरी तरह से प्राकृतिक संसाधनों या यूं कह लीजिए कुदरती सामग्री पर आधारित है। यह खेती का ऐसा तरीका है जो मिट्टी की भौतिक संरचना में सुधार करता है, उसे कुदरती तौर पर उपजाऊ बनाता है और फसलों को जलवायु परिवर्तन की मार का सामना करने के लिए काबिल बनाता है। इस तरीके में पानी की बचत होती है, लागत कम लगती है और उत्पादन भी बढ़ जाता है।

जीवामृतः प्राकृतिक कृषि प्रक्रिया में धरती का अमृत- जीवामृत। प्रयोगों से पता चला है कि 10 किलोग्राम गोबर के साथ गोमूत्र, गुण एवं दो दलें चीजों का आटा या बेसन आदि मिलाकर यदि उसका प्रयोग किया जाए तो चमत्कारिक परिणाम मिलते हैं जिसका नाम रखा गया है जीवामृत।

जीवामृत के निर्माण के लिए जरूरी सामग्री

10 किलोग्राम देसी गाय का गोबर, 8 से 10 लीटर देसी गाय का मूत्र, 1.5 से 2 किलोग्राम गुड़, 1.5 से 2 किलोग्राम बेसन, 180 लीटर पानी और मुट्ठी भर पेड़ के नीचे की मिट्टी। आसानी से उपलब्ध इन सामग्री से जीवामृत बनाने की विधि भी इतनी ही सरल है कि कोई भी किसान इसे अपने आप बना सकता है। इन सामग्री में से गुड़, बेसन एवं गोबर को पानी या तो गोमूत्र का उपयोग करके, ठीक से मसल कर गिला बनाते हैं। अब इन सामग्रियों को एक ड्रम में डालकर उसे लकड़ी के एक डंडे से घोलना है। ठीक से घोलने के बाद जीवामृत बनने के लिए 2 से 3 दिन तक छाया में रख देना है। प्रतिदिन सुबह और शाम घड़ी की सुई की दिशा में लकड़ी के डंडे से 2 मिनट तक इसे घोलना है और जीवामृत को बोरे से ढक देना है। यह जीवामृत जब सिंचाई के साथ खेत में डाला जाता है तो भूमि में जीवाणुओं की संख्या अविश्वसनीय बढ़ जाती है और भूमि के रासायनिक एवं जैविक गुणों में वृद्धि होती है। जीवामृत को महीने में दो बार या एक बार उपलब्धता के अनुसार 200 लीटर प्रति एकड़ के हिसाब से सिंचाई के पानी के साथ दीजिए। फलों के पेड़ों के पास दोपहर 12:00 बजे जो छाया पड़ती है उस छाया के पास प्रति पेड़ 2 से 5 लीटर जीवामृत भूमि पर महीने में एक बार या दो बार गोलाकार में डालना है। इससे मिट्टी स्वस्थ बनती है और फसल भी उतनी ही बेहतर मिलती है। इससे किसान के मित्र माने जाने वाले केंचुओं की संख्या बढ़ती है।

- प्राकृतिक खेती में गहरी जुताई की भी जरूरत नहीं होती है।

- इतना ही नहीं प्राकृतिक कृषि भूमिगत जल को भी बढ़ाती है।
- इस प्रक्रिया से मुख्य फसलों के साथ सहयोगी फसलों को भी उगाया जा सकता है।

घनजीवामृतः घनजीवामृत जीवामृत का ही सूखा हुआ स्वरूप है, जिसे फसल बोने से पहले जमीन में मिलाया जाता है। धूप में सुखाएं गए 200 किलोग्राम गोबर में ताजा बना 20 लीटर जीवामृत मिलाकर 2 दिन छाया में रखते हैं। इसे एक बार फिर धूप में सुखाकर तथा डंडे से पीसकर महीन बना दिया जाता है। यही घनजीवामृत है जिसे 1 एकड़ के लिए प्रयोग कर सकते हैं।

बीजामृतः प्राकृतिक खेती का एक आवश्यक आदान बीजामृत है। बीजामृत जहां बीज को बीज-जनित रोगों से बचाता है वहीं इसकी अनुकरण क्षमता को भी अद्भुत रूप से बढ़ाता है। देसी गाय का 5 किलो गोबर, 5 लीटर गोमूत्र, 50 ग्राम बुझा हुआ चूना और थोड़ी सी मिट्टी को 20 लीटर पानी में मिलाकर बीजामृत बनता है। एक रात रखने के बाद इसमें 100 किलोग्राम बीज का संस्कार किया जाता है। इसके 1 दिन बाद संस्कारित बीज बुआई के लिए तैयार हो जाता है।

आच्छादनः आच्छादन प्राकृतिक खेती का एक महत्वपूर्ण नियम है। खेती वाली सारी भूमि को फसल अवशेष से या छोटी अवधि की अंतर फसलों से पूरा ढक दिया जाता है। आच्छादन भूमि में नमी बनाए रखता है तथा वातावरण से नमी को खींचकर खेती हेतु पानी की खपत को भी अद्भुत रूप से घटाता है । जीवाणुओं एवं केंचुओं की गतिविधियों को बढ़ाता है, खरपतवार को नियंत्रित करता है, तथा अंत में विघटित होकर जमीन से कार्बन उत्सर्जन को रोककर भूमि के जैविक कार्बन क्षमता को बढ़ाता है।

वाफसाः इस कृषि विधि में वाफसा निर्माण भी एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है जिसमें भूमि में हवा और भूमि का बराबर संतुलन बनाया रखा जाता है।

अग्निअस्त्रः प्राकृतिक कृषि विधि केवल भूमि के उत्पादन क्षमता को ही नहीं बढ़ाती है बल्कि यह कीट एवं बीमारियों के रोकथाम के लिए भी एक प्रभावी विकल्प देती हैं। फसलों पर कीट पतंगों के रोकथाम के लिए स्थानीय वनस्पतियों पर आधारित सस्ता तथा किसान के खेत में ही बनने वाला आदान है अग्निअस्त्र।

अग्निअस्त्र के निर्माण के लिए जरूरी सामग्रीः 5 किलोग्राम नीम या अन्य स्थानीय पौधे के पत्ते (जिसे गाय नहीं खाती), 20 लीटर देसी गाय का मूत्र, 500 ग्राम तंबाकू पाउडर, 500 ग्राम हरी मिर्च तथा 50 ग्राम लहसुन का पेस्ट को मिलाकर, धीमी आंच में उबालकर, 48 घंटे के लिए रखा जाता है। इसे सुबह-शाम दो-दो मिनट के लिए घोलें। इस घोल का 6 लीटर प्रति 200 लीटर पानी में मिलाकर 1 एकड़ में छिड़काव करते हैं। नीमास्त्र, ब्रह्मास्त्र, दशपर्णी आदि भी कीट-पतंगों के रोकथाम के लिए उपयोग में लाए जाते हैं। इसी तरह खट्टी लस्सी, कंडी, सौठस्त्र इत्यादि प्रभावी रूप से विभिन्न बीमारियों के निवारण के लिए प्रयोग में लाए जाते हैं।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

कैल्शियम से भरपूर रागी

नबा रहमान (स्नातकोत्तर छात्रा)
पोषण एवं आहार विज्ञान एथलिंड कालेज आफ होम साइंस सैम हिंगिगगबाटिम कृषि प्रौद्योगिकी एवं पूर्व विज्ञान विश्वविद्यालय प्रयागराज (उ.प्र.)

अपनी हेल्थ को लेकर सजग रहने वाले ज्यादातर लोग इन दिनों सामान्य गेहूं के आटे की जगह जौ का आटा, बाजरे का आटा, राजगीरा या अमरंथ का आटा, सोया का आटा, कुट्टू का आटा आदि यूज करने लगे हैं। ऐसा ही एक हेल्दी ऑप्शन है रागी जिसे फिंगर मिलेट **(Finger Millet)** के नाम से भी जाना जाता है। रागी को ही कई जगहों पर नाचनी **(Nachni)** भी कहा जाता है. रागी को पीसकर, अंकुरित करके खाया जाता है।

शरीर में खून की कमी की समस्या को दूर करना हो या फिर कोलेस्ट्रॉल और ब्लड शुगर लेवल को, हर चीज में फायदेमंद मानी जाती है रागी। प्रोटीन और फाइबर **(Protein and Fiber)** के कारण इसे वेट लॉस के लिए सबसे अच्छा माना जाता है। इसे खाने से पहले इसके फायदे और नुकसान दोनों जान लें।

रागी के फायदे

- **कैल्शियम से है भरपूरः** रागी में काफी मात्रा में कैल्शियम पाया जाता है। 100 ग्राम में 344 मिलिग्राम कैल्शियम मिलता है। हड्डियों को कमजोर होने से हुई बीमारियों में इसे खाने की सलाह दी जाती है। यही नहीं बढ़ते बच्चों के लिए यह फायदेमंद है।
- प्रोटीन का बेहतरीन सोर्स है-शरीर के लिए जरूरी एमिनो एसिड **(Amino Acid)** और प्रोटीन से भरपूर होता है रागी।
- एनीमिया और डायबिटीज के मरीजों के लिए रामबाण है रागी-आयरन **(Iron)** का बेहतरीन सोर्स है रागी इसलिए अगर किसी व्यक्ति को एनीमिया की बीमारी **(Anemia)** हो या शरीर में हीमोग्लोबिन का लेवल कम हो तो उसे रागी का सेवन जरूर करना चाहिए। अगर रागी को अंकुरित करके खाया जाए तो विटामिन सी का लेवल और बढ़ जाता है और आयरन शरीर में आसानी से पच जाता है और खून में आसानी से मिल जाता है। रागी में फाइबर की मात्रा अधिक होती है और इसका ग्लाइसिमिक इंडेक्स भी कम होता है। इसलिए यह ब्लड शुगर लेवल **(Blood Sugar Control)** को कंट्रोल करने में मदद करता है।

- तनाव होता है कम- रागी में भरपूर मात्रा में एंटीऑक्सिडेंट्स होते हैं जो **Stress** यानी तनाव को घटाने में मदद करते हैं। अगर आपको एंग्जाइटी, डिप्रेशन या अनिद्रा की समस्या हो तो आप रागी जरूर खाएं।
- स्किन एजिंग से बचाता है- रागी को खाने से स्किन हमेशा जवां बनी रहती है। इसमें मौजूद एमिनो एसिड की मदद से स्किन टिशु झुकते नहीं है जिससे झुर्रियां नहीं पड़ती हैं। इसके अलावा रागी विटामिन डी का भी अच्छा सोर्स है।

पोषक तत्वों से भरपूर है रागी

- रागी में काफी मात्रा में कैल्शियम पाया जाता है।रागी के आटे में कोलेस्ट्रॉल और सोडियम जीरो पर्सेंट होता है जबकि फैट की मात्रा केवल 7 प्रतिशत होती है। इसके अलावा इसमें डाइट्री फाइबर, विटामिन्स, कार्बोहाइड्रेट, कैल्शियम, प्रोटीन, पोटैशियम, आयरन भी भरपूर मात्रा में होता है।

रागी के नुकसान

- अगर किडनी में स्टोन या किडनी से जुड़ी कोई और समस्या हो तो ऐसे लोगों को रागी का सेवन नहीं करना चाहिए क्योंकि इसमें कैल्शियम की मात्रा अधिक होती है।
- थायरॉयड के मरीजों को भी रागी का सेवन नहीं करना चाहिए वरना उनकी दिक्कतें बढ़ सकती हैं।
- बहुत ज्यादा रागी खाने की वजह से कब्ज, डायरिया, पेट में गैस, पेट फूलने जैसी दिक्कतें हो सकती हैं।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

पपीता की खेती : आय का साधन

कमलेश कुमार आनुवांशिकी तथा पादप प्रजनन्न विभाग बी.आर.डी. पी.जी. कॉलेज, देवरिया (उ. प्र.)

नियाज अहमद पादप आणविक जीव विज्ञान तथा आनुवांशिक इंजीनियरिंग विभाग आचार्य नरेन्द्र देव कृ. एंव प्रौ. वि.वि. कुमारगंज, अयोध्या (उ. प्र.)

सरफराज फल विज्ञान विभाग इंटिग्रल वि. वि. लखनऊ (उ. प्र.)

कम भूमि तथा समय की बचत के साथ पपीते की खेती से अधिक आय अर्जित होने के कारण यह भारत तथा अन्य देशों का लोकप्रिय फल है। प्रति हेक्टेयर इसका उत्पादन 100 टन से भी अधिक प्राप्त होता है तथा यह फल पोषक तत्वों से भरपूर होता है जिसमें 0.5 प्रतिशत प्रोटिन एवं मिनरलस् जैसे आयरन, कैल्सियम तथा फॉस्फोरस पाये जाते है साथ ही विटामिन ए, विटामिन सी अच्छी मात्रा में पाया जाता है। पैपिन नामक एंजाइम प्रोटिन्स के पाचन में लाभकारी होते है।

कच्चा पपीता का उपयोग सब्जी के रुप में भी किया जाता है, यह पेट के घाव, डिप्थीरिया नामक बिमारी में लाभादायक होता है। इसका उपयोग च्यूइंग गम, टॉफी तथा फलमिश्रित अइसक्रीम बनाने में किया जाता है। यह एक शाकीय तथा शाखा रहित पौधा है जो एक वर्ष में बीज द्वारा उत्पन्न होता है। पपीता में नर, मादा, उभयलिंगी अथवा प्रजनन्न के अन्य रुप भी पाये जाते है। नर फूल लम्बे पेड पर तथा मादा फूल छोटे-छोटे गुच्छे के रुप में पत्तियों की काँख से निकले होते है। कुछ नर पौधो को बगीचे में बाकी रखा जाता है ताकि मादा पौधो को परागित किया जा सकता है। पपीता एक उष्ण क्षेत्र में होने वाला पौधा है, परन्तु हल्के उष्ण प्रदेश में भी आसानी से उग जाता है। यह पाला से अति संवेदनशील होता है। सर्दीयों में रात्री तापमान 12 से 14 डिग्री तथा ओस, पाला पडने के कारण फसल की क्षति हो जाती है।

मृदा: पपीता विभिन्न प्रकार के मिट्टी में उगाया जा सकता है। उचित जल प्रबन्धन अत्यनत आवश्यक होता है। हल्की मृदा तथा प्राकृतिक खाद प्रचुर मात्रा पपीता की खेती के लिए अच्छी होती है।

प्रजनन्न: सामान्यतया पपीता का प्रजनन्न बीज द्वारा किया जाता है। उत्तरी भारत में फरवरी-मार्च माह में बीज की बुवाई सम्पन्न हो जाता है। नर्सरी में आद्र गलन रोग से बचाव हेतु बीज को 0.1% फिनाईल मरक्यूरीक अम्ल, केरेसान, एग्रोसान या थीरम बीज शोधन करना चाहिए। नर्सरी बेड को 5% फॉरमेल्डीहाइड शोधन के भी रोग से बचाव किया जा सकता है। आजकल पपीता के पौधों को प्लास्टिक के थैले में उगाने से परिवहन में आसानी होती है।

नर्सरी में बुवाई: ऊँचाई पर उठे नर्सरी में बीज के आधा सेमी. की गहराई तथा 10 सेमी. की दूरी पर बुवाई करना चाहिए। 3-4 सप्ताह में अंकुरित हो जाता है। नर्सरी को बारिश, तेज धूप से बचाव हेतु छप्पर का छत बना देना चाहिए। एक हैक्टेयर भूमि की बुवाई के लिए लगभग 400-500 ग्राम बीज पर्याप्त होता है।

मुख्य खेत में स्थानांतरण: स्थानांतरण के लिए 2 माह में पौधे बुवाई के लिए तैयार हो जाते है, जब वे 4-5 पत्तीयों के होते है। इसके लिए जून माह उचित समय होता है। ग्रीष्मकाल में प्रचुर सिंचाई की आवश्यकता होती है, तत्पश्चात अगेती स्थानांतरण वांछित होता है। जिसके परिणामस्वरुप शीत ऋतु आते-आते पौधे पाला सहन करने की क्षमता विकसित कर लिये होते है।

बुवाई के लिए गढ्ढे की तैयारी: पपीते की बुवाई के लिये आधा मीटर लम्बा तथा चौडा गढ्ढा तैयार कर उसमें गोबर की खाद 1 किग्रा, नीम खली 1 किग्रा, 1 किग्रा हड्डी का चूरा मिलाकर वापिस गढ्ढा में भर दिया जाता है। बुवाई के एक सप्ताह पूर्व नर्सरी में पानी डालना बंद कर दिया जाता है ताकि मुख्य खेत में सफलतापूर्वक रोपाई करने में सहायक हो। अधिक गहराई में बुवाई करने से बचना चाहिए क्योंकि तना मिट्टी में जाने से सडन रोग उतपन्न हो जाता है।

पौधे से पौधा तथा लाइन से लाइन की दूरी: सामान्यतः 1.8×1.8 मी. की दूरी उचित होती है। सघन बुवाई के लिए 1.33× 1.33 मी. (5609 पौधे प्रति है.) ज्ञात है। उत्तरी भारत में 10 माह में तथा दक्षिणी भारत में 5 माह में ही फूल आने लग जाता है, इस समय 10-15 प्रतिशत नर पौधा छोडकर सभी नर पौधे को उखाड देना चाहिए। छोटी प्रजातिया जैसे पूसा डीलीसियस 1.4 × 1.4 या 1.4 × 1.6 मी. की दूरी पर अधिक उत्पादन प्रदान करता है। सघन खेती के लिए 1.2 × 1.2 मी. की दूरी पर पूसा नन्हा अच्छा उपज देता है तथा 64000 पौधो की आवश्यकता होती है।

उर्वरक: पपीता अधिक उर्वरक खपत करने वाला पौधा होता है इसके कारण आधारिय उर्वरक के अलावा अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए, प्रति गढ्ढे में 200-250 ग्रा. नत्रजन, फॉस्फोरस तथा पोटैशियम की मात्रा देना चाहिए।

उन्नतशील किस्में: पूसा डिलीसियस, पूसा मजेस्टी, पूसा ड्वार्फ, पूसा नन्हा, को. 1, को. 5, को. 7, पिंक फ्लेश स्वीट, हाइब्रिड-39, सनराइज शोलो, ताइवान इत्यादी। उत्तरी भारत में पपीते की तुडाई दिस्मबर में शुरु होती है जो बुवाई के समय से कटाई तक 16-18 माह का समय लग जाता है तथा 4-5 माह में समाप्त हो जाता है। पेड पर पके पपीते उच्च गुणवत्ता वाले होते है। दूर के बाजारों में ले जाने के लिए जब पपीता पूर्ण विकसित हो जाता है, हल्का हरा तथा उपरी हीस्से पर पीला रंग आ जाने पर तोडने से दूधिया तथा पानी के तरह हो जाता है। पपीते की तुडाई करते समय पेड को किसी भी प्रकार के हानि से वचाना चाहिए। भारत में एक पपीते के पेड से प्रतिवर्ष 20-150 फल लगते है। लगभग 60-70 टन प्रति है. की दर से पपीता होता है।

रोग तथा कीट प्रबन्धन

मूलसंधी सडन रोग- यह पपीते का एक गम्भीर बिमारी है, बरसात के समय इसका प्रकोप होता है। इसके कारण जडसंधी फूल जाता है, फट जाता है तथा जल के सम्पर्क में आने से सडन उत्पन्न हो जाता है। बचाव हेतु ब्रोडीएक्स मिक्सचर का छिडकाव करना चाहिए। तने के संक्रमित भाग को साफ करके ब्रोडीएक्स पेस्ट लगा देना चाहिए।

जड़ सड़न रोग: इसके बचाव हेतु 1 किग्रा. चूना और 100 ग्रा. कॉपर सल्फेट को बुवाई के पूर्व गढ्ढे में डालना चाहिए। वायरस के कारण पत्तियां मूड जाती है, झूरिंदार हो जाती है तथा पौधे बौने ही रह जाते है। इसके बचाव हेतु पछेती बुवाई करना चाहिए। पपीते का प्रमुख कीट लाल चींटीया, झींगा कीट, जड़ निमेटोड तथा चिडिया है।

ISSN-2582-5976

सेहत सुरक्षा हेतु बाजरा-एक पौष्टिक अनाज

डॉ. आलोक कुमार सिंह
(सहायक प्राध्यापक) फसल कार्यिकी विभाग
आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक
विश्वविद्यालय कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र.)

बाजरा एक पौष्टिक अनाज है। इसमें पर्याप्त मात्रा में प्रोटीन,ऊर्जा, वसा, खनिज लवण व रेशा पाया जाता है। बाजरा कम खर्च में अधिक पोषण देता है। बाजरा को केवल सर्दी में ही नहीं बल्कि पूरे साल खाया जा सकता है। यह बच्चों, बर्जुगों, किशोरी लड़कियों, गर्भवती व स्तनपान कराने वाली माताओं, मधुमेह व हृदय रोगियों के लिए अति उत्तम अनाज है। हालांकि बाजरे को मोटा आनाज कहा जाता है लेकिन पोषण तत्वों में समृद्ध होने के कारण इस अनाज को न्यूट्री मिलेट्स/न्यूट्री सीरियल्स कहा जाता है।

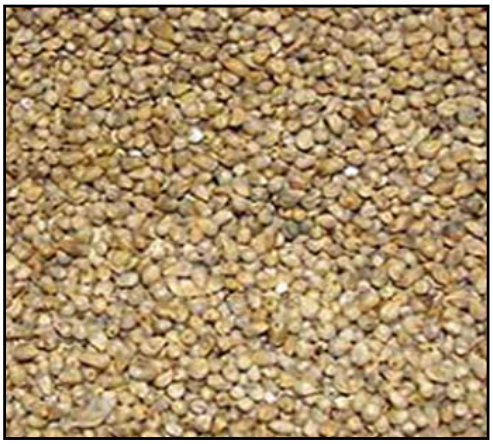

अफ्रीका मूल के इस अनाज में अमीनो एसिड, कैल्शियम, जिंक, आयरन, मैग्नीशियम, फॉस्फोरस, पोटैशियम और विटामिन बी 6, सी, ई जैसे कई विटामिन और मिनरल्स की भरपूर मात्रा पाई जाती है। प्रति 100 ग्राम बाजरे में लगभग 11.6 ग्राम प्रोटीन, 67.5 ग्राम कार्बोहाइड्रेट, 8 मिलीग्राम लौह तत्व और 132 मिलीग्राम कैरोटीन होता है। इसके सेवन से न सिर्फ शरीर में ऊर्जा बनी रहती है बल्कि भरपूर पोषण भी मिलता है। फाइबर की अधिकता के कारण यह पाचनक्रिया में सहायक होता है और वजन कम करने में भी मदद मिलती

बाजरे में लोहा, कैल्सियम ,फास्फोरस, जस्ता, मैगनीशियम, पोटेशियम, कैरोटिन, नियासिन, विटामिन बी6 और फोलिक एसिड, लौह तत्व और कई तरह के एंटीआक्सीडेंट्स भरपूर मात्रा में पाया जाता है। बाजारे में मौजूद कैल्सियम ,फास्फोरस हड्डियों के विकास में सहायक होता है जो बच्चों में होने वाले आस्टियोमलेशिया एवं व्यस्को में आस्टियोपोरोसिस के कतरे को कम करता है। इसमें मौजूद मैगनीशियम, ब्लडप्रेशर,माईग्रेन एवं अस्थमा को नियंत्रित करता है। बाजरे में लौह तत्व अधिक मात्रा में पाया जाता है, जो किशोरी लड़कियों व महिलाओं में बढ़ती हुई कुपोषण की समस्या विशेष कर खून की कमी को दूर करने में सहायक होता है। है। इसमें मौजूद कैरोटीन हमारी आंखों के लिए फायदेमंद होता है। इसमें एण्टी-ऑक्सिडेंट्स की भी अच्छी मात्रा होती है, जो नींद लाने और पीरियड्स के दर्द को कम करने में मदद करते हैं। यह कैंसररोधी भी है व कोलेस्टेरॉल के लेवल को रोकने में मदद करता है। बाजरे की सबसे बड़ी खासियत यह है कि इसके सेवन से कैंसर वाले टॉक्सिन नहीं बनते हैं। बाजरे में कुछ अल्प मात्रा में फाइटिक एसिड, पॉलीफिनाइल, जैसे कुछ पोषण विरोधी तत्व भी होते हैं। बाजरे को पानी में भिगोकर, अंकुरित करके, माल्टिंग की विधि द्वारा इन पोषण विरोधी तत्वों को कम किया जा सकता है। बाजरा ग्लूटेन फ्री होता है, जो शरीर के लिए फायदेमंद है। कई बार ऐसा देखा गया है कि ग्लूटेन युक्त भोजन खाने से पाचन में दिक्कत होती है। इतना ज्यादा पोषक गुण होने के बावजूद इसका उपयोग बहुत ही कम किया जाता है। ग्रामीण कृषक महिलाओं एवं आगनवाडी कार्यकर्तियों से चर्चा करने पर पाया गया है कि अक्सर लोग बाजरा से रोटी व खिचड़ी बनाते हैं।

बाजरे के उपयोग में सबसे बड़ी समस्या है कि बाजरा के आटे में थोड़ी कड़वाहट आती है और पिसवाने के बाद बहुत जल्दी खराब हो जाता है। लेकिन इसका समाधान भी हो गया है अगर बाजरा को आधे मिनट (30 सैकन्ड) तक उबलते पानी में डाल कर निकाल लें और सूखा कर पिसवायें तो इसका आटा लम्बे समय तक कड़वा नहीं होता और रोटी भी मुलायम बनती है एवं इसका आटा ज्यादा दिन तक नही रख सकते।

बाजरा से सिर्फ रोटी ही नहीं बल्कि पौष्टिक लड्डू, पंजीरी, सेव, शक्करपारे, बर्फी, बिस्कुट, केक व इडली आदि बनाये जा सकते हैं जोकि बहुत स्वादिष्ट, पौष्टिक और बनाने में आसान है। बाजरे का प्रयोग छोटे बच्चों के सम्पूरक आहार बनाने में भी किया जाता है। बढ़ते बच्चों की पोषण सम्बन्धित मांग भी पूरी की जा सकती है। माताएं छः महीने के बाद अक्सर डिब्बाबंद सम्पूरक आहार देना शुरू कर देती है। बाजरे को अन्य खाद्य पदार्थो जैसे दाल, बेसन मूंगफली, तिल व गुड़ के साथ मिला कर पौष्टिक मिश्रण बनाकर बच्चों को दिया जा सकता है। नियमित रूप से बाजरा खाने से भारत की आबादी का अधिकांश भाग कुपोषण मुक्त हो सकता है।

बाजरे के ज्यादा हानिकारक प्रभाव नहीं है। फिर भी बाजरे को ठीक से पचाने और संसाधित करने में अत्याधिक समय लगता है। जो हानिकारक हो सकता है। बाजरा में गोइटेरोगेनिक (हवपजमतवहमदपब) पदार्थ की कुछ मात्रा होती है जो शरीर में आयोडीन अवशोषण को रोकती है जिससे थायरायड की समस्या होती है। भोजन में गोइटेरोगनिक आमतौर पर खाना पकाने से कम होते हैं लेकिन बाजरा को पकाने या गर्म करने से गोइटेरोगेनिक का प्रभाव बढ़ जाता है। इसलिए थायरायड से पीड़ित लोग बाजरे का सेवन न करें।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

भौगोलिक संकेत टैग (GI Tag) लाभ, महत्व एवं चुनौतियां

हर्षित मिश्रा एम.एससी. (कृषि) कृषि अर्थशास्त्र आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र.)

पवन कुमार सिंह पी.एचडी. (कृषि) अर्थशास्त्र आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र.)

सचिन कुमार वर्मा पी.एचडी. (कृषि) अर्थशास्त्र आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र.)

हर जगह का अपना आकर्षण है, कुछ स्थान अपनी समृद्ध संस्कृति के लिए प्रसिद्ध हैं, कुछ अपने भोजन के लिए, कुछ अपने प्राकृतिक आकर्षण के लिए और कुछ अपनी कला और कपड़ों के लिए। इन स्थानों और उनसे जुड़े लोगों को उनके कपड़े, व्यंजन, भाषा और संस्कृति के रूप में मिश्रित इस विशिष्टता के कारण आसानी से पहचाना जा सकता है। बंगाल के रसगुल्ला, मंडी के शॉल, दार्जिलिंग की चाय, और भी बहुत कुछ जैसे भौगोलिक संकेतक बन जाते हैं।

जीआई टैग (Geographical Indication Tag) क्या हैं ?: एक भौगोलिक संकेत टैग (जीआई) एक संकेत है जो किसी विशेष स्थान से उत्पन्न होने वाले उत्पाद की पहचान करता है जो उस उत्पाद को एक विशेष गुणवत्ता या प्रतिष्ठा या अन्य विशेषता देता है। एक भौगोलिक संकेत का उद्देश्य एक प्रवेश के रूप में कार्य कर सकता है जो उत्पाद के पास कुछ विशेषताओं को रखता है, पारंपरिक तरीकों के अनुसार बनाया जाता है, या इसकी भौगोलिक उत्पत्ति के कारण एक निश्चित प्रमुखता प्राप्त करता है।

क्यों पड़ी इसकी जरूरत?: डब्ल्यूटीओ से एग्रीमेंट के बाद ये खतरा पैदा हुआ कि दुनिया के तमाम देश भारत पर आर्थिक अतिक्रमण करना शुरू कर रहे हैं। वो यहां के उत्पादों की नकल कर नकली सामानों को बाजार में बेच रहे हैं। इससे भदोही की कालीन, बनारस की साड़ी, लखनऊ की चिकनकारी, कांजीवरम साड़ी पर खतरा पैदा हुआ। जबकि ये सभी हमारी धरोहर और विरासत हैं। ऐसे में इन नकली सामानों से बचाने का जीआई टैग एक मात्र कानूनी हथियार है। इस टैग से उत्पाद को बनाने, प्रोडक्शन करने की गारंटी उसी ज्योग्राफिकल एरिया में होती है लेकिन सामान पूरी दुनिया में बेचा जाएगा। यही इस कानून की सबसे बड़ी खासियत है।

जीआई एक्ट, 1999

- जीआई एक्ट ज्योग्राफिकल इंडिकेशन ऑफ़ गुड्स (रजिस्ट्रेशन एंड प्रोटक्शन) एक्ट, 1999 या Geographical Indication of Goods (Registration and protection) act, 1999 भी कहते है।
- भारत में विश्व व्यापार संगठन **(WTO)** के सदस्य होने के नाते, 'ज्योग्राफिकल इंडिकेशन ऑफ़ गुड्स (पंजीकरण और संरक्षण) अधिनियम, 1999% को लागू किया गया। यह 15 सितंबर 2003 से लागू हुआ
- इस अधिनियम को **WTO** के **TRIPS- Trade related intellectual property rights** समझौते का पालन करने के लिए अधिनियमित किया गया। ■ औद्योगिक संपत्ति के संरक्षण के लिए पेरिस सम्मेलन के लेख 1 (2) और 10 के तहत, भौगोलिक संकेत **IPR** के तत्व के रूप में भी शामिल हैं। ■ इस अधिनियम को Controller General of Parents, Design & Trade Marks द्वारा प्रशासित किया जाता है। यह जीआई टैग भी प्रदान करता है।

अतुल्य भारत की अमूल्य निधि
Invaluable Treasures of Increadible India

जीआई टैग के लाभ

- भौगोलिक संकेतक उत्पाद के लिये कानूनी संरक्षण प्रदान करता है। ■ अन्य लोगों द्वारा किसी पंजीकृत भौगोलिक संकेतक के अनधिकृत प्रयोग को रोकता है
- यह संबंधित भौगोलिक क्षेत्र में उत्पादित वस्तुओं के उत्पादकों की आर्थिक समृद्धि को बढ़ावा देता है।

भारत के विकास में गई टैग का महत्व

- **ज़मीनी लेवल पर विकास:** इससे ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार को बढ़ावा मिलने के साथ ही गरीब किसानों और कामगारों को संरक्षण भी प्राप्त होगा। इससे सबसे निचले स्तर के लोग भी लाभान्वित होंगें। जबकि ज्यादातर अन्य पहलों में विकास का लाभ ज़मीनी लेवल पर नहीं आ पाता।
- **कृषक और कृषि की दशा में सुधार:** आज कृषक और कृषि दोनों ही संवेदनशील अवस्था में खड़े है। किसानों की आत्महत्या से लेकर उनकी दयनीय आर्थिक स्थिति अपने आप में सिक्के के अंधेरे पहलुओं को प्रदर्शित करते है। ऐसे में जीआई टैग स्थानीय उत्पादन को बढ़ावा देकर एक आशा बहाल कर सकता है। इससे कृषक और कृषि दोनों का विकास संभव है।
- **आदिवासी क्षेत्रों का विकास:** भौगोलिक संकेत आदिवासियों के परम्परागत विशेषज्ञताओं का संरक्षण करते हुए आदिवासी समुदाय के उत्थान में सहायक साबित हो सकता है। साथ ही इससे पर्यटन को भी बढ़ावा मिलने के साथ ही प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण भी हो सकेगा।
- **Geographical indication** गुणवत्तापूर्ण उत्पाद का उत्पादन सुनिश्चित करेगा इससे स्थानीय उत्पादों की घरेलू बाजार के साथ ही अंतराष्ट्रीय बाजार में भी कीमतों में वृद्धि होगी। इस तरह निर्यात में भी वृद्धि होगी।

हासिल करने की प्रक्रिया: वाणिज्य मंत्रालय के अंतर्गत आने वाले डिपार्टमेंट ऑफ इंडस्ट्री प्रमोशन एंड इंटर्नल ट्रेड की ओर से यह टैग दिया जाता है। इसके लिए चेन्नई स्थित जीआई डेटाबेस में अप्लाई करना पड़ता है। ये इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी राइट के अधीन है। इसकी प्रक्रिया के बारे में बात करें, तो कोई भी उत्पादक संघ या निजी व्यक्ति इसके लिए फाइल नहीं कर सकता। किसी भी इलाके की संस्था, सोसाइटी, कॉपरेटिव, ओएफपीओ आदि ही अप्लाई कर सकते हैं। वहीं बाहर की कोई संस्था भी लोकल जीआई के लिए आवेदन नहीं कर सकती है।

दस वर्षों तक होता है मान्य: एक बार मिल जाने के बाद दस वर्षों तक जीआई टैग मान्य होते हैं। इसके बाद उन्हें फिर रिन्यू कराना पड़ता है। भारत में दार्जिलिंग चाय, कश्मीर की पश्मीना, चंदेरी की साड़ी, नागपुर का संतरा, छत्तीसगढ़ का जीराफूल को यह टैग मिला है। वहीं ओडिशा की कंधमाल, गोरखपुर में टेराकोटा के उत्पाद, कश्मीरी का केसर, कांजीवरम की साड़ी, मलिहाबादी आम आदि को भी ये टैग हासिल है।

भौगोलिक संकेत के समक्ष चुनौतियां: अपने आप में ढेरों महत्व धारण करने के बाबजूद इससे संबंधित कई चुनौतियाँ है जिसे निम्न बिन्दुओं के माध्यम से देखा जा सकता है -

दस्तावेजी साक्ष्यों पर निर्भरता: भारत में भौगोलिक संकेत सूची में नाम दर्ज करने का कार्य **Geographical Indication Registry** करता है। और इसके लिए विभिन्न मानदंडों में से एक मानदंड यह है की किसी उत्पाद को गई टैग के रूप में दर्ज करने के लिए उसके उत्पत्ति से संबंधित साक्ष्य का होना अनिवार्य है। जबकि भारत के कई हिस्सों में विशेषकर जनजातीय क्षेत्रों में उत्पत्ति से संबंधित साक्ष्य लिखित रूप से उपलब्ध नही है, वह केवल मौखिक रूप में ही है ।ऐसे में गई टैग प्राप्त करने के लिए उत्पत्ति से संबंधित साक्ष्यों को एकत्रित कर पाना अत्यधिक चुनौती पूर्ण है। ऐसे में बहुत से क्षेत्र और लोग इसके लाभ से वंचित रह जाते है और उन तक लाभ को पहुँचाना एक प्रमुख चुनौती है।

- **उत्पादों की सीमित सुरक्षा:** गई टैग अधिनियम ज्ञान या उत्पादन की तकनीक के बदले केवल नाम की ही सुरक्षा करता है। ऐसे में उसी उत्पाद को दूसरे नाम से पुनः उत्पादित किया जा सकता है। इससे अधिनियम वास्तविक क्षेत्र एवं लोग को सुरक्षा नहीं दे पाता है और अधिनियम की उद्देश्य ही प्रभावहीन हो जाता है।
- **नियमों की अस्पष्टता:** टैग अधिनियम असली उत्पादक या निर्माता और फुटकर विक्रेता तथा डीलर के मध्य अंतर स्पष्ट नहीं कर पाता है। इससे कई जगहों पर भौगोलिक संकेत या जीआई टैग का वास्तविक लाभ उत्पादक या निर्माता तक नहीं पहुँच पाता है।
- **पर्याप्त आकलन की कमी:** गई टैग के लिए आवेदन करने वाले समूह द्वारा घरेलू और अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में भोगोलिक संकेतक उत्पादों की वाणिज्यिक सम्भावना के बारे में उचित आंकलन नहीं किया जाता है। इसके आलावा उत्पादों के पंजीकरण से इसकी आपूर्ति श्रृंखला में सम्मिलित समुदायों पर पड़ने वाले सामाजिक आर्थिक प्रभाव का आकलन नहीं किया जाता है। इससे वास्तविक रूप से गई टैग का लाभ नहीं प्राप्त हो पाता है।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

डॉ. महेन्द्र बैरवा और खुशबू
बागवानी विभाग, नैनी कृषि संस्थान
सैम हिगिनबॉटम कृषि, प्रौद्योगिकी और विज्ञान विश्वविद्यालय प्रयागराज (उ.प्र.)

ग्रीन हाउस
आवश्यकता एवं लाभ

किसानों द्वारा ग्रीनहाउस के माध्यम से सब्जियों का उत्पादन करना लाभकारी एवं महत्वपूर्ण है क्योंकि ग्रीनहाउस/पॉलीहाउस एक संरक्षित खेती है। आज भी हमारे किसान भाई अपनी खेती का लगभग 98 प्रतिशत भाग खुले वातावरण में तथा परम्परागत विधियों एवं तकनीकों को अपनाकर करते है।

सब्जियों की खेती खुले वातावरण में करने पर अनेकों प्रकार के जीवित व अजीवित कारकों द्वारा भारी नुकसान होता है जिस कारण उनकी उत्पादकता एवं गुणवत्ता पर दुष्प्रभाव पड़ता है।

इन जीवित कारकों में मुख्यतः विभिन्न प्रकार के विषाणु रोग, कीड़े-मकोड़े, भू-जनित एवं वायु जनित कवक, विभिन्न प्रकार के जीवाणु एवं सूत्रकृमि आदि प्रमुख है तथा ये जीवित कारक अधिकतर वर्षा ऋतु में उगाई जाने वाली सब्जियों को नुकसान पहुँचाते है।

अजीवित कारकों में तापमान, आर्द्रता एवं प्रकाश की तीव्रता आदि प्रमुख है जिनकी अधिकता एवं कमी से सब्जियों की उत्पादकता एवं गुणवत्ता प्रभावित होती है। तापमान की अधिकता फसलों को झुलसाने के रूप में तथा तापमान की गिरावट पाले के रूप में फसलों को हानि पहुँचाती है। जबकि अत्यधिक आर्द्रता विभिन्न प्रकार के कवक व जीवाणु जनित रोगों के प्रकोप में सहायक होती है। वही आर्द्रता की गिरावट के साथ तापमान की अधिकता फसलों को झुलझाने का काम करती है।

ठीक इसी प्रकार प्रकाश की कमी के कारण फसलों में ठीक प्रकार से प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया नहीं हो पाती है जिसका सीधा प्रभाव उपज व गुणवत्ता पर पड़ता है और अधिक प्रकाश की तीव्रता विपरीत प्रभाव डालकर उपज एवं गुणवत्ता को प्रभावित करती है।

ग्रीनहाउस में सब्जियों की खेती करने के लाभ

- ग्रीनहाउस में खेती करने पर सभी जीवित तथा अजीवित कारकों से फसल की रक्षा होती है।
- खुले खेती की अपेक्षा उच्च उत्पादकता (सामान्यता खुले खेत से 3-4 गुणा अधिक) प्राप्त होती है।
- बैमोसमी फसलों को उगाकर अधिक लाभ प्राप्त होता है।
- खुले खेतों की अपेक्षा कम क्षेत्रफल में अधिक लाभ होता है।
- ग्रीनहाउस और पॉलीहाउस के माध्यम से किसान अधिक गुणवत्ता वाली खेती और अधिक मुनाफा कमा सकते है। यह जैविक खेती का हिस्सा है।

।। श्री गणेशाय नम ।।

फक्कड़ बाबा
खाद बीज भण्डार

खाद बीज एवं कृषि कीटनाशक दवाईयों के विक्रेता

सदर बाजार गंज मुरार, ग्वालियर, मोबा. 9926988124, 9340964335

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

खीरा की उन्नत खेती

खुर्शीद आलम
मुजीव अहमद, मो. वामिक
(शोध छात्र, सब्जी विज्ञान विभाग)
डॉ. मनोज कुमार सिंह
(सह प्राध्यापक, सब्जी विज्ञान विभाग) सरदार वल्लभ भाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिक वि.वि. मेरठ (उ.प्र.)

कद्दूवर्गीय फसलों में खीरा का अपना एक अलग ही महत्वपूर्ण स्थान है। खीरे एक बेल की तरह लटकने वाला पौधा है जिसका प्रयोग सारे भारत में गर्मियों में सब्ज़ी के रूप में किया जाता हैं। खीरे के फल को कच्चा, सलाद या सब्जियों के रूप में प्रयोग किया जाता है। खीरे के बीजों का प्रयोग तेल निकालने के लिए किया जाता है जो शरीर और दिमाग के लिए बहुत बढ़िया है। खीरे में 96% पानी होता हैं, ये गर्मी से शीतलता प्रदान करता है और हमारे शरीर में पानी की कमी को भी पूरा करता है। इसलिए गर्मियों में इसका सेवन काफी फायदेमंद बताया गया है। खीरा एम बी (मोलिब्डेनम) और विटामिन का अच्छा स्त्रोत है। खीरे का प्रयोग त्वचा, किडनी और दिल की समस्याओं के इलाज और अल्कालाइज़र के रूप में किया जाता है।

जलवायु: अच्छी बढ़वार तथा फल-फूल के लिए 25 से 30 डिग्री सेल्शियस तापमान अच्छा होता है। अधिक वर्षा, आर्द्रता और बदली होने से कीटों व रोगों के प्रसार में वृद्धि होती है। इसकी खेती के लिए सर्वाधिक तापमान 40 डिग्री सेल्शियस और न्यूनतम 20 डिग्री सेल्शियस होना चाहिए। अधिक तापमान और प्रकाश की अवस्था में नर फूल अधिक निकलते हैं, जबकि इसके विपरीत मौसम होने पर मादा फूलों की संख्या अधिक होती है।

मिट्टी: खीरा को रेतली दोमट से भारी मिट्टी में उगाया जा सकता हैं। खीरे की फसल के लिए दोमट मिट्टी, जिसमे जैविक तत्वों की उच्च मात्रा हो और पानी का अच्छा निकास हो, उचित पैदावार देती है। खीरे की खेती के लिए मिट्टी का पीएच मान 6-7 होना चाहिए।

उन्नत किस्में

- **भारतीय किस्में:** स्वर्ण अगेती, स्वर्ण पूर्णिमा, पूसा उदय, पूना खीरा, पंजाब सलेक्शन, पूसा संयोग, पूसा बरखा, खीरा 90, कल्यानपुर हरा खीरा, कल्यानपुर मध्यम और खीरा 75 आदि प्रमुख है।
- **नवीनतम किस्में:** पूसा उदय, स्वर्ण पूर्णा और स्वर्ण शीतल आदि प्रमुख है।
- **संकर किस्में:** पंत संकर खीरा- 1, प्रिया, हाइब्रिड-1 और हाइब्रिड- 2 आदि प्रमुख है।
- **विदेशी किस्में:** जापानी लौंग ग्रीन, चयन, स्ट्रेट- 8 और पोइनसेट आदि प्रमुख है।

ज़मीन की तैयारी: खीरा की फसल की तैयारी के लिए पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करनी चाहिए। उसके बाद 2 से 3 जुताई हैरो या कल्टीवेटर से कर के मिट्टी को भुरभुरा बना लेना चाहिए, उसके बाद पाटा लगा

देना चाहिए। ताकि खेत समतल हो जाए। आखिरी जुताई से पहले 15 से 20 टन गोबर की गली सड़ी खाद या कम्पोस्ट मिटटी में भली भाती मिला देनी चाहिए।

बुवाई का समय: ग्रीष्म ऋतु के लिए इसकी बुवाई फरवरी व मार्च के महीने में की जाती है। वर्षा ऋतु के लिए इसकी बुवाई जून-जुलाई में करते हैं। वहीं पर्वतीय क्षेत्रों में इसकी बुवाई मार्च व अप्रैल माह में की जाती है।

बीज की फासला और गहराई: बीज को 2.5 मीटर चौड़े बैड पर हर जगह दो बीज बोयें और बीजों के बीच 60 सैं.मी. का फासला होना चाहिए। बीज को 2-3 सैं.मी. गहराई पर बोयें।

बीज की मात्रा: एक हेक्टेयर क्षेत्र की बुआई के लिए 2 से 3.25 किलोग्राम बीज की आवश्यकता पड़ती है। बीज की बुआई करने से पहले फफूंदनाशक दवा जैसे कैप्टान या थिरम (2 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज) से अच्छी तरह शोधित करना चाहिए।

खाद और उर्वरक: खेती की तैयारी के 15-20 दिन पहले 20-25 टन प्रति हेक्टेयर की दर से सड़ी गोबर की खाद मिला देते हैं। खेती की अंतिम जुताई के समय 20 कि.ग्रा नाइट्रोजन, 50 कि.ग्रा फास्फोरस व 50 कि. ग्रा पोटाशयुक्त उर्वरक मिला देते हैं। फिर बुवाई के 40-45 दिन बाद टॉप ड्रेसिंग से 30 कि.ग्रा नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर की दर से खड़ी फसल में प्रयोग की जाती है।

निराई-गुड़ाई: वर्षाकालीन फसल में खरपतवार की समस्या अधिक होती है। अंकुरण से लेकर प्रथम 20 से 25 दिनों तक खरपतवार फसल को ज्यादा नुकसान पहुंचाते हैं। इससे फसल की वृद्धि पर प्रतिकूल असर पड़ता है और पौधे की बढ़वार रूक जाती है।इसलिए खेत में समय-समय पर खरपतवार निकालते रहना चाहिए। खरपतवार निकालने के बाद खेत की गुड़ाई करके जड़ों के पास मिट्टी चढ़ाना चाहिए, जिससे पौधों का विकास तेजी से होता है।

सिंचाई: गर्मी के मौसम में इसको बार-बार सिंचाई की जरूरत होती है और बारिश के मौसम में सिंचाई की जरूरत नहीं होती है। इसको कुल 10-12 सिंचाइयों की आवश्यकता होती हैं। बिजाई से पहले एक सिंचाई जरूरी होती है, इसके बाद 2-3 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करें। दूसरी बिजाई के बाद, 4-5 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करें।

बीमारियां और रोकथाम

आर्द्र विगलन: यह रोग फफूंदी जनित होता है। इस रोग के कारण बीज का अंकुरण नही होता है। थोड़े बड़े पौधे रोगग्रस्त होने पर जमीन पर लेट जाते है।

नियंत्रण: रोकथाम हेतु बीज को मैन्कोजेब नामक फफूंदनाशक से उपचारित करना चाहिए।

मृदुरोमिल आसिता: यह रोग भी फफूंदी जनित रोग है। रोग के लक्षण सर्वप्रथम पत्तियों के उपरी सतह पर हल्के पीले रंग के कोणीय धब्बो के रूप में दिखाई पड़ते है। इन धब्बो के नीचे पत्ती की निचली सतह पर फफूंदी रूई के समान बैगनी रंग की दिखाई पड़ती है। रोगी पौधे बौने रह जाते है। फल का आकार छोटा रह जाता है।

नियंत्रण: मैन्कोजेब दवा 625 ग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें।

फल विगलन: इस रोग के कारण पहले फूल सड़ जाते है। कुछ समय उपरान्त फूलो पर फफूंदी का रूई जैसा जाल दिखाई देने लगता है, बाद में यह रोग फलो पर फैल जाता है और उन्हे सड़ा देता है। रोगी भागो पर फफूंद की बढ़वार रूई जैसी बैगनी काले रंग की दिखाई पड़ती है। अधिक नमी तथा उच्च तापमान होने पर रोग का प्रकोप अधिक होता है।

नियंत्रण: जल निकास का उचित प्रबंध करें। लताओ को चढ़ाने हेतु बांस या सीमेंट के खम्भों और रस्सी के माध्यम से सहारा दें।

चूर्णी फफूंदी: इस रोग का आक्रमण 15 से 23 दिन पुराने पत्तियों पर अधिक होता है। इस रोग का प्रसार एक से दूसरे स्थान पर वायु द्वारा होता है। पुरानी पत्तियों की निचली सतह पर सफेद धब्बे उभर जाते है। इन पत्तियों की सामान्य वृद्धि रूक जाती है तथा पत्तियां पीली पड़ जाती है पत्तियां हरिमाहीन हो जाती है और पौधा मर जाता है।

नियंत्रण: रोकथाम हेतु जैसे ही रोग के लक्षण दिखाई दे सल्फेक्स 2 किलोग्राम, कैराथेन 600 मिलीलीटर को 1000 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें।

कीटों की रोकथाम

एफिड: यह अत्यंत छोटे-छोटे व हरे रंग के कीट होते है जो पौधो के कोमल भागों का रस चूसते है। इन कीटो की संख्या में तीव्र गति से वृद्धि होती है, पत्तियां पीली पड़ जाती है और फसल के विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। ये कीट विषाणु रोग फैलाने में सहायक होते है।

नियंत्रण: इनके रोकथाम हेतु फ्लोनिकामाइड 50 प्रतिषत डब्लू जी 150 मिलीलीटर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करना चाहिए।

फल मक्खी: अधपके या पके फल इस कीट के कारण सड़ जाते है जिससे खीरा फसल को भारी हानि पहुंचती है।

नियंत्रण: इसके नियंत्रण हेतु कारटाफ एस पी 2 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करना चाहिए।

पत्ती खाने वाली सुंडी: यह कीट पत्तियों को खाकर क्षति पहुंचाते हैं जिससे खीरा फसल को भारी क्षति पहुचती है।

नियंत्रण: इसके नियंत्रण हेतु क्लोरोपाइरीफास का छिड़काव करना चाहिए

तुड़ाई एवं उपज: यह बुवाई के लगभग दो माह बाद फल देने लगता है। जब फल अच्छे मुलायम तथा उत्तम आकार के हो जायें तो उन्हें सावधानीपूर्वक लताओं से तोड़कर अलग कर लेते हैं। इस तरह प्रति हे. 50-60 क्विंटल फल प्राप्त किए जा सकते है।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

कद्दू के बीज के बेमिसाल फायदे जानते हैं आप?

उपासना मिश्रा (एम.एससी.)
डॉ. अलका गुप्ता (सलाहकार)

एक कद्दू का बीज, जिसे उत्तरी अमेरिका में एक पेपीटा के रूप में भी जाना जाता है, कद्दू या स्क्वैश के कुछ अन्य किस्मों का खाद्य बीज है। बीज आम तौर पर सपाट और विषम रूप से अंडाकार होते हैं, एक सफेद बाहरी भूसी होती है, और भूसी हटाए जाने के बाद हल्के हरे रंग के होते हैं। कद्दू का बीज कैसे खाया जाता है? कद्दू के बीज अंडे के आकार के होते हैं। इन पर बाहर सफेद रंग की परत होती है लेकिन अंदर से यह बीज हरे रंग के होते हैं। इनको अच्छे से रोस्ट करने के बाद खाया जाता है। यह मिनरल्स, विटामिन के, विटामिन ए और फाइबर से भरपूर होते हैं जिन्हें डाइट में शामिल करने पर आपको कई फायदे मिल सकते हैं।

कद्दू के बीज की तासीर क्या है?

कद्दू के बीज आंतों में पाए जाने वाले कीड़ों जैसे की टेपवॉर्म आदि को खत्म कर देते हैं. इनकी तासीर गर्म होती है इसलिए ये कफ को कम करके शरीर को इंफेक्शन से भी बचाते हैं.

कद्दू के बीज में कौन सा विटामिन पाया जाता है?

कद्दू के बीज में पाए जाने वाले तत्वों की बात करें तो इसमें विटामिन बी6. फाइबर, फोलेट, विटामिन ए, विटामिन सी, पोटेशियम, कॉपर, मैग्नीशियम और विटामिन ई आदि पोषक तत्व पर्याप्त मात्रा में होते हैं. इसके सेवन से इम्यून सिस्टम बूस्ट होता है।

कद्दू के बीज खाने से क्या फायदा होता है?

कद्दू के बीज में छोटे अंडाकार आकार के कद्दू के बीज जिन्हें पेपिटस भी कहा जाता है, पोषक तत्वों का एक पावरहाउस हैं. नट्स की तरह, कद्दू के बीज ओमेगा -6 फैटी एसिड सहित प्रोटीन और असंतृप्त वसा का एक बड़ा स्रोत हैं. कद्दू के बीज खाने के फायदे कमाल के होते हैं. इन्हें रोजाना अपनी डेली डाइट में शामिल कर आपको स्वास्थ्य लाभों की एक लंबी फहरिस्त मिल सकती है. कद्दू के बीजों में आयरन, कैल्शियम, बी 2, फोलेट और बीटा-कैरोटीन सहित पोषक तत्वों की एक अच्छी मात्रा होती है, जो शरीर विटामिन ए में परिवर्तित हो जाती है. कद्दू के बीजों में जरूरी फैटी एसिड के उच्च स्तर होते हैं जो ब्लड में स्वस्थ रक्त वाहिकाओं और कम अस्वास्थ्यकर कोलेस्ट्रॉल को बनाए रखने में मदद करते हैं. कद्दू के बीज डायबिटीज रोगियों के लिए भी काफी फायदेमंद हो सकते हैं. ये बीज जस्ता, मैग्नीशियम, मैंगनीज, तांबा, एंटीऑक्सिडेंट और फाइटोस्टेरॉल जैसे मूल्यवान पोषक तत्वों के भी स्रोत हैं. इन आश्चर्यजनक बीजों का उपयोग पुरुषों और महिलाओं दोनों के लिए पोषण स्नैक्स के रूप में किया जा सकता है. वे आदर्श स्नैक्स हैं क्योंकि वे आपके पेट को लंबे समय तक भरते हैं. यहां कद्दू के बीजों का सेवन करने के कुछ स्वास्थ्य लाभों के बारे में बताया गया है.

कद्दू के बीज खाने के जबरदस्त फायदे

डायबिटीज रोगियों के लिए लाभकारी

कद्दू के बीज ऑक्सीडेटिव तनाव को कम करके ब्लड

शुगर लेवल को कंट्रोल करने में मदद कर सकते हैं. ये बीज भी सुपाच्य प्रोटीन में समृद्ध हैं, जो रक्त शर्करा के स्तर को स्थिर करनें में मददगार माने जाते हैं. डायबिटीज रोगी इन बीजों को डाइट में शामिल कर काफी फायदा ले सकते हैं

वजन घटाने को बढ़ावा देते हैं

ज्यादातर लोगों को फिटनेस क्रेज वजन कम करने पर टिका है. कद्दू के बीज पोषक तत्वों से भरपूर होते हैं, जो आपको अधिक समय तक फुल रखने में मदद करते हैं. कद्दू के बीजों में काफी मात्रा में फाइबर पाया जाता है जो आपको तृप्त रखता है और आपको अनहेल्दी खाने से रोकता है.

बालों की ग्रोथ के लिए कमाल

कद्दू के बीजों में क्यूक्रबिटासिन होता है, जो एक अनोखा एमिनो एसिड है जो बालों के विकास में मदद करता है. ये विटामिन सी से भी भरपूर होते हैं, जो बालों ग्रोथ में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है. आप स्कैल्प पर कद्दू के बीज का तेल लगा सकते हैं या परिणाम देखने के लिए रोजाना एक मुट्ठी कद्दू के बीज का सेवन कर सकते हैं.

एंटीऑक्सिडेंट से भरपूर हैं कद्दू के बीज

कद्दू के बीज में विटामिन ई और कैरोटीनॉयड जैसे एंटीऑक्सिडेंट होते हैं. ये सूजन को कम करने में मदद करते हैं और कोशिकाओं को हानिकारक मुक्त कणों से बचा सकते हैं. यह बदले में आपके शरीर को विभिन्न बीमारियों से बचाने में भी सहायक हो सकते हैं.

दिल के स्वास्थ्य के लिए बेहतरीन

कद्दू के बीज में स्वस्थ वसा, फाइबर और एंटीऑक्सिडेंट होते हैं जो आपके हृदय स्वास्थ्य के लिए अच्छे होते हैं. इन छोटे बीजों में मोनोअनसैचुरेटेड फैटी एसिड भी होते हैं जो खराब कोलेस्ट्रॉल को कम करने में मदद करते हैं और अच्छे कोलेस्ट्रॉल को बढ़ाते हैं. बीजों में मौजूद मैग्नीशियम रक्तचाप के स्तर को नियंत्रित करके मदद कर सकता है।

बेहतर नींद लेने में मददगार

कद्दू के बीज में सेरोटोनिन होता है, जो एक न्यूरोकेमिकल है जिसे एक प्राकृतिक नींद को प्रेरित करने वाला माना जाता है. ये ट्रिप्टोफैन में भी समृद्ध हैं, एक एमिनो एसिड जो शरीर में सेरोटोनिन में परिवर्तित हो जाता है, जिससे आपकी नींद की गुणवत्ता में सुधार हो सकता है. बिस्तर पर जाने से पहले मुट्ठी भर बीज रात को नींद पाने का एक आसान और प्राकृतिक तरीका हो सकता है.

7. सूजनरोधी

कद्दू के बीज में एंटी-इंफ्लेमेटरी गुण होते हैं, जो गठिया के दर्द को कम करने में मदद करते हैं. जोड़ों के दर्द के इलाज में बीज एक आसान घरेलू उपाय के रूप में काम करता है. सर्दियों में इन बीजों का सेवन आपके लिए कमाल कर सकता है.

शुक्राणु की गुणवत्ता में सुधार हो सकता है

कम जिंक लेवल शुक्राणु कीद्ध गुणवत्ता में कमी और पुरुषों में बांझपन के जोखिम के साथ जुड़ा हुआ है. चूंकि कद्दू के बीज जिंक से भरपूर होते हैं, इसलिए इनके सेवन से शुक्राणुओं की गुणवत्ता में सुधार हो सकता है.

कद्दू के बीज को कैसे खाया जाए

कद्दू के बीजों को आप भूनकर, पानी में भिगोकर, अंकुरित करके, सलाद में डालकर, सूप, स्वीट डिश में डालकर खा सकते हैं। इसे सुखाकर चूर्ण बनाकर भी सेवन कर सकते हैं। यह छोटे बीज कई गंभीर रोगों जैसे कैंसर, हाई ब्लड प्रेशर को कंट्रोल करते हैं। हालांकि, इन बीजों के सेवन का एक सही तरीका होता है।

कद्दू के बीज कब खाने चाहिए?

सोने से पहले कद्दू के कुछ बीज लेना बहुत अच्छा रहता है. आप चाहें तो किसी फल के साथ इसे ले सकते हैं. कद्दू के बीजों का सेवन करने से तनाव कम होता है और नींद अच्छी आती है.

कद्दू के बीज पोषण तथ्य

कद्दू खाने से क्या नुकसान होता है?: फाइबर की वजह से कद्दू के बीजों में फाइबर काफी होता है, जो पाचनक्रिया के लिए अच्छा है, लेकिन अगर इसका सेवन ज़्यादा किया जाए, तो इससे डायरिया भी हो सकता है। साथ ही इससे पेट में दर्द, ऐठन, सूजन की दिक्कत भी हो सकती है। इसके अलावा, पेट दर्द की परेशानी भी हो सकती है।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

ज्वार : खरीफ चारे की उत्तम फसल

दीपक कुमार, पशुपालन एवं दुग्ध विज्ञान विभाग, चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर (उ.प्र.)

खरीफ के चारों में ज्वार की फसल सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। यह रेतीली मिट्टी को छोड़कर लगभग सभी प्रकार की मिट्टियों में उगाई जा सकती है। ज्वार की किस्मों में एक कटाई से लेकर चार कटाइयां देने की क्षमता है। एक कटाई वाली किस्में दलहनी चारे की फसलों के साथ मिलाकर भी लगाई जा सकती है। ज्वार के चारे में धुरिन नामक विषैले पदार्थ की मात्रा विशेषकर गर्मी के मौसम में अधिक हो जाती है।

इस तरह का चारा पशुओं के लिए घातक होता है। इसलिए गर्मी के मौसम में उगाई गई ज्वार में पानी की कमी नहीं होनी चाहिए। पशुओं के लिए इसका चारा पर्याप्त रूप से पौष्टिक होता है। ज्वार का हरा चारा, कड़वी तथा साइलेज तीनों ही पशुओं के लिए उपयोगी और शक्तिवर्धक हो।

भूमि व खेत की तैयारी

ज्वार की खेती वैसे तो सभी प्रकार की मिट्टी में की जा सकती है परन्तु दोमट, बलुई दोमट, जिसमें जल निकास का अच्छा प्रबन्ध हो, सर्वोत्तम मानी गई है। ज्वार के लिए खेत की मिट्टी को भुरभुरी बनाना आवश्यक है। सिंचित इलाकों में खाली खेत में दो बार गहरी जुताई करके पानी लगाने के बाद बत्तर आने पर दो जुताइयां (एक दूसरे के आर पार) करके सुहागा लगाएं। गर्मी के मौसम में की जाने वाली बिजाई के लिए हो सके तो पलेवा गहरा करें।

बीजाई का समय

सिंचित इलाकों में ज्वार की गर्मी की फसल 20 मार्च से 10 अप्रैल तक व खरीफ की फसल 25 जून से 10 जुलाई तक बो देनी चाहिए। जिन क्षेत्रों में

सिंचाई उपलब्ध नहीं है वहां बरसात की फसल मानूसन में पहला मौका मिलते ही बो देनी चाहिए। अनेक कटाई वाली किस्मों/संकर किस्मों की बिजाई अप्रैल के पहले पखवाड़े में करनी चाहिए। यदि सिंचाई व खेत उपलब्ध न हो तो बिजाई मई के पहले सप्ताह तक की जा सकती है।

बीज की मात्रा व बिजाई का तरीका

यदि खेत भली प्रकार तैयार हो तो बुआई सीडड्रिल या हल से 2.5 से 4 सैं.मी. गहराई पर एवं 25-30 सैं.मी. की दूरी पर लाइनों में करें। ज्वार की बीज दर प्रायः बीज के आकार पर निर्भर करती है। मोटे बीज की एक कटाई वाली किस्में जैसे एच.सी. 136, एच.सी. 171, एच.सी. 308 इत्यादि में बीज की मात्रा 20 से 24 किलोग्राम प्रति एकड़ के हिसाब से बिजाई करें। यदि खेत की तैयारी अच्छी प्रकार न हो सके तो छिटकाव विधि से बुआई की जा सकती है जिसके लिए बीज की मात्रा में 15-20 प्रतिशत वृद्धि आवश्यक है। एक कटाई वाली ज्वार की किस्म को लोबिया के साथ 2:1 अनुपात (2 लाईन ज्वार तथा एक लाईन लोबिया) में बीजें तो चारे की गुणवत्ता और स्वादिष्टता दोनों ही बढ़ जाते हैं। अधिक कटाई वाली किस्में/संकर किस्मों के लिए 10-12 किलोग्राम बीज प्रति एकड़ के हिसाब से डालें।

खाद

सिंचित या अधिक वर्षा वाले इलाकों में इस फसल के लिए 32 किलोग्राम नाइट्रोजन व 12 किलोग्राम फास्फारे स प्रति एकड. की आवश्यकता होती है। सही तौर पर 70 किलोग्राम यूरिया और 75 किलोग्राम एस एस पी एक एकड़ में डालना पर्याप्त रहता है। यूरिया की आधी मात्रा (35 किलोग्राम) और एस एस पी की पूरी मात्रा (75 किलोग्राम) बिजाई से पहले डालें तथा यूरिया की बची हुई आधी मात्रा बिजाई के 30-35 दिनों बाद खड़ी फसल में डालें। कम वर्षा वाले व बारानी इलाकों में बिजाई का समय 20 किलोग्राम नाइट्रोजन (45 किलोग्राम यूरिया) प्रति एकड़ बिजाई से पहले डालें। अधिक कटाई देने वाली किस्मों में 20 किलो नाइट्रोजन व 12 किलो फास्फोरस प्रति एकड़ बिजाई से पहले व 12 किलो नाइट्रोजन प्रति एकड़ हर कटाई के बाद सिंचाई उपरान्त डालने से फसल तेजी से बढ़ती है और अधिक पैदावार मिलती है।

सिंचाई

वर्षा ऋतु में बोई गई फसल में आमतौर पर सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती । यदि बरसात का अन्तराल बढ़ जाए तो आवश्यकता के अनुसार सिंचाई करें। अधिक बरसात के कारण पानी इकट्ठा नहीं होने देना चाहिए। मार्च व अप्रैल में बोई गई फसल में पहली सिंचाई बिजाई के 15-20 दिन बाद तथा आगे की सिंचाई 10-15 दिन के अन्तर पर करें। मई-जून में बोई गई फसल में 10-15 दिन के बाद पहली सिंचाई करें तथा बाद में आवश्यकतानुसार करें। अधिक कटाई वाली किस्मों में हर कटाई के बाद सिंचाई अवश्य करें। इससे फुटाव जल्दी व अच्छा होगा।

खरपतवार नियन्त्रण

जवार में खरपतवार की समस्या विशेषतौर पर वर्षाकालीन फसल में अधिक पायी जाती है। सामान्यतः गर्मियों में बोईगई फसल में एक गोड़ाई पहली सिंचाई के बाद बत्तर आने पर करें दूसरी गोड़ाई बरसात में जब

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

खरपतवारों का प्रकोप ज्यादा बढ़ जाए तब करें। इससे खरपतवार नियन्त्रण में रहते हैं और जमीन में नमी भी बनी रहती है। खरीफ में बोई गई फसल में खरपतवार काफी ज्यादा संख्या में पाए जाते हैं। इसके लिए एक निराई गुड़ाई बिजाई के 20-25 दिन बाद करें। या पांच किलोग्राम एट्राजीन (सक्रिय अवयव) 625 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टर की दर से बिजाई के तुरन्त बाद या बिजाई के 24 घंटे के अन्दर छिड़काव करें।

फसल सुरक्षा

अधिक विलम्ब से अथवा समय पूर्व बोई गई फसल में कीड़ों व बीमारियों का प्रकोप अधिक होता है। ज्वार की फसल को गोभछेदक मक्खी शुरू-शुरू में तथा तना छेदक कीड़ा पूरे वृद्धि काल में व छोटी मक्खी सिट्टे निकलने की अवस्था में नुकसान पहुंचाती है। गोभ छेदक मक्खी फसल को मार्च-अप्रैल और जुलाई-सितम्बर में नुकसान पहुंचाती है। इसलिए इससे बचने के लिए फसल को मध्यम मई से जून तक बीजें। गोभ छेदक मक्खी व तना छेदक की रोकथाम के लिए कार्बेरिल (50 ॅच.) 1 कि.ग्रा. को 500 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टर के हिसाब से छिड़काव करें। अगर आवश्यक हो तो दूसरा छिड़काव इसके 10-12 दिन बाद करें। इसका चारा पशुओं को छिड़काव के 21 दिन तक न खिलाएं। चारे की ज्वार पर आमतौर पर एन्थ्राक्नोस, पत्ती का झुलसा एवं लाल धब्बे इत्यादि की बीमारियां लगती हैं जो इसकी गुणवत्ता एवं हरे चारे को कम करती है। ऐसी प्रतिरोधक किस्में जैसे एच.सी. 308, एच.सी. 171 और एच.सी. 260 का प्रयोग करें जिनमें यह रोग नहीं आते क्योंकि चारे की ज्वार में किसी भी प्रकार के रसायन के छिड़काव को बढ़ावा नहीं दिया जाता। भूमि में उपस्थित इन रोगों के तत्वों की रोकथाम के लिए बीज को बिनोमिल अथवा सेरेसन वैट (2-3 ग्राम प्रति किलोग्राम) बीज के हिसाब से बीज उपचार करें।

कटाई और एच.सी.एन. का प्रबन्ध

चारे की अधिक पैदावार व गुणवत्ता के लिए कटाई 50 प्रतिशत सिट्टे निकलने के पश्चात् करें। एच.सी.एन. (धुरिन) ज्वार में एक जहरीला तत्त्व प्रदान करता है अगर इसकी मात्रा 200 पी.पी. एम. से अधिक हो तो यह पशुओं के लिए हानिकारक हो सकता है। 35-40 दिन की फसल में एचसी.ए न. की मात्रा अधिक होती है। लेकिन 40 दिन के बाद इसकी मात्रा घटने लगती है। अतः ज्वार के चारे को 40 दिन से पहले नहीं काटना चाहिए। अगर कटाई 40 दिन में करनी अत्यन्त आवश्यक हो तो कटे हुए चारे को पशुओं को खिलाने से पहले 2-3 घंटे तक खुली हवा में छोड़ दें ताकि एच.सी.एन. की मात्रा कुछ कम हो सके। अधिक कटाई वाली किस्मों में हरे चारे की अधिक पैदावार के लिए पहली कटाई बिजाई के 50 से 55 दिनों के पश्चात् एवं शेष सभी कटाइयां 35-40 दिनों के अन्तराल पर करें। अगर पहली कटाई देर से की जाए तो सूखे चारे में वृद्धि होती है परन्तु हरे चारे की पैदावार व गुण ावत्ता कम हो जाती है। अच्छे फुटाव के लिए फसल को भूमि से 8-10 सें. मी. की ऊँचाई पर से काटें।

बीज का बनाना

दाने वाली फसल के लिए बिजाई 10 जुलाई तक करें। इस समय बोई गई फसल से दाने की पैदावार सबसे ज्यादा मिलती है। जल्दी बोईगई फसल में मिज कीड़े का आक्रमण इतना अधिक होता है कि दाने का रस चूसने से पैदावार काफी घट जाती है। मोटे दाने वाली किस्म के लिए बीज की मात्रा 20-25 किलोग्राम तथा छोटे दाने वाली किस्म के 16-20 किलोग्राम बीज प्रति हैक्टर पर्याप्त है। इसकी बिजाई लाइनों में 45 सैं.मी. की दूरी पर करें। इसके लिए 40 किलोग्राम शुद्ध नाइट्रोजन तथा 30 किलोग्राम शुद्ध फास्फोरस बिजाई से पहले तथा इतनी ही शुद्ध नाइट्रोजन की मात्रा बिजाई के 40 दिन बाद खड़ी फसल में डालें। निराई गोड़ाई

कसौले से या खरपतवारनाशक दवाइयों द्वारा उसी विधि से करें जैसे कि खरीफ में ज्वार की चारे वाली फसल में करते हैं। सिंचाई आवश्यकता के अनुसार करें। फूल आने पर सिंचाई करना बहुत आवश्यक है। कई किस्में पकने तक हरी रहती हैं। इसलिए कटाई के लिए पत्ते सूखने का इन्तजार न करें। जब दाना दबाने से सख्त महसूस होता है उस समय फसल काट लें। अधिक कटाई वाली किस्म एस.एस.जी. 59-3 से बीज बनाना है तो बिजाई मध्य जुलाई में करें और इससे चारे के लिए कोई कटाई न लें। यह फसल अक्तूबर अन्त या नवम्बर के शुरू में पककर तैयार हो जाएगी। परन्तु इससे बीज की पैदावार सिर्फ 2.0-2.5 क्विंटल प्रति हैक्टर ही मिल पायेगी। बीज की अधिक पैदावार लेने के लिए इसकी बिजाई मध्य मार्च-अप्रैल में करें और 3-4 कटाइयां लेने के पश्चात् इसको सर्दियों में रटून छोड़ दें। रटून फसल सर्दी में बढ़कर रुक जाती है इसलिए इनके लाइनों के बीच जई की बिजाई करें और खाद और पानी जई के हिसाब से लगायें। फरवरी के पहले सप्ताह में इस चारे के लिए काटने के बाद लाइनों के बीच में कसौले से नलाई करें या हल चलाकर तैयार करें। अब सुडान घास को बीज बनने के लिए छोड़ दें। सिंचाई 15-20 दिन के अन्तर पर करें। इस मौसम में बीमारी व कीड़ों का आक्रमण बहुत ही कम होता है। रटून वाली फसल में बीज की पैदावार खरीफ की बजाए 2.0-2.5 गुणा (5.6 कि./है.) ज्यादा मिलेगी। यह कटाई के लिए अप्रैल अन्त से मध्य मई तक तैयार हो जाती है। रटून वाली फसल का बीज जयादा शुद्ध और स्वस्थ होता है।

चारे की विभिन्न किस्में/संकर किस्में

किस्म/संकर किस्म	अवधि	पैदावार (कि./है.)	
		दाना	चारा
CSH 1	90-100	3000-3500	7500
CSH 2	115-120	3000-3500	-
CSH 3	150-170	3500-3800	-
CSH 4	110-105	3500-3800	-
CSH 5	100-120	3800-4000	9300
CSH 6	95-100	3376	8100
CSH 9	105-110	4000-4200	9800
CSV 1	95-100	3000-5000	-
CSV 2	105-110	3000-3500	-
CSV 3	105-110	3500-4000	-
CSV 4	105-110	3000-3500	-
CSV 5	110-120	3000-3500	-
CSV 6	115-120	3200-3500	-
CSV 9	110-115	3000-3500	8940
CSV 10	110-115	3000-3500	9010
CSV 11	110-115	3250	9600

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

बैंगन में लगने वाले प्रमुख रोग एवं उनका समेकित प्रबंधन

जैश राज यादव, शिवम सिंह (शोध छात्र)
मनीष कुमार मौर्या (शोध छात्र)
डॉ. एस.के. सिंह सह प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष, पादप रोग विज्ञान विभाग, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक वि.वि. कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र.)
गजराज यादव शोध छात्र, मृदा एवं रसायन विज्ञान विभाग, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र.)

बैंगन एक बहुवर्षीय फसल है। इसकी किस्मों में रंग, आकार एवं आकृति में बहुत विविधता पाई जाती है। इसमें अनेक प्रकार के रोगों का प्रकोप देखा गया है। जिससे इसकी उत्पादकता पर बहुत प्रभाव पड़ता है। बैंगन के प्रमुख रोग निम्न हैं जिनका रोग प्रंबधन अति आवश्यक है।

सर्कोस्पोरा पत्ती धब्बा रोग (**Cercospora Leaf Spot Disease**): यह रोग सर्कोस्पोरा सोलेनी नामक फंफूद से होता है। इस रोग में पत्तियों पर कोणिय से लेकर अनियमित हरिमाहीन धब्बे बनते हैं जो कि बाद में स्लेटी भूरे रंग के हो जाते हैं। धब्बों के बीच में बीजाणु जनन होता है गंभीर रूप से प्रभावित पत्तियाँ जल्दी ही गिर जाती हैं।

रोग प्रंबधन

क्लोरोथलोनिल 75 डब्ल्यूपी 400 ग्राम या कॉपर ओक्सिक्लोराइड़ 400 ग्राम या फिर मेंकोजेब 75 डबल्यूपी 500 ग्राम प्रति 200 लीटर जल की दर से एक एकड़ में छिड़काव करें। रोग की संभावना अधिक होती है वहाँ रोग प्रतिरोधी किस्मों की बुवाई करें।

जीवाणु उकठा रोग

यह रोग स्यूडोमोनास सोलेनीसेरम नामक जीवाणु से होता है। इस रोग में पौधे की पत्तियों का मुरझाना, पीलापन तथा अल्प विकसित हो जाना तथा बाद की अवस्था में सम्पूर्ण पौधा मुरझा जाता है। पौधों के मुरझाने से पहले निचली पत्तियाँ गिर जाती हैं। पौधे का संवहन तंत्र भूरा हो जाता है। रोग के शुरूआती अवस्था में पौधा दोपहर के समय मुरझा जाता है मगर रात में

पुनः सही हो जाता है लेकिन बाद में नष्ट हो जाता है।

रोग प्रंबधन

सरसों कुल की सब्जी जैसे की फूलगोभी के साथ फसल चक्र अपनाएं। रोग ग्रसित पादप एवं पादप भागों को इकट्ठा कर नष्ट कर देना चाहिए। क्लोरोथलोनिल 75 डब्ल्यूपी 2 ग्राम या कसूगामायसिन 5+ कॉपर ओक्सिक्लोराइड + 45 डब्ल्यूपी 1.5 ग्राम प्रति लीटर पानी में मिलाकर स्प्रे करें।

अल्टरनेरिया पत्ती धब्बा रोग

इस रोग पर केन्द्र में वलय युक्त धब्बे बनते हैं जो बाद में बड़े हो जाते हैं। ये धब्बे फलों पर भी दिखायी देते हैं।

रोग प्रंबधन

रोग ग्रसित पौधों को उखाड़कर जला देना चाहिए। एजोक्सोस्ट्रोबिन 23 एससी 1 मिली. या मेटिरम 55 प्रतिशत . पायरोक्लोस्ट्रोबिन 5 डब्ल्यूजी 3 ग्राम प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करना चाहिए।

मोजेक और छोटी पत्ती रोग

यह रोग तम्बाकू मोजेक वीषाणु द्वारा होती है। पत्तियों पर चितकबरापन व अल्पविकसित होना या पत्तियों का विकृत छोटी एवं मोटी होना इस रोग के प्रभावित होने लक्षण है। इस रोग में बैगन के पौधे की ऊपरी नई पत्तियाँ सिकुड़ कर छोटी हो जाती है तथा मुड़ जाती है। इस रोग के कारण पत्तियों का आकार भी बहुत छोटा रह जाता है तथा पत्तियाँ तने से चिपकी हुई लगती है।

रोग प्रंबधन

यह रोग विषाणु से होता है जिसको रसचूसक कीट जैसे लीफ हॉपर (फुदका) और एफीड फैलाते है। अतः एसिटामिप्रीड 20 प्रतिशत एस.पी. की 80 ग्राम मात्रा या थियामेंथोक्साम 25 प्रतिशत डब्ल्यूजी की 100 ग्राम मात्रा या थियामेंथोक्साम 12.6 प्रतिशत+. लैम्ब्डा साइहेलोथ्रिन 9.5% जेडसी मिश्रण की 100 मिली. या डायमेथायट 400 मिली. मात्रा को 200 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव कर दे। यह मात्रा एक एकड़ क्षेत्र के लिए पर्याप्त है। आवश्यकता अनुसार 15 दिनों बाद छिड़काव दवा को बदल कर उपयोग करे या जैविक उपचार के रूप में बवेरिया बेसियाना पाउडर की 250 ग्राम मात्रा भी एकड़ की दर से छिड़काव किया जा सकता है।

फल सड़न रोग

अत्यधिक नमी की वजह से यह रोग बैगन की फसल में अधिक फैलता है। फंगस के कारण फलों पर जलीय सूखे हुये धब्बे दिखाई देतें है। जो बाद में धीरे धीरे दूसरे फलो में भी फैल जाते हैं। प्रभावित फलों की ऊपरी सतह भूरे रंग की हो जाती है जिस पर सफ़ेद रंग के कवक का निर्माण हो जाता है।

रोग प्रंबधन

फसल पर मेंकोजेब 75 प्रतिशत डब्ल्यूपी की 600 ग्राम मात्रा या कासुगामायसिन 5 प्रतिशत . कॉपर आक्सीक्लोराइड 45 प्रतिशत डब्ल्यूपी की 300 ग्राम या हेक्साकोनाज़ोल 5 प्रतिशत एस.सी. की 300 ग्राम मात्रा 200 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ की दर से छिड़काव कर दे। 15-20 दिनों बाद आवश्यकता अनुसार छिड़काव दवा बदल कर करे या जैविक उपचार के रूप में स्यूडोमोनास फ्लोरोसेंस की 250 ग्राम या ट्राइकोडर्मा विरिडी की 500 ग्राम मात्रा को 200 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ की दर से छिड़काव कर दें।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

आर्द्रभूमिः ग्रीनहाउस गैसों के स्रोत या सिंक

गजराज यादव (शोध छात्र)
मृदा एवं रसायन विज्ञान विभाग
मनीष कुमार मौर्या
जैशराज यादव एवं शिवम सिंह
पादप एवं रोग विज्ञान विभाग
नीरज कुमार (सह-प्राध्यापक) मृदा एवं रसायन विज्ञान विभाग, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय कुमारगंज अयोध्या (उ.प्र.)

आर्द्रभूमि स्थलीय और जलीय पारिस्थितिक तंत्र के बीच एक अंतरफलक है। उन्हें अक्सर 'प्रकृति के गुर्दे' कहा जाता है, क्योंकि वे हमारे पर्यावरण को शुद्ध करते हैं। आर्द्रभूमि में, मिट्टी नमी से या तो स्थायी रूप से या जलीय पौधों का समर्थन करने के लिए पर्याप्त अवधि के लिए संतृप्त होती है। यह एक पारिस्थितिकी तंत्र है जिसका गठन, प्रक्रियाएं और विशेषताएं मुख्य रूप से पानी से निर्धारित होती हैं। आर्द्रभूमि एक बहुत ही संवेदनशील पारिस्थितिकी तंत्र है जो पूरी तरह से हाइड्रोलॉजिकल स्थितियों पर निर्भर है। वे पानी के तनाव के साथ-साथ पानी के अधिशेष की स्थिति दोनों से प्रभावित हो सकते हैं। प्रत्येक आर्द्रभूमि प्रकार के लिए एक निश्चित हाइड्रोलॉजिकल स्थिति होती है। स्वस्थ आर्द्रभूमि के लिए जल का अंतर्वाह और बहिर्वाह संतुलित रूप में होना चाहिए। लेकिन आजकल, यह संतुलन खतरे में है, मुख्य रूप से ग्लोबल वार्मिंग के कारण और इस प्रकार, आर्द्रभूमि गंभीर दबाव में है। कभी-कभी, वे भारी वर्षा प्राप्त करते हैं जिसके परिणामस्वरूप बाढ़ आती है, जबकि कभी-कभी वे गंभीर सूखे की स्थिति से पीड़ित होते हैं, किसी भी मामले में उनका क्षरण होता है।

निम्नीकृत आर्द्रभूमि पर्यावरण के लिए गंभीर खतरा पैदा कर सकती है। पारिस्थितिक तंत्र में, रसायनों के परिवहन और परिवर्तन को जैव-भू-रासायनिक चक्रण के रूप में जाना जाता है। आर्द्रभूमियाँ, अपनी विविध जलविज्ञानीय स्थितियों के कारण, इन चक्रों को प्रमुखता से प्रभावित करती हैं। आर्द्रभूमि में एक निश्चित रासायनिक द्रव्यमान संतुलन होता है। वे वातावरण में रसायनों के स्रोत के रूप में कार्य करते हैं, वातावरण से रसायनों के लिए एक सिंक या ÷धारक÷ के रूप में कार्य करते हैं और उन्हें एक रूप से दूसरे रूप में बदल देते हैं। आर्द्रभूमि को आमतौर पर बड़े पैमाने पर कार्बन भंडारण और बायोमास के रूप में जब्त करने के लिए जाना जाता है, हालांकि वे जीएचजी (ग्रीनहाउस गैसों, जैसे CH^4,CO^2,SO^2,$N2^o$, O^3 आदि) का एक प्रमुख स्रोत भी हैं। आर्द्रभूमि की यह दोहरी प्रकृति एक बहुत ही अजीब संपत्ति है और इतनी अच्छी तरह से समझ में नहीं आती है, भले ही यह बहुत स्पष्ट है कि कुछ परिस्थितियों में वही आर्द्रभूमि या तो शुद्ध सिंक या जीएचजी का शुद्ध स्रोत हो सकती है। परिस्थितियाँ आमतौर पर मानवजनित होती हैं, अर्थात् अनुचित आर्द्रभूमि प्रबंधन, आर्द्रभूमि की अज्ञानता आदि, जो उनके क्षरण का कारण बनती हैं। आर्द्रभूमि में पौधों की वृद्धि दर उच्च होती है, इसलिए वे बड़ी मात्रा में कार्बन डाइऑक्साइड (CO^2 पर कब्जा करते हैं। इसके अलावा, उनकी मिट्टी काफी हद तक अवायवीय होती है, इसलिए कार्बन जो मिट्टी में शामिल हो जाता है, बहुत धीरे-धीरे विघटित होता है और सैकड़ों या हजारों वर्षों (कार्बन भंडारण) तक बना रह सकता है। इस प्रकार इन परिस्थितियों में, आर्द्रभूमि को उपयुक्त रूप से जीएचजी सिंक माना जाता है। दो प्रमुख जीएचजी, मीथेन और नाइट्रस ऑक्साइड हैं जो आर्द्रभूमि के प्राकृतिक उत्पाद हैं। आर्द्रभूमि भी मीथेन की एक बड़ी मात्रा का भंडारण करती हैः मीथेन वर्तमान में दूसरा सबसे महत्वपूर्ण मानव जनित जीएचजी है। मीथेन में 100 वर्षों की समयावधि में CO^2 की तुलना में प्रति अणु 25 गुना अधिक ग्लोबलवार्मिंग क्षमता **(GWP)** CH^4 4 उत्पादन की तापमान प्रतिक्रिया श्वसन या प्रकाश संश्लेषण की तुलना में बहुत अधिक है यानी तापमान में वृद्धि के साथ इसका उत्पादन बढ़ता है, इस प्रकार एक सकारात्मक प्रतिक्रिया प्रणाली का गठन होता है। आर्द्रभूमि वह स्थान है जहाँ नाइट्रीकरण की प्रक्रिया द्वारा अतिरिक्त नाइट्रोजन स्थिर हो जाती है। इस अतिरिक्त नाइट्रोजन का स्रोत खेत से उर्वरक, पौधे बायोमास नाइट्रोजन (प्रोटीन आदि) या वातावरण से प्रत्यक्ष नवजात नाइट्रोजन हो सकता है। नाइट्रोजन स्थिरीकरण को आर्द्रभूमि के एरोबिक क्षेत्र में संसाधित किया जाता है, लेकिन साथ ही, अवायवीय क्षेत्र में, एक पूरक प्रक्रिया भी होती है, जिसे डेनिट्रिफिकेशन के रूप में जाना जाता है जहां नाइट्राइट नाइट्रस ऑक्साइड में बदल जाता है। यह नाइट्रस ऑक्साइड जब वायुमंडल में पहुंचता है तो जीएचजी जैसा व्यवहार करने लगता है। नाइट्रस ऑक्साइड का **GWP** प्रति अणु 100 वर्ष की समयावधि में CO^2 से 298 गुना अधिक है। इस प्रकार, जीएचजी सिंक और स्रोत के संदर्भ में आर्द्रभूमि की दोहरी प्रकृति स्पष्ट है। लेकिन, यह अनुमान नहीं लगाया जाना चाहिए कि आर्द्रभूमि ग्लोबल वार्मिंग के अपराधी हैं। मुख्य अपराधी मनुष्य हैं। आर्द्रभूमि में प्राकृतिक संतुलन ऐसा है कि शुद्ध जीएचजी उत्पादन और विनाश लगभग संतुलित है। समस्याएँ तब उत्पन्न होती हैं जब यह महत्वपूर्ण संतुलन गड़बड़ा जाता है और आर्द्रभूमि का अस्तित्व खतरे में पड़ जाता है। आर्द्रभूमि के अस्तित्व को खतरे में डालने वाले कई कारक हैं। कुछ प्रमुख जो आमतौर पर मानव कार्यों के कारण होते हैं, वे हैं कृषि, अतिक्रमण, खनन, डंपिंग, ग्लोबल वार्मिंग, बांध निर्माण, जल निकासी और झरनों का विकास आदि।

मानवजनित प्रभाव जिनकी पहचान अंतर्राष्ट्रीय जलपक्षी और आर्द्रभूमि अनुसंधान ब्यूरो **(IWRB)** द्वारा की जाती है। आर्द्रभूमि क्षेत्रों का नुकसान, जल व्यवस्था में परिवर्तन, पानी की गुणवत्ता में परिवर्तन, आर्द्रभूमि उत्पादों का सतत दोहन और नई प्रजातियों की शुरूआत। हम आर्द्रभूमि पर कब्जा कर रहे हैं, उन्हें भर रहे हैं, उन पर टाउनशिप और कॉलोनियां बना रहे हैं। हम इस अत्यंत महत्वपूर्ण और महत्वपूर्ण पारिस्थितिकी तंत्र को हर तरह से परेशान कर रहे हैं। उनके वजूद को खतरे में डालकर अनजाने में हम अपने वजूद को ही खतरे में डाल रहे हैं। ऐसा लगता है।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

जैविक खेती के लिए जीवामृत को बढ़ावा

शुभम शर्मा (एम.एससी.) फल विज्ञान विभाग

डॉ. डी. राम (प्राध्यापक) फल विज्ञान विभाग

जसवंत प्रजापति (एम.एससी.) सब्जी विज्ञान विभाग

विजलेश कुमार, अभिषेक सोनकर
(एम.एससी.) फल विज्ञान विभाग

अजेन्द्र कुमार शोध विद्यार्थी, फल विज्ञान विभाग, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि और प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र.)

पारिस्थितिकी तंत्र को बनाए रखने के लिए खेती के प्राकृतिक साधनों को अपनाने, उत्पादन की लागत को कम करने और किसानों की आय को दोगुना करने के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए बुनियादी बातों पर लौटने के प्रयास में, शून्य बजट प्राकृतिक खेती (जेडबीएनएफ) के लिए ज़रूरत को महसूस किया गया है। भारत के बजट 2019-20 में इस अवधारणा को शामिल करना। ब्रह्मस्त्र के चार स्तंभों में से पालेकर द्वारा दिया गया जीवामृत, गाय के गोबर, गोमूत्र, दाल के आटे, गुड़ और मिट्टी से तैयार किया गया, जो विभिन्न पौधों की बीमारियों से लड़ने के लिए लाभकारी साबित हुआ है। किसानों द्वारा अपने खेतों में उपयोग किए जाने वाले जैविक फॉर्मूलेशन (जीवामृत, बीजामृत, पंचगव्य आदि) मानकीकृत नहीं हैं। अधिकतर वे इस अर्थ में कच्चे होते हैं कि इन योगों (गाय का गोबर, गोमूत्र, छाछ, दाल का आटा आदि) के घटकों का अनुपात निश्चित नहीं है। परिणामस्वरूप इन योगों का उपयोग किसानों द्वारा उनके घटकों की उचित मात्रा को जाने बिना किया जाता है, जिससे मानकीकृत कार्बनिक योगों के उपयोग की तुलना में कम लाभ प्राप्त होता है, जिनके घटकों की मात्रा परिभाषित की जाती है। जीवामृत एक तरल जैविक खाद है जो प्राकृतिक कार्बन और बायोमास का एक उत्कृष्ट स्रोत है जिसमें फसलों के लिए आवश्यक मुख्यऔर सूक्ष्म पोषक तत्व होते हैं। खाद के अन्य रूपों की तुलना में, जीवामृत अधिक प्रभावी साबित हुआ है और इसका उपयोग अन्य खादों के साथ किया जा सकता है। जैविक तरल उर्वरक का उत्पाद किण्वन प्रक्रिया के लिए होता है, जो कुशल जीवित मिट्टी सूक्ष्मजीव का गठन करता है जो पौधे की वृद्धि, उत्पादकता में सुधार करता है। और पर्याप्त मात्रा में पोषक तत्वों की आपूर्ति करते हैं। ऐसे उर्वरक लागत प्रभावी और पर्यावरण के अनुकूल जैव-इनोक्युलेंट हैं जिनमें स्थायी रूप से कृषि उत्पादन को बढ़ाने की काफी संभावनाएं हैं। यह मिट्टी में रासायनिक उर्वरकों के अत्यधिक उपयोग को कम कर सकता है जिससे मिट्टी की उर्वरता कम हो जाती है। इसलिए जीवामृत रासायनिक खाद का सर्वोत्तम विकल्प है। जीवामृत पूरी तरह से जैविक है। इसलिए, इसका उपयोग जैविक खेती में किया जा सकता है, सूक्ष्म जीव के एक समृद्ध स्रोत के रूप में कार्य करता है जो नाइट्रोजन को ठीक करता है और फास्फोरस को घोलता है.

जीवामृत बनाने का प्रोटोकॉल- 200 लीटर पानी बैरल में लें। ज़ 10 किलो स्थानीय गोबर (भारतीय नस्ल) और 5-10 लीटर गोमूत्र (गोमूत्र) लेकर पानी में मिला लें। ज़ बैरल में खेत की कुंवारी मिट्टी से 2 किलो गुड़ (गुड़), 2 किलो दाल का आटा और मुट्ठी भर मिट्टी डालें। ज़ फिर घोल को अच्छी तरह से हिलाएं और इसे 48 घंटे के लिए छाया में रख दें। मिश्रण को कम से कम 10 मिनट के लिए दो बार हिलाना चाहिए। यह किण्वित हो जाता है। 48 घंटे के बाद जीवामृत उपयोग के लिए तैयार है। इसे 2-3 दिनों तक इस्तेमाल किया जा सकता है।

जीवामृत के अनुप्रयोग खुराक पैटर्न तरल रूप में

सिंचाई के समय पानी में 5-10 प्रतिशत जीवामृत का छिड़काव करें। एक एकड़ के लिए 100-200 लीटर जीवामृत की जरूरत होती है। इसके अलावा, 7-10 दिनों में एक बार इस्तेमाल करने पर यह फायदेमंद होता है।

जीवामृत के लाभकारी प्रभाव

मृदा स्वास्थ्य पर जीवामृत सूक्ष्मजीवी आबादी का एक समृद्ध स्रोत है। तैयारी के बाद 8वें से 13वें दिन तक अधिकतम सूक्ष्मजीवी आबादी पाई गई। जीवामृत स्थानीय रूप से उपलब्ध सबस्ट्रेट्स जैसे खाद, बायोगैस स्लरी इत्यादि में नाइट्रोजन फिक्सिंग बैक्टीरिया के विकास को भी बढ़ाता है। कई वैज्ञानिकों ने अध्ययन किया और पाया कि 11 वें दिन नाइट्रोजन फिक्सिंग बैक्टीरिया की संख्या में वृद्धि हुई है जिसके परिणामस्वरूप 12 वें दिन से 12 वें दिन तक कमी आई है। 20वां दिन। जीवामृत की गुणवत्ता मुख्य रूप से गोमूत्र की नस्ल, दूध और दालों के प्रकार पर निर्भर करती है। केले के छिलकों को जोड़ने से जीवामृत के पोषक मूल्य में वृद्धि हुई , जिससे विभिन्न लाभकारी सूक्ष्मजीवों जैसे नाइट्रोजन फिक्सिंग और फॉस्फेट घुलनशील बैक्टीरिया की कॉलोनी की संख्या को बढ़ाने में मदद मिली। सात महीने पुराने जीवामृत में व्यवहार्य रोगाणुओं की महत्वपूर्ण वृद्धि इसे सूक्ष्मजीवों के संघ के रूप में उपयोग करने के महत्व को साबित करेगी, बेसिलस एसपीपी की बेशुमार दर की भी सूचना दी। तरल निर्माण की उच्च माइक्रोबियल आबादी ने उन्हें मिट्टी की उर्वरता बनाए रखने और भारी जैविक खाद के तेजी से अपघटन द्वारा पोषक तत्वों की उपलब्धता को बढ़ाने के लिए एक शक्तिशाली स्रोत बना दिया। प्रयोगशाला अध्ययनों में यह पाया गया कि फॉस्फेट उच्च टाइट्रे मूल्य में बैक्टीरिया को घुलनशील करता है।

जीवामृत की स्थायित्व- जीवामृत को छाया में रखना चाहिए और ढक कर रखना चाहिए। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि मिश्रण में कोई कीड़ा न गिरे या उसमें अंडे न दें। इससे बचने के लिए कंटेनर को हमेशा तार की जाली या प्लास्टिक कवर से ढकना चाहिए। इसकी गुणवत्ता पर कोई प्रभाव डाले बिना इसे 60 से 75 दिनों तक संग्रहीत किया जा सकता है, बशर्ते कि इसे छाया में रखा जाए और दिन में दो बार हिलाया जाए। घोल समय के साथ गाढ़ा हो जाता है, इसलिए पानी को उचित रूप से मिलाना चाहिए।

जीवामृत का लाभ- ज़ मिट्टी में माइक्रोबियल गिनती और अनुकूल बैक्टीरिया को बढ़ाने के लिए एक एजेंट के रूप में कार्य करता है। ज़ मिट्टी के पीएच में सुधार करता है। ज़ इसे 4-5 दिनों के भीतर बनाया जा सकता है ताकि इसे प्रभावी ढंग से और बार-बार इस्तेमाल किया जा सके। ज़ सभी फसलों के लिए उपयुक्त और उपज में वृद्धि करता है। ज़ रासायनिक उर्वरकों की लागत कम करता है। ज़ यह आसानी से सिंचाई के पानी के साथ फर्टिगेशन के रूप में प्रयोग किया जाता है। जीवामृत के नुकसान- यह जानवरों के अवशेषों से तैयार किया जाता है और स्वाभाविक रूप से इसमें बहुत दुर्गंध आती है। ज़ यह तरल अवस्था में है इसलिए प्रसारण के लिए उपयोग नहीं किया जाता है। ज़ तरल का शेल्फ जीवन 10-12 दिनों से अधिक नहीं होता है जिसके बाद यह शक्तिशाली नहीं होता है।

निष्कर्ष

जीवामृत एक कम लागत वाली तरल जैविक खाद है जो प्राकृतिक कार्बन का एक उत्कृष्ट स्रोत है, लाभकारी सूक्ष्म जीव जैसे नाइट्रोजन फिक्सिंग और फॉस्फेट घुलनशील बैक्टीरिया, मुख्य और सूक्ष्म पोषक तत्व जो तैयारी के 8 वें और 12 वें दिनों के बीच कुशलता से उपयोग किए जाते हैं। इस प्रकार, जीवामृत का उपयोग रासायनिक उर्वरक के बजाय पोषक तत्वों का सबसे अच्छा वैकल्पिक जैविक स्रोत है और मिट्टी की उर्वरता की स्थिति में सुधार करने और स्थायी फसल उत्पादकता, गुणवत्ता, लाभप्रदता, पोषक तत्व उपयोग दक्षता और संसाधनों के उपयोग दक्षता को बढ़ाने के लिए बेहतर है।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

नियाज अहमद, कु. कोमल पादप आणविक जीव विज्ञान एवं आनुवांशिक इंजीनियरिंग विभाग, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी वि.वि. कुमारगंज, अयोध्या (उ. प्र.)

हिबा अख्तर चन्द्रभानु गुप्त कृषि महाविद्यालय, बी. के. टी., लखनऊ (उ.प्र.)

नदीम खान, मोहम्मद सहबाज
मुजफ्फर अली खान
कृषि विज्ञान विभाग, इंटीग्रल वि.वि., लखनऊ (उ.प्र.)

अमरुद की खेती

उत्पादन और क्षेत्रफल की दृष्टी से अमरुद भारत का चौथा महत्वपूर्ण फल है। यह विटामिन सी तथा कैल्सियम का एक अच्छा स्त्रोत है। इसका उपयोग जेली बनाने में किया जाता है। सभी प्रकार की मृदा में वृध्दि कर पाने के कारण इसका महत्व अधिक हो जाता है जैसे क्षारिय मृदा, अल्प जल निकास, बिना खाद तथा सिंचाई इत्यादी।

महत्वपूर्ण किस्में

इलाहाबाद सफेदा एक प्रख्यात किस्म है, इसका आकार गोल तथा फल मुलायम होने के साथ गुदा सफेद एवं स्वादिष्ट होता है। चित्तिदार इलाहाबादी सफेदा की तरह ही होता है परन्तु फल के उपरी सतह पर गुलाबी लाल रंग का बहुत छोटा-छोटा धब्बा होता है। भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बंगलौर से चयन विधि द्वारा अर्का मृदुला किस्म को इलाहाबाद सफेदा से ही विकसित किया गया है, इसका पौधा छोटा तथा बहुत कम मात्रा में अत्यधिक कोमल बीज पाया जाता है, इस किस्म में **T.S.S.** अत्यधिक पाया जाता है। ललित नामक किस्म, केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी अनुसंधान संस्थान, लखनऊ से चयन विधि द्वारा व्यवसायिक उद्देश्य से विकसित किया गया है। यह जाफरानी पीले रंग के साथ लाल रंग के भी होते है, मध्यम आकार के (लगभग 185 ग्राम वजन) के होते है। इसका उत्पादन इलाहाबाद सफेदा के मुकाबले 24 प्रतिशत अधिक है। पंत प्रभात नामक किस्म को पंतनगर वि. वि. से चयन विधि द्वारा विकसित किया गया है। इसके पौधे सीधे तथा अत्यधिक उत्पादन (100-125 किग्रा प्रति पेड़) पाप्त किया जाता है। इसका फल गोलाकार, मध्यम, कोमल तथा हल्का पीला रंग का होता है। संकर किस्में जैसे अर्का अमूल्य (सीडलेस × इलाहाबाद सफेदा) को भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बंगलौर से विकसित किया गया है। इनके पेड़ बड़े आकार में तथा अधिक उत्पादन वाले होते है। थोड़े से संख्या में कोमल बीज होते है, सफेद तथा मीठे गुदे होते है। सफेद जाम (इलाहाबाद सफेदा × कोहीर) को फल अनुसंधान केन्द्र, संगारेड्डी से विकसित किया गया है। इसका उत्पादन 80-90 किग्रा प्रति पेड़ पाया जाता है। कोहीर सफेदा (कोहीर × इलाहाबाद सफेदा) को भी फल अनुसंधान केन्द्र, संगारेड्डी से विकसित किया गया है। इसका उत्पादन 90-100 किग्रा प्रति पेड़ पाया जाता है। इसका फल बड़े आकार में तथा कठोर बीज वाले होते है।

प्रजनन

साधारणतः अमरुद को बीज द्वारा प्रजनित किया जाता है। इसके अलावा कलम विधि तथा परत (लेयरिंग) द्वारा भी प्रजनित किया जाता है। जड़ की अच्छी बढवार के लिए इंडोल ब्यूटॉरिक एसिड का 5000 पी.पी.एम की दर से लेनोलिन लेई के रुप में किया जाता है। साधारणतः अमरुद को 6 मी. × 6 मी. अथवा 5 मी.× 5 मी. पर वर्गाकार बुवाई करने पर 278 से 400 पौधे प्रति हैक्टेयर आते है। बौना पौधा (ड्वार्फींग रुटस्टाक) एनियोप्लॉयड 82, को पूसा सृजन के नाम से भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, दिल्ली से सघन बुवाई (3 मी. × 3 मी.) के लिए विकसित किया गया है। गोविन्द बल्लव पंत कृषि एवं प्रौ. वि. वि. की सुझाव के अनुसार वर्तमानकालिक अवधि में विकसित पेड़ के ड़ भाग को काट-छाँट कर निकाल देना चाहिए तथा केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी अनुसंधान संस्थान, लखनऊ के सुझाव के अनसार शिर्षक शाखाओं के 50 प्रतिशत हिस्से को मई माह तक काटकर निकाल देने से उत्पादन में वृध्दि हो जाता है। बसन्त ऋतु में आया फूल बरसात में फलता है तथा बरसात में आया फूल सर्दीयों के मौसम में फलता है। उत्तर प्रदेश में जाड़े की फल की गुणवत्ता अच्छी होती है तथा सफेद मख्खी के आक्रमण से बचाव भी रहता है। फलने वाले पेड़ को 300-400 ग्रास नत्रजन, 250-350 ग्राम फॉसफोरस एवं पोटैशियम के साथ 30-40 किग्रा गोबर की सडी खाद प्रति वर्ष देना चाहिए।

रोग तथा कीट प्रबन्धन

फल मख्खी

यह कीट बरसात के मौसम में फसल को नुकसान पहुँचाते है। ये फल के छिलके के अंदर अंडे देते है तथा उस हिस्से को नरम बना देते है, फिर फल में सड़न उत्पन्न हो जाता है और फल बाजार में बिकने वाला नहीं रहता है। इससे बचाव हेतु मीथाइल इयूजिनॉल ट्रेप को एक है. में 10-15 स्थानो पर लगाना काफी प्रभावित होता है। मख्खी लगे फल को सम्पूर्ण तरीके तोड़कर मिट्टी में गहराई पर दफना देना चाहिए। बरसात के मौसम में कई बार मिट्टी को जुताई कर देना चाहिए जिससे मक्खी से बचाव हो सके।

तना छेदक कीट

यह कीट तना में जगह-जगह पर छेद कर लकडी को खाते जाते है तथा अपने मल मूत्र से छेद के बाहर रेशम की तरह जाल बुन देते है। इससे बचाव हेतु छेद को मोनोक्रोटोफॉस 0.5त्न या क्लोरोपॉयरीफॉस 0.5त्न से भर दिया जाता है।

मैंगो मिली बग

यह कीट सर्दी के मौसम में लगते है, तथा पत्तियों एवं तने से रस चूसते है तथा शहदनुमा मल मूत्र त्याग कर देते है जिसके कारण सूती मोल्ड नामक कवक का आक्रमण हो जाता है। इससे बचाव हेतु तने पर अल्काथीन का लेप लगाना चाहिए। क्लोरोपायरिफॉस धूल 1.5त्न का 250 ग्राम प्रति पेड़ की दर से छिडकाव करना चाहिए।

अमरुद का सड़न रोग

यह अमरुद का भयानक रोग है, इसको सर्वप्रथम इलाहाबाद के बक्करपुर नामक स्थान से पाया गया। यह फ्यूजेरियम नामक कवक के कारण होता है। इस रोग के कारण पौधे शिघ्र ही पूर्ण रुप से सूख कर मर जाते है तथा उखाड़ कर फेकने के अलावा कोई उपाय नहीं बचता है। इससे बचाव हेतु मिट्टी में ब्रेसिकोल मिलाना चाहिए, तथा बाविस्टीन 0.1 त्न का छिडकाव करना चाहिए।

एन्थ्रक्नोज रोग

इससे बचाव हेतु 3:3:50 ब्रडिएक्स मिक्सचर या कॉपर ऑक्सीक्लोराईड 0.3% का एक सप्ताह के अंतराल पर छिडकाव करे। हाल में ही एक नया रोग पाया गया है, जिसके कारण अमरुद का फल काला पड़ जाता है फिर पत्तियों, टहनियों से होते हुए जडो तक पहुँच जाता है तथा पौधा सम्पूर्ण रुप से मर जाता है। इससे बचाव हेतु कॉपर ऑक्सीक्लोराड को अलसी के तेल में मिलाकर धब्बो पर लगाना चाहिए।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

शिवम सिंह, जैश राज यादव (शोध छात्र)

डॉ. राम सुमन मिश्रा (सहायक प्राध्यापक)

मनीष कुमार मौर्या गेस्ट फैकल्टी, पादप रोग विज्ञान विभाग, आचार्य नरेन्द्रदेव कृषि एवं प्रौद्योगिक वि.वि., कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र.)

कद्दूवर्गीय फसलों के मुख्य रोग एवं उनके रोकथाम

भारत में कद्दू वर्गीय फसलों का प्रमुख योगदान है। इस वर्ग में मुख्यतः तरबूज, खीरा, ककड़ी, एवं पेठा आदि फसलें आती हैं। ये फसलें आमतौर पर जमीन व मंच बनाकर फैलने वाली बेलें होती है। इन सभी फसलों की बुवाई अधिकांशतः ग्रीष्म ऋतु में की जाती है। इन फसलों पर मृदूमिल फफूँद, चूर्णी फफूँद, बुकनी रोग, अंगमारी चकत्तेदार अथवा रूक्ष रोग एवं मुरझान रोग मुख्य रूप से आक्रमण करते हैं।

मृदुरोमिल फफूँद रोग: भारत में यह रोग मुख्यतः उन सभी स्थानों पर पाया जाता है जहां पर कद्दू वर्ग के फसलों की खेती अधिक की जाती है इस रोग के द्वारा फसल को अधिक हानि नहीं होती है।

रोग लक्षण

इस रोग के लक्षण उस समय ज्यादा दिखाई देते है, जब पौधों में चैथी-पाँचवी पत्ती निकलती रहती है। रोग का प्रभाव पत्तियों पर अधिक दिखाई देता है। पत्तियों पर रोग के कारण पीले-पीले धब्बे बनते है जो बाद में कत्थई रंग के हो जाते हैं। पत्तियों में जिस स्थान पर यह धब्बे बनते हैं वहां पत्ती की निचली सतह पर फुज्जीदर, श्वेत तथा नीलारूण रंग की मृदुरोमिल वृद्धि से ढ़की रहती है। इस रोग का फैलाव अधिक नमी होने पर अच्छी प्रकार से दिखाई देती है। यह वृद्धि वास्तव में फफूंद के बीजाणुधानीघर की होती है, जिसके सिरे पर बीजाणु धानियाँ लगी रहती हैं। रात में ओस अधिक पड़ती है तो बीजाणु धानियाँ उतनी ही अधिक बनती हैं। रोग के कारण पत्तियाँ सिकुड़कर ऐंठ जाती हैं और अधिक प्रकोप होने के कारण पत्तियाँ सूखकरं गिर जाती है। रोग के कारण फलों का बाजार मूल्य व स्वाद दोनों पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

रोग नियंत्रण

- रोग ग्रसित पौधों को उखाड़कर गहरी मिट्टी मे दबा या जला देना चाहिए। ■ फसल चक्र का प्रयोग करना चाहिए। ■ 25 किग्रा. प्रति हे. की दर से गन्धक के चूर्ण का प्रयोग लाभकारी होता है। ■ रोग प्रतिरोधी किस्में उगानी चाहिए जैसे-
- **कद्दू:** अर्का चन्दन, पूसा हाइब्रिड-1
- **चप्पन कद्दू:** पंजाब चप्पन कद्दू-1
- **लौकी:** पूसा हाइब्रिड-3, पूसा समर प्रोलिफिक राउंड
- **करेला:** बी.एल. 240, बी.टी.एच. 7, बी.टी.एच. 165, फूले ग्रीन
- **तोरई:** आई.आई.एच.आर. 8
- **तरबूज:** अर्का मनिक
- **खरबूज:** पंजाब रसीला, पूसा मधुरस

चूर्णी फफूंद अथवा बुकनी रोग: मुख्यतः यह रोग विश्व के उन सभी भागों में पाया जाता है, जहां कुकुरबिट्स की खेती होती है। ज्यादातर यह रोग खीरा, तरबूज व खरबूजे की फसल को अधिक हानि पहुँचाता है।

रोग लक्षण: चूर्ण फफूंदी रोग के लक्षण शुरूआत में पत्तियों पर दिखाई देते हैं। पत्तियों की ऊपरी सतह पर सफेद चूर्णी धब्बे बनते हैं। रोग की अधिक तीव्रता होने पर चूर्ण धब्बे पत्तियों के निचले सिरे पर भी दिखाई देने लगते हैं। परजीवी के कवकजाल और कोनिडियम की वृद्धि में साथ-साथ यह धब्बे भी बढ़ जाते हैं। मौसम के अंत में इन धब्बों के बीच में काले रंग की बिंदियां दिखाई पड़ती है जो कि इसकी लैंगिक अवस्था है परन्तु यह अवस्था बहुत पाई जाती है। संक्रमित पत्तियों का क्लोरोफिल नष्ट हो जाता है। जिससे पौधों का पूर्ण विकास नहीं पाता और अधिकतम प्रकोप होने पर फल का आकार भी छोटा होने लगता है। रोग का कम प्रभाव तने पर भी देखा गया है। रोगी पौधों में वाष्पोत्सर्जन एवं श्वसन क्रियाएं बढ़ जाती हैं तथा प्रकाश संश्लेषण की क्रिया धीमी पड़ जाती है।

रोग नियंत्रण

- भूमि में पड़े फसल अवशेषों को इकट्ठा कर मिट्टी में दबा देना या जला देना चाहिए। ■ रोग की रोकथाम के लिए 20-25 किग्रा. प्रति हे. की दर से गंधक (सल्फर) का चूर्ण प्रयोग करना चाहिए। रोग शुरू होते ही इसका भुरकाव लाभकारी सिद्ध हुआ है। 2-3 बार 15 से 20 दिन के अन्तराल पर भुरकाव करना लाभकारी होता है। ■ रोग प्रतिरोधी किस्मों का प्रयोग करना चाहिए।

अंगमारी या झुलसा रोग: इस रोग का प्रकोप आजकल कुकुरबिट्स उगाने वाले सभी क्षेत्रों में पाया जाता है। इस रोग का अध्ययन सर्वप्रथम खण्डेलवाल एवं प्रसाद ने सन् 1968 में भारत में किया। यह रोग फसल की उपज पर बहुत बुरा प्रभाव डालता है। जिससे इसका बाजार मूल्य किसानों को उचित नहीं मिल पाता है।

रोग लक्षण: यह रोग अल्टरनेरिया क्यूक्यूमेराइना नामक फफूंद से होता है। प्रारंभ में इस रोग के लक्षण पौधों की पत्तियों पर छोटे बिखरे हुए भूरे व काले धब्बों के रूप में फसल बोने के लगभग 3-4 सप्ताह बाद दिखाई देते हैं। अधिकांश धब्बे धीरे-धीरे कुछ कम अथवा पूर्णतया गोल हो जाते हैं। धब्बे टार्गेट बोर्ड की तरह दिखाई देते हैं। धब्बों के आसपास के स्थान पर क्लोरोफिल धीरे-धीरे नष्ट होने लगता है और जिससे पत्तियाँ पीली पड़ जाती है और वही धब्बे अधिक प्रकोप होन पर रोगी पत्तियों को झुलसा कर सुखा देती है बाद में यह पत्तियाँ सूख कर गिर जाती है।

रोकथाम

- पौधों के मलबे आदि को इकट्ठा कर जला देना चाहिए।
- रोग प्रतिरोधी किस्मों को प्रयोग में लाना चाहिए।
- बुवाई से पूर्व बीजों को कैप्टॉन 3 ग्रा0 प्रति किलो बीज की दर से उपचारित करना चाहिए।
- रोग की शुरूआत होते ही बविस्टीन व नैटिवो की 0.1 प्रतिशत की मात्रा से छिड़काव 2 से 3 बार 15 दिन के अन्तराल पर छिड़काव करना अधिक लाभकरी होता है।

चकत्तेदार अथवा रूस रोग

रोग लक्षण: यह रोग कोलेटोट्राइकम लेजीनेरियम नामक फफूंद से होता है। इस रोग का प्रभाव पत्तियों एवं फलों पर दिखाई देता है। रोग के फलस्वरूप पत्तियों एवं फलों पर काले रंग के चकत्ते पड़ जाते है। इन चकत्तों के बीच का भाग सूखकर झड़ जाता है। चकत्ते 1-2 मिमी0 से 20 मिमी0 तक के होते हैं। इससे प्रभावित फल का आकार खराब हो जाता है जिसके कारण बाजार में उचित मुल्य नहीं मिलता है।

रोकथाम

- इस रोग के लगने से पहले 0.2 प्रतिशत डायथेन व डाइफोलाटॉन व बविसटीन के (600 ग्रा0 प्रति 30 लीटर प्रति एकड़) घोल का छिड़काव करना उपयोगी सिद्ध हुआ है। जब इसका प्रकोप बहुत अधिक हो तो 15 दिन के अंतर में तीन-चार बार छिड़काव करना चाहिए।
- पौधों के मलबे आदि को इकट्ठा कर जला देना या मिट्टी खोद कर दबा देना चाहिए। ■ रोग प्रतिरोधी किस्मों का प्रयोग करना चाहिए। यह रोग पतले मुलायम छिलके वाले किस्मों में अधिक लगता है। ■ उचित जल निकास की व्यवस्था होनी चाहिएं।

मुरझान: भारत में कुकुरबिट्स उगाए जाने वाले सभी क्षेत्रों में यह हानिकारक रोग पाया जाता है।

रोग के लक्षण: यह रोग फ्यूजेरियम ऑक्सीस्पोरम नामक फफूंद से होता है। इस रोग के लक्षण बुवाई के तीन से चार सप्ताह बाद दिखाई देने लगते है। प्रारंभ में पौधों की पत्तियाँ हल्की पीली होने लगती है और बाद में मुरझा कर भूमि पर गिर जाती है। खेत में यह रोग छोटे-छोटे समूहों में दिखाई देते या पाए जाते हैं। अधिक प्रकोप होने पर रोगी पौधे पूर्ण रूप से सूख कर मर जातें हैं।

रोकथाम

- रोगी पौधों को रोगमुक्त करना कठिन है अथवा पौधों में लग जाने पर उन्हें तुरंत उखाड़ कर फेंक देना चाहिए जिससे की उस पौधे से दूसरा पौधा संक्रमित न होने पाएं।
- रोग प्रतिरोधी किस्मों का प्रयोग करना चाहिए। ■ बीज को बेनलेट 2 ग्रा./किलो की दर से उपचार करें या गर्म पानी में 52 डिग्री सेंटीग्रेड पर 30 मिनट तक उपचारित करें।
- जैविक नियंत्रण हेतु बीज को ट्राइकोडर्मा से 4 ग्रा./किग्रा. की दर से उपचारित करना लाभकारी होता है।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

ज्योति, मोहम्मद सलमान, प्रकृति चौहान
बीज विज्ञान, आचर्य नरेंद्र देव यूनिवर्सिटी ऑफ एग्रीकल्चर एंड टेक्नोलॉजी कुमारगंज अयोध्या (उ.प्र.)

कैसे करें खीरे की खेती

खीरे का वानस्पतिक नाम कुकुमिस स्टीव्स हैद्व भारत को खीरे का जन्म स्थान माना जाता है, परन्तु खीरे को उत्तरी एवं दक्षिणी मैदानो पर भी उगाया जाता है, खीरे का प्रयोग प्रतिदिन करने से कब्ज़, पीलिया, और अपच **(indigestion)** जैसी ख़तरनाक बीमारियों से बचा जा सकता है, खीरे का उपयोग सौंदर्य सामग्री में भी किया जाता है। इस पौधे का आकार बड़ा, पत्ते तीकोनिये और फूल पीले रंग के होते है . खीरे मोलिब्डेनम और विटामिन का अच्छा स्रोत होता है भारत में सर्वाधिक खीरे की खेती राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, दिल्ली, बिहार, पश्चिमी बंगाल, मध्यप्रदेश, तमिलनाडु, उत्तरपूर्वी राज्यों में की जाती है।

जलवायु व तापमान: खीरे की फ़सल को तैयार होने में 60-80 दिन का समय लगता है। यह फ़सल पाले को सहन नही कर सकती है। अधिक वर्षा व नमी रहने से कीट व रोगों का ख़तरा बढ़ जाता है। खीरे की अच्छी फसल के लिए प्रकाश व तापमान का होना आवश्यक है।

भूमि का चुनाव: खीरे की खेती के लिए दोमट व रेतीली मिट्टी में उगाया जा सकता है ।दोमट व रेतीली मिट्टी में पानी का निकास बहेतर प्रकार से होता है इसलिए ये मिटटी खीरे के उपज के लिए अच्छी मानी जाती है। अगेती फ़सल के लिए हल्की मृदा जो जल्दी गरम हो जाती है,अच्छी रहती है। नदियों के पास की भूमि इसकी फ़सल के लिए मानी जाती है।

किस्मों का चुनाव

क़िस्म	विवरण	उपज
शीतल	नव विकसित क़िस्म	7-10 टन/हे.
कल्याणपुर ग्रीन	अधिक उपज वाली क़िस्म	10-15 टन/हे.
हिमांगनी	लेटेस्ट क़िस्म,अधिक उपज वाली	10-12 टन/हे.
खीरा-90	पर्वतीय क्षेत्र के लिए उत्तम	6-8 टन/हे.
खीरा-75	पर्वतीय क्षेत्र के लिए उत्तम	6-8 टन/हे.
प्रिया	संकर क़िस्म,अधिक उपज वाली	8-12 टन/हे.
पूसा संयोग	संकर क़िस्म, कुरकुरा गूदे वाली	200 क्विं./हे.
स्वर्ण शीतल	फल मध्यम ठोस,चूर्णी फफूंदीरोधी	250-300 क्विं.
स्वर्ण पूर्णा	फल मध्यम ठोस,चूर्णी फफूंदीरोधी	250-300 क्विं.
पूसा उदय	फल हरे चिकने	10-12 टन/हे.
स्ट्रेट 8	अगेती क़िस्म,25-30 सेमी लम्बे फल	4-6 टन/हे.
पोईसेट	20-25 सेमी. लम्बे फल	8-10 टन/हे.
जापानीज लौंग ग्रीन	गूदा हल्का हरा, कुरकुरा,	4-6 टन/हे.

अच्छी उपज हेतु भूमि की तैयारी: खीरे की खेती के लिए प्रथम जुताई मिट्टी पलटने वाले हल तथा 2 से 3 बार कलटिवेटर, (हर जुताई के बाद पाटा) से करे जिससे मिट्टी अच्छी प्रकार से भुरभुरी हो जाये । मिटटी में बुवाई से पहले गाये के गोबर की खाद का प्रयोग अवश्य करे जिससे भूमि की गुणवत्ता बननी रहे। उसके पश्चात 2.5 मीटर चौड़े और 60 सें. की दूरी रख कर नर्सरी बेड पर खीरे की फसल को तैयार करे

बुवाई का समय

- **उत्तरी-पूर्वी मैदानी समतल भागों में :** मार्च से नवंबर
- **दक्षिण व मध्य भारत में :** अक्टूबर से नवमबर
- **ग्रीष्मकालीन खीरे की खेती :** जनवरी से फ़रवरी
- **खरीफ़ वाली फ़सल के लिए:** जून से जुलाई तक
- **वहीं पर्वतीय इलाक़े में :** अप्रैल-मई तक खीरे की खेती बुवाई कर सकते हैं

बीज की मात्रा/पौधे से पौधे दूरी: एक है. भूमि में लगभग 2 से 3 किलोग्राम/हेक्टेयर उन्नत प्रकार के बीजो की आवयश्क होती है। खीरे की फसल बेल के रूप में होती है इसलिए बीज को बोते समय पौधे से पौधे की दुरी 50-100 **cm** तथा पंक्ति से पंक्ति की दुरी 200 **cm** होनी चाहिए। बुवाई के समय बीजो की भूमि में गहराई 1 **cm** तक रखनी चाहिए।

बीज उपचार: बुवाई से पहले बीज को फफूँदरोधी दवा जैसे एग्रोसन जीएन 2.5 ग्राम/किलोग्राम से उपचारित कर लें या फिर 0.1% बाविस्टीन के घोल में बीज को कुछ घंटो तक भिगोएँ, जिससे अंकुरण अच्छा हो। साथ ही पौधा फफूँदरोगों से ग्रसित ना हो।

खीरा की बुवाई करने की विधि: भारत में खीरे की बुवाई के लिए किसान भाई तीन तरीक़े इस्तेमाल में लाते हैं ।

पहला हल के पीछे कूँड में: अगर आप कूँड में बुवाई करने जा रहे हैं तो 1 से 1.5 मीटर की दूरी पर कूँड बनाएँ और इसमें बीजों को कूँड की ऊपरी लेबल पर बोया जाता है। इसें बेल भूमि में फैलते हैं। बसंतक़ालीन बुवाई के लिए यह विधि बढ़िया होती है।

दूसरा क्यारी बनाकर : इस विधि में खीरे के बीजों को उठी-उठी क्यारियों में बोना चाहिए। क्यारियों की फ़सल व उसकी क़िस्म पर निर्भर है।

तीसरा और अंतिम गड्ढे बनाकर : नदी किनारे खेरे की बुवाई के लिए गड्ढे की बनाएँ। गड्ढों की गहराई इतनी हो जिससे की नीचे पानी आये। इसके बाद जैविक खाद/कंपोस्ट खाद 5 किलो,अरंडी का तेल 100 ग्राम,सिंगल सुपर फ़ास्फ़ेट 25 ग्राम, व मयूरेट ओफ़ पोटाश 30 ग्राम। सभी को आपस में मिलाकर गड्ढे में भर दें। इसके बाद हर गड्ढे में 3 से 4 बीज बोएँ। अंकुरण के बाद 3 से 4 पत्तियाँ निकलने पर 2 स्वस्थ पौधों को छोड़कर बाक़ी के कमज़ोर पौधों को उखाड़ दें। ऐसा करने से पौधों की बढ़वार के लिए पर्याप्त स्थान मिलेगा और साथ हाई साथ उर्वरक का वितरण भी समान होगा।

खाद व उर्वरक: खीरे की खेती से अच्छी उपज लेने के लिए आर्गेनिक खाद (कंपोस्ट खाद) का प्रयोग सर्वोत्तम होता है। इसके लिए खेत की आखरी जुताई के साथ हे 200 से 300 क्विं. **fam yard manures** यानी गोबर की खाद के साथ ही 40 से 60 किलोग्राम नाइट्रोजन या नत्रजन, 70 किलोग्राम पोटास, 60 किलोग्राम फास्फोरस प्रति हेक्टेयर की दर से उपयोग में लाना चाहिए। गोबर की खाद खेत की तैयारी से पूर्व खेत में मिला देना चाहिए, इसके बाद जुताई करके मिट्टी में अच्छी तरह से मिला देना दें। यूरिया को **top dressing** के रूप में प्रयोग करना चाहिए। फ़ोस्फोरस और पोटाश को खेत में जुताई के समय उपयोग में लाएँ।

समय पर सिंचाई व जल निकास प्रबंधन: मौसम व मिट्टी की क़िस्म के अनुसार सिंचाई करना बेहतर रहता है। आमतौर पर शुष्क मौसम में सिंचाई अधिक करनी पड़ती है तो वहीं पर नम मौसम में पौधों में जल माँग कम होती है। खेती किसानी डॉट ओर्ग फ़सल जल माँग के अनुरूप सिंचाई करने की सिफ़ारिश करता है । बीज की बुवाई के 1-2 दिन के बाद हल्की सिंचाई करना अच्छा रहता है। अंकुरण शीघ्र होता है। इसके बाद 4 से 5 दिन बाद फिर एक सिंचाई कर दें।

निराई गुड़ाई व खरपतवार नियंत्रण: खीरे की फ़सल में खरपतवार निराई गुड़ाई कर निकाल देना चाहिए। साथ की पौधों की जड़ों में मिट्टी चढ़ा दें ताकि भूमि के बाहर ना खुली रहे। निराई गुड़ाई करने से लताएँ अच्छी बढ़ती है और फलन अधिक होती है।

पादप नियंत्रकों का प्रयोग: जब खीरे के पौधे में 2 से 3 पत्तियाँ आ जाएँ नेप्थलीन 100 **PPM,** ट्राईआयडो बेंजोइक एसिड और एथरेल का छिड़काव फ़सल पर करें इससे मादा फूल अधिक बनते हैं जिससे उपज के 30-40% की वृद्धि हो जाती है।

खीरे की खेती में रोग व कीट नियंत्रण: फ़सल की देखभाल व खाद पानी देने के साथ ही फ़सल सुरक्षा पर ध्यान देना चाहिए। कभी-कभी अच्छी क़िस्म, उपजाऊ मिट्टी व अच्छी खाद-पानी के बावजूद फ़सल सुरक्षा प्रबंधन सही ना होने से किसान साथी हानि उठाते हैं। **फ़सल पर कीटों व रोगों के नियंत्रण की विधियाँ ये हैं-**

कीट नियंत्रण

- खीरे में अधिकतर पत्ती खाने वाली सूँड़ी, रेड पम्पकिन बीटल, थ्रिप्स, फल मक्खी, व एफिस (माहूँ) का प्रकोप होता है रसायनों का प्रयोग का इनसे बचाव करना चाहिए।
- पत्ती खाने वाली सूँड़ी व रेड पम्पकिन बीटल की रोकथाम हेतु क्लोरपायरीफ़ोस 0.05 का छिड़काव करें। ■ थ्रिप्स व फल मक्खी से बचाव के लिए 0.05% डेमाटोन का छिड़काव करें। ■ एफिड या माहूँ का प्रकोप होने पर नमी व बादल होने पर बढ़ता है। इससे बचाव हेतु **metososto&** की 0.2% मात्रा का छिड़काव करें।

रोग नियंत्रण

- कद्दूवर्गीय फ़सलों में अधिकतर आर्दविगलन, मृदुरोमिल आसिता, फल विगलन, **anthracnose** या श्यामव्रण व चूर्णी फफूँदी जैसे रोग लगते हैं । इन सभी रोगों से बचाव का सामान्य मंत्र यह है कि बीज बोने के पहले फफूँदरोधी रसायन से उपचारित कर लें ■ कद्दू वर्गीय फ़सलों को एक ही खेत में हर साल ना उगाएँ। फ़सल चक्र इस्तेमाल करें
- खेत में जल निकास प्रबंधन का विशेष ध्यान रखें। ■ रोग ग्रसित पौधे को उखाड़कर उसके अवशेष को खेत के किनारे जला दें ताकि दूसरा पौधा संक्रमित ना हो। ■ फ़सल के आस-पास खीरा परिवार यानी कुकरबिटेसी कुल के पौधों को उखाड़ दें। ■ फल तोड़ते समय ध्यान रखें की उसमें खरोंच या घाव न होने पाए। ■ मृदुरोमिल आसिता ■ यह भी फफूँदी जनित रोग है। ■ आर्द विगलन ■ यह एक फफूँदीजनित रोग है जो राइजोक्टोनिया नाम से फफूँद से होता है इसके प्रकोप से पौधे के तने ज़मीन की सतह पर सड़कर कमज़ोर हो जाते हैं। यह अधिक नमी के कारण होता है। इस रोकथाम के लिए कोई बचाव के अतिरिक्त कोई ख़ास उपचार नही है। बीज की बुवाई के पहले विटावैक्स की 0.25% की मात्रा से उपचारित कर लेना चाहिए।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

ऊर्जा के भावी विकल्प : जो किसानों की आमदनी बढ़ाने में सहायक

अंकित कुमार तिवारी
रामा विश्वविद्याल कानपुर (उ.प्र.)

सुमित कुमार शुक्ल (परास्नातक छात्र)
कृषि प्रसार शिक्षा, महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, सतना (म.प्र.)

हर्षिता नायक डॉ राम मनोहर लोहिया
अवध विश्वविद्यालय,फैजाबाद, अयोध्या (उ.प्र.)

वनस्पतियों से उत्पादित ईंधन को बायोफ्यूल कहा जाता है। यह तीन प्रकार की वनस्पतियों से बनाया जाता है 1- जहरीले फल जैसे जेट्रोफा से 2 डू खाद्यान जैसे सोयाबीन से और तीसरा गन्ने के रस से। जेट्रोफा को रतनजोत नाम से भी जाना जाता है। जेट्रोफा के उत्पादन को बढ़ावा देने में समस्या है कि उत्पादन द्वारा बायोडीजल की सीधे बिक्री करने पर प्रतिबंध है। कोलकाता की एक कंपनी द्वारा बायोडीज़ल कोलकाता ट्राम कंपनी को सीधे बेचा जा रहा था। पेट्रोलियम मंत्रालय द्वारा आपत्ति जताने के कारण ट्राम कंपनी ने यह खरीद बंद कर दी और बायोडीजल की कंपनी भी बंद हो गई। बायोडीजल की फैक्ट्री के लिए यह अनिवार्य है कि वह उत्पादित माल को तेल कंपनी को बेचे । तेल कंपनी इसे डीजल में मिलाकर बेचती है। इस बिक्री पर तेल कंपनी टैक्स अदा करती है। वर्तमान में बायोडीजल की उत्पादन लागत लगभग 35 रुपए लीटर है। डीजल के बाजार भाव से यह कम है इसलिए उत्पादक इसे सीधे उपभोक्ता को बेचकर लाभ कमा सकता है। परंतु तेल कंपनियों द्वारा बायोडीजल का दाम लगभग 25 रुपए प्रति लीटर दिया जा रहा है, क्यों कि इन्हे इस पर टैक्स देना पड़ता है। अतः बायोडीजल की सीधी बिक्री के लिए छूट देने से किसानों और फैक्ट्रियों के लिए बायोडीजल का उत्पादन करना लाभप्रद हो जाएगा । सीधे बिक्री की छूट देने पर सरकार को विचार करना चाहिए।

जेट्रोफा से बायोडीजल का उत्पादन वर्तमान में केवल बीज से हो रहा है। पौधे के तने में सेल्यूलोज होता है जो कि ज्वलनशील है। परंतु सेलुलोज को ईंधन में परिवर्तित करने की तकनीक फिलहाल विकसित नही हुई है यद्यपि इस पर वैश्विक स्तर पर शोध चल रहा है। सेल्यूलोज से उत्पादन हो जाए तो बायोडीजल बनाने में लागत कम आयेगी ।अतएव बायोडीजल के उपयोग को बढ़ावा देने के लिए सरकार को इस रिसर्च को बढ़ावा देना चाहिए। इस समस्या का समाधान हो जाए तो भी दूसरी समस्या बनी रहती है। जेट्रोफा द्वारा सूर्य की केवल 2 प्रतिशत ऊर्जा को बायोडीजल में परिवर्तित किया जाता है। तुलना में सोलर पैनल से 15 से 25 प्रतिशत ऊर्जा का संग्रह किया जा सकता है। अतः देश की ऊर्जा सुरक्षा के लिए बायोडीजल की तुलना में सोलर पैनल ज्यादा कारगर साबित होंगे । जेट्रोफा के स्थान पर सोलर पैनल लगाए जाए तो ऊर्जा का उत्पादन अधिक होगा । इस ऊर्जा को बैटरी में संग्रह करके ईंधन तेल के स्थान पर उपयोग किया जा सकता है । बिजली से चलने वाली कारों का उत्पादन शुरू हो चुका है । इस विकल्प को देखते हुए सेलुलोज से ईंधन बनाने की सफलता में भी संदेह उत्पन्न होता है।

बायोफ्यूल का दूसरा स्रोत खाद्यान्न है। अमेरिका में उत्पादित लगभग 40 प्रतिशत मक्के का उपयोग बायोफ्यूल बनाने में किया जा रहा है । बायोफ्यूल का यह स्त्रोत हमारे लिए उपयोगी नही है, क्योंकि हम पहले ही खाद्य तेलों के लिए आयातों पर निर्भर है ।बायोफ्यूल बनाने के लिए यदि सोयाबीन की खेती की जाएगी तो खाद्यान्न और खाद्य तेलों के लिए आयातों पर हमारी निर्भरता बढ़ेगी । बायोफ्यूल का तीसरा स्त्रोत गन्ना है । चीनी बनाने की प्रक्रिया में मोलोसिस का उत्पादन होता है। इसमें कचड़े के साथ कुछ मात्रा में चीनी भी विद्दमान रहती है इस बची हुई चीनी से एथेनाल नामक ईंधन बनाया जाता है । लेकिन देश में उपलब्ध मोलोसिस की मात्रा सीमित है एथेनाल का उत्पादन बढ़ाने के लिए गन्ने के रस का उपयोग चीनी बनाने के स्थान पर सीधे एथेनाल बनाने के लिए किया जा सकता है। गन्ने के उत्पादन के लिए अधिक भूमि का उपयोग करने से गेंहू और चावल का उत्पादन प्रभावित होगा । नागपुर में चीनी मिलों की एक लॉबी है। जिनके द्वारा जोर दिया जा रहा है कि सरकार द्वारा एथेनाल को बढ़ावा दिया जाए । एथेनाल के उत्पादन से देश की खाद्य सुरक्षा पर क्या प्रभाव पड़ेगा इससे भी सरकार को सचेत रहना चाहिए।

ड्रोन का खेती में इस्तेमाल किसानों को बनाएगा समृद्ध

शामली। डीएम जसजीत कौर ने कहा कि खेती में ड्रोन का इस्तेमाल किसानों को समृद्ध बनाएगा। यह तकनीक किसानों के लिए कारगर सिद्ध होगी। अधिक से अधिक किसान इसका लाभ उठाएं। डीएम ने सोमवार को जलालपुर स्थित कृषि विज्ञान केंद्र पर किसान ड्रोन प्रशिक्षण में ये बातें कहीं। उन्होंने गुब्बारे उड़ाकर प्रशिक्षण का शुभारंभ किया। डीएम ने कृषि विज्ञान केंद्र में बनी गन्ना पादप स्वास्थ्य क्लीनिक का भी भ्रमण किया। कृषि विज्ञान केंद्र के वैज्ञानिक डॉ. विकास मलिक की लिखी गन्ना वार्षिक पॉकेट पुस्तिका का विमोचन भी किया। उन्होंने किसानों को खेती में ड्रोन का इस्तेमाल करने के लिए प्रेरित किया। केंद्र के अध्यक्ष डॉ. सतीश कुमार, कृषि उप निदेशक डॉ. शिव कुमार केसरी ने डीएम जसजीत कौर को बुके देकर स्वागत किया। कृषि वैज्ञानिक डॉ. विकास मलिक ने कहा कि ड्रोन तकनीक जिले के गन्ना किसानों के लिए लाभदायक साबित होगी। यहां पर 90 प्रतिशत क्षेत्रफल में गन्ने की खेती की जाती है। ड्रोन के प्रयोग से गन्ने की फसल ऊंची होने पर भी आसानी से कीटनाशक, अन्य खाद उर्वरकों का छिड़काव कर पाएंगे। केंद्र के अध्यक्ष डॉ. सतीश कुमार ने सभी का आभार व्यक्त किया। मौके पर कृषि वैज्ञानिक डॉ. ओंकार सिंह, उप कृषि निदेशक डॉ. शिव कुमार केसरी, जिला कृषि अधिकारी हरिशंकर चौधरी, जिला गन्ना अधिकारी विजय बहादुर सिंह और अन्य विभागीय अधिकारी के साथ बड़ी संख्या में किसान मौजूद रहे।

किसानों को कम किराए पर मिलेगा ड्रोन

कृषि विज्ञान केंद्र के वैज्ञानिक डॉ. विकास मलिक ने बताया कि अभी जिले के ज्यादा से ज्यादा किसानों को ड्रोन का प्रशिक्षण दिया जाएगा। किसानों को इसके लाभ बताए जाएंगे। किसानों को काफी कम किराए पर ड्रोन उपलब्ध कराया जाएगा।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

हाइड्रोपोनिक्स बिना मिट्टी के पौधे उगाने की तकनीक

अंकित गुप्ता परास्नातक (कृषि) शस्य विज्ञान विभाग, आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय कुमारगंज ,अयोध्या (उ.प्र.)

शुभेन्दु सिंह, YP1 एआईसीआरपी एम निक्रा, आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय कुमारगंज ,अयोध्या (उ.प्र.)

डॉ. देवीदीन यादव वैज्ञानिक शस्य विज्ञान विभाग, भाकृअनुप-भारतीय मृदा एवं जल संरक्षण संस्थान

हाइड्रोपोनिक्स

केवल पानी में या बालू अथवा कंकड़ों के बीच नियंत्रित जलवायु में बिना मिट्टी के पौधे उगाने की तकनीक को हाइड्रोपोनिक कहते हैं। हाइड्रोपोनिक शब्द की उत्पत्ति दो ग्रीक शब्दों 'हाइड्रो' **(Hydro)** तथा 'पोनोस **(Ponos)** से मिलकर हुई है। हाइड्रो का मतलब है पानी, जबकि पोनोस का अर्थ है कार्य। हाइड्रोपोनिक्स में पौधों और चारे वाली फसलों को नियंत्रित परिस्थितियों में 15 से 30 डिग्री सेल्सियस ताप पर लगभग 80 से 85% आर्द्रता में उगाया जाता है। सामान्यतया पेड़-पौधे अपने आवश्यक पोषक तत्व जमीन से लेते हैं, लेकिन हाइड्रोपोनिक्स तकनीक में पौधों के लिये आवश्यक पोषक तत्व उपलब्ध कराने के लिये पौधों में एक विशेष प्रकार का घोल डाला जाता है। इस घोल में पौधों की बढ़वार के लिये आवश्यक खनिज एवं पोषक तत्व मिलाए जाते हैं। पानी, कंकड़ों या बालू आदि में उगाए जाने वाले पौधों में इस घोल की महीने में दो-एक बार केवल कुछ बूँदें ही डाली जाती हैं। इस घोल में नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश, मैग्नीशियम, कैल्शियम, सल्फर, जिंक और आयरन आदि तत्वों को एक खास अनुपात में मिलाया जाता है, ताकि पौधों को आवश्यक पोषक तत्व मिलते रहें।

कहाँ-कहाँ हो रहा है हाइड्रोपोनिक्स का उपयोग?

हाइड्रोपोनिक्स तकनीक का कई पश्चिमी देशों में फसल उत्पादन के लिये इस्तेमाल किया जा रहा है। हमारे देश में भी हाइड्रोपोनिक्स तकनीक से देश के कई क्षेत्रों में बिना जमीन और मिट्टी के पौधे उगाए जा रहे हैं और फसलें पैदा की जा रही हैं। राजस्थान जैसे शुष्क क्षेत्रों में जहाँ चारे के उत्पादन के लिये विपरीत जलवायु वाली परिस्थितियाँ हैं, उन क्षेत्रों में यह तकनीक वरदान सिद्ध हो सकती है। वेटरनरी विश्वविद्यालय, बीकानेर में मक्का, जौ, जई और उच्च गुणवत्ता वाले हरे चारे वाली फसलें उगाने के लिये इस तकनीक का इस्तेमाल किया जा रहा है। यहाँ के वैज्ञानिकों ने बिना मिट्टी के नियंत्रित वातावरण में इस तकनीक से सेवण घास की पौध तैयार करने में सफलता प्राप्त की है। इससे खुले खेतों में सेवण घास को उगाने और हल्के-फुल्के बीजों की बुआई में आने वाली कठिनाइयों को दूर करने में मदद मिलेगी और इस तरह सेवण घास चारागाहों का तेजी से विकास किया जा सकेगा। यहाँ यह बताना उचित होगा कि राजस्थान जैसे विपरीत जलवायु परिस्थितियों वाले राज्यों में चारागाहों के लगातार घटने तथा संतुलित पोषक आहार न मिलने के कारण अच्छे दुधारू नस्ल के पशुओं की हालत चिंताजनक हो रही है। ऐसे में हाइड्रोपोनिक्स तकनीक से हरे चारे का उत्पादन करने का प्रयास किया जा रहा है। इससे बारहों महीने पशुओं के लिये पौष्टिक हरा चारा मिल सकेगा। इसी तरह, हाइड्रोपोनिक्स तकनीक से पंजाब में आलू उगाया जा रहा है। गोवा में चारागाह के लिये भूमि की कमी है, इसलिये वहाँ पशुओं के लिये चारे की बड़ी समस्या होती है। किसानों की इस समस्या को देखते हुए भारत सरकार की राष्ट्रीय कृषि विकास योजना के तहत गोवा डेयरी की ओर से इंडियन काउंसिल फॉर एग्रीकल्चरल रिसर्च के गोवा परिसर में हाइड्रोपोनिक्स तकनीक से हरा चारा उत्पादन की इकाई की स्थापना की गई है। ऐसी ही दस और इकाइयाँ गोवा की विभिन्न डेरी-कोऑपरेटिव सोसाइटियों में लगाई गई हैं। प्रत्येक इकाई की प्रतिदिन 600 किलोग्राम हरा चारा उत्पादन की क्षमता है।

हाइड्रोपोनिक्स के लाभः परंपरागत तकनीक से पौधे और फसलें उगाने की अपेक्षा हाइड्रोपोनिक्स तकनीक के कई लाभ हैं। इस तकनीक से विपरीत जलवायु परिस्थितियों में उन क्षेत्रों में भी पौधे उगाए जा सकते हैं, जहाँ जमीन की कमी है अथवा वहाँ की मिट्टी उपजाऊ नहीं है। हाइड्रोपोनिक्स के प्रमुख लाभ इस प्रकार हैं :- ■ इस तकनीक से बेहद कम खर्च में पौधे और फसलें उगाई जा सकती हैं। एक अनुमान के अनुसार 5 से 8 इंच ऊँचाई वाले पौधे के लिये प्रति वर्ष एक रुपए से भी कम खर्च आता है। ■ इस तकनीक में पौधों को आवश्यक पोषक तत्वों की आपूर्ति के लिये आवश्यक खनिजों के घोल की कुछ बूँदें ही महीने में केवल एक-दो बार डालने की जरूरत होती है। इसलिये इसकी मदद से आप कहीं भी पौधे उगा सकते हैं। ■ परंपरागत बागवानी की अपेक्षा हाइड्रोपोनिक्स तकनीक से बागवानी करने पर पानी का 20 प्रतिशत भाग ही पर्याप्त होता है। ■ यदि हाइड्रोपोनिक्स तकनीक का बड़े स्तर पर इस्तेमाल किया जाता है तो कई तरह की साक-सब्जियां बड़े पैमाने पर अपने घरों और बड़ी-बड़ी इमारतों में ही उगाई जा सकेंगी। इससे न केवल खाने-पीने के सामान की कीमत कम होगी, बल्कि परिवहन का खर्चा भी कम हो जाएगा। ■ चूँकि इस विधि से पैदा किए गए पौधों और फसलों का मिट्टी और जमीन से कोई संबंध नहीं होता, इसलिये इनमें बीमारियाँ कम होती हैं और इसीलिये इनके उत्पादन में कीटनाशकों का इस्तेमाल नहीं करना पड़ता है।

■ चूँकि हाइड्रोपोनिक्स तकनीक में पौधों में पोषक तत्वों का विशेष घोल डाला जाता है, इसलिये इसमें उर्वरकों एवं अन्य रासायनिक पदार्थों की आवश्यकता नहीं होती है। जिसका फायदा न केवल हमारे पर्यावरण को होगा, बल्कि यह हमारे स्वास्थ्य के लिये भी अच्छा होगा। ■ हाइड्रोपोनिक्स तकनीक से उगाई गइ सब्जियाँ और पौधे अधिक पौष्टिक होते हैं। ■ हाइड्रोपोनिक्स विधि से न केवल घरों एवं फ्लैटों में पौधे उगाए जा सकते हैं, बल्कि बाहर खेतों में भी फसलें उगाई जा सकती हैं। इस विधि से उगाई गई फसलें और पौधे आधे समय में ही तैयार हो जाते हैं। ■ जमीन में उगाए जाने वाले पौधों की अपेक्षा इस तकनीक में बहुत कम स्थान की आवश्यकता होती है। इस तरह यह जमीन और सिंचाई प्रणाली के अतिरिक्त दबाव से छुटकारा दिलाने में सहायक होती है। ■ मक्के से तैयार किए गए हाइड्रोपोनिक्स चारे से संबंधित प्रयोगों में पाया गया है कि परंपरागत हरे चारे में क्रूड प्रोटीन 10.70% होती है, जबकि हाइड्रोपोनिक्स हरे चारे में क्रूड प्रोटीन 13.6% होती है। लेकिन परंपरागत हरे चारे की अपेक्षा हाइड्रोपोनिक्स हरे चारे में क्रूड फाइबर कम होता है। हाइड्रोपोनिक्स हरे चारे में अधिक ऊर्जा, विटामिन और अधिक दूध का उत्पादन होता है और उनकी प्रजनन क्षमता में भी सुधार होता है। ■ हाइड्रोपोनिक्स तकनीक का एक फायदा यह भी है कि इस तकनीक से गेहूँ जैसे अनाजों की पौध 7 से 8 दिन में तैयार हो सकती है, जबकि सामान्यतः इनकी पौध तैयार होने में 28 से 30 दिन लगते हैं।

हाइड्रोपोनिक्स तकनीक की चुनौतियां

जब हाइड्रोपोनिक्स के इतने सारे लाभ हो सकते हैं तो इसका उपयोग फैल क्यों नहीं रहा है? दरअसल, इस तकनीक के प्रचलित होने के रास्ते में कई कठिनाइयाँ और चुनौतियाँ भी हैं; जैसे कि- ■ सबसे बड़ी चुनौती तो इस तनकीक को इस्तेमाल करने में आवश्यक शुरुआती खर्चे की है। परंपरागत विधि की अपेक्षा इसको लगाने में अधिक खर्चा आता है। यहाँ यह बात स्पष्ट करने की जरूरत है कि बाद में यह काफी सस्ती पड़ती है। ■ चूँकि इस विधि में पानी का पंपों की सहायता से पुनः इस्तेमाल किया जाता है, उसके लिये लगातार विद्युत आपूर्ति की आवश्यकता होती है। इसलिये दूसरी बड़ी चुनौती है हर वक्त विद्युत आपूर्ति बनाए रखना। ■ तीसरी सबसे बड़ी चुनौती है लोगों की मनोवृत्ति को बदलने की। अधिकतर लोग सोचते हैं कि हाइड्रोपोनिक्स के इस्तेमाल के लिये इसके बारे में काफी अच्छी जानकारी होनी चाहिए और इसमें काफी शोध अध्ययन की जरूरत होती है। लेकिन असल में ऐसा नहीं है। अंत में इस बात को भी नकारा नहीं जा सकता कि पौधों की उचित बढ़वार के लिये आवश्यक खनिज और पोषक तत्व सही समय पर सही मात्रा में मिलते रहने चाहिए। हाइड्रोपोनिक्स तकनीक में इन तत्वों की आपूर्ति हम करते हैं, जबकि जमीन से पौधे अपने आप लेते रहते हैं।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

बैंगन के प्रमुख हानिकारक कीट एवं उनका एकीकृत प्रबंधन

नानू राम शर्मा, बबलु शर्मा
प्रमोद बालमाला
मुस्कान सागर रंजित चौहान
(शोध छात्र) कीट विज्ञान विभाग, कृषि विज्ञान संस्थान, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झांसी (उ.प्र.)
डॉ. अभिषेक चौधरी, डॉ. प्रदीप कुमार
कीट विज्ञान विभाग, कृषि विज्ञान संस्थान, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झांसी (उ.प्र.)

बैंगन मूलरूप से भारत में पाई जाने वाली सब्जी है। बैंगन की खेती 600 ईसा पूर्व एशिया के दक्षिणी और पूर्वी हिस्सों में की जाती थीं। भारत का बैंगन उत्पादन में दूसरा स्थान हैं। भारत, बांग्लादेश, पाकिस्तान, चीन और फिलीपींस में बड़े पैमाने पर उगाए जाने वाले सुदूर पूर्व के गर्म क्षेत्रों में बैंगन का बहुत महत्व है। यह मिस्र, फ्रांस, इटली और संयुक्त राज्य अमेरिका में भी लोकप्रिय है। भारत में, यह उच्च ऊंचाई को छोड़कर पूरे देश में उगाई जाने वाली सबसे आम, लोकप्रिय और प्रमुख सब्जी फसलों में से एक है।

भारत में कुल सब्जी का 23.3 प्रतिशत उत्पादन बैंगन का होता हैं। यह विभिन्न कृषि-जलवायु क्षेत्रों के लिए अनुकूलित एक बहुमुखी फसल है और इसे पूरे वर्ष उगाया जा सकता है। बैंगन का उपयोग सब्जी एवं औषधियों के रूप में किया जाता है। औषधीय गुण होने के कारण डायबिटीज जैसी बीमारियों में उपयोग किया जाता है बैंगन में विटामिन एवं एंटी ऑक्सीडेंट पोषक तत्व तथा मिनरल पाये जाते हैं जो शरीर को स्वस्थ एवं इम्यूनिटी को बढ़ाता है।

बैंगन में लगने वाले प्रमुख हानिकारक कीट

फल एवं प्ररोह बेधक कीट की पहचान

इस कीट के वयस्क मध्यमाकार सफेद रंग के होते हैं वक्ष तथा उदर के ऊपरी भाग पर पीले भूरे तथा काले रंग के धब्बे मिलते हैं पंख सफेद तथा उन पर बड़े-बड़े भूरे रंग के धब्बे होते हैं इनका पंख विस्तार 20 से 22 मि.मी. का होता है। इनके अंडे क्रीम की तरह सफेद और लंबे होते हैं मादा कीट अपने अंडे 1-1 अथवा

2-4 के समूह में प्रायः पत्तियों की निचली सतह कोमल तनों फूलों कलियों तथा फल के बाहयदल में देती है एक मादा अपने जीवन काल में 100 से 150 अंडे देती है। लार्वा/सूंडी प्रारंभ में सूंडी सफेद जो बाद में सफेद-पीले रंग में बदल जाती है। शरीर पर बैंगनी रंग की धारियां पाई जाती है। विकसित सूंडी की लंबाई 18 से 23 मिण्मीण् की होती है। कृमि कोष पूर्ण विकसित सूंडी तने अथवा फल से बाहर निकल कर गिरी हुई पत्तियों के मध्य कृमिकोष अवस्था में बदल जाती है सूंडी नाव के आकार की सिल्किन कोकून बनाती है।

सफेद मक्खी कीट की पहचान

इस कीट के वयस्क बहुत छोटा लगभग 2.5 मि.मी. लम्बे तथा 1 मि.मी. मोटे पीले सफेद रंग के होते है। इनका अंडा 0.3 मि.मी. लंबा चमकदार अंडाकार तथा पीले रंग का होता है। अण्डा पकने के समय भूरा तथा काला होता है। इनके निम्फ चमकदार अंडाकार पीले रंग के 0.31 मि.मी. लम्बे होते हैं। पूर्ण विकसित होने पर लगभग 2 मि.मी. लम्बा होता है। कर्मीकोष चपटा अंडाकार तथा सिलेटी रंग का होता है एवं आकार में निम्फ से बड़ा होता है।

हाड्डा/चितीदार भृंग कीट की पहचान

हाड्डा/चित्तीदार भृंग कीट की अंडे की अवधि 2-4 दिन की होती है। अंडे सिगार के आकार तथा पीले रंग के और पत्ती की निचली सतह पर गुच्छों के रूप में रहता है, एक मादा अपने जीवन काल में 120-460 अंडे देती हैं। इस कीट की लार्वा अवस्था 10-35 दिन की होती है तथा प्यूपा अवस्था 5-6 दिन की होती हैं। इस कीट का वयस्क तांबे के रंग के 6 धब्बे प्रत्येक पंखो पर तथा पीले रंग के क्षेत्र से घिरे होते हैं। इस कीट का कुल जीवन काल 20-50 दिन का होता हैं तथा इसकी एक वर्ष में 7 पीढ़ियां पाई जाती हैं।

समन्वित कीट नियंत्रण के उपाय

- कर्षण क्रिया द्वारा नियंत्रण
- यांत्रिक नियंत्रण
- जैविक नियंत्रण
- रासायनिक नियंत्रण

कर्षण क्रिया द्वारा नियंत्रण

- गर्मियों में गहरी जुताई करके इनके अंडों को नष्ट किया जा सकता है।
- फसल अवशेषों तथा खरपतवारओं को नष्ट करके कीटों का नियंत्रण किया जा सकता है।
- फसल चक्र के द्वारा कीटों का नियंत्रण किया जा सकता है।
- कीट प्रतिरोधक किस्मों का प्रयोग करके जैसे- जी बी 6 हरा तेला व सफेद मक्खी का नियंत्रण किया जा सकता है।
- फसल बुवाई के समय में परिवर्तन करके हरा तेला के प्रभाव से फसल को बचाया जा सकता है।
- कीटों से प्रभावित फल एवं पत्तियों तथा टहनियों को नष्ट करके कीटों का नियंत्रण किया जाता है।

यांत्रिक नियंत्रण?

- तना तथा फल बेधक कीटों को पकड़कर नष्ट किया जा सकता है।
- ग्रास हॉपर एफिड हरा तेला बग आदि को जाल द्वारा पकड़ कर नष्ट करना चाहिए।
- यांत्रिक ट्रेप के द्वारा जैसे पीला ट्रेप, लाइट ट्रेप के द्वारा एफिड तथा फल छेदक कीटों का नियंत्रण किया जा सकता है।
- मल्च का प्रयोग करके कीटों का नियंत्रण किया जा सकता है।

जैविक नियंत्रण

- ट्राईकोग्रामा चिलोनिस 10 सें 15 लाख परजीवी का प्रयोग प्रति हेक्टेयर में करके फल एवं तना बेधक का नियंत्रण किया जाता है।

रासायनिक नियंत्रण

- इमिडाक्लोप्रिड 17.5 प्रतिशत 25 ग्राम एक्टिव इंटीग्रेटेड प्रति हेक्टेयर का छिडकाव करके हरा तेला का नियंत्रण किया जाता है।
- डाईमेथोएट 5 प्रतिशत का प्रयोग करके हरा तेला तथा फल बेधक का नियंत्रण किया जाता है
- कार्बोरिल 1 प्रतिशत तथा क्यूनालफॉस 0.5 प्रतिशत का प्रयोग करके हाडा बीटल का नियंत्रण किया जाता है।
- साइपरमैथरीन 0.0125 प्रतिशत का प्रयोग तना व फल बेधक का नियंत्रण किया जाता है।
- एसिटामेप्रिड का प्रयोग सफेद मक्खी के नियंत्रण में किया जाता है।
- हाड्डा/चित्तीदार भृंग कीट के नियंत्रण कें लिए क्लोरपाइरीफॉस 1.0 एस.एल. का फसल पर छिडकाव करें।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

पशुओं में थनैला रोग

जानकारी एवं रोकथाम

डॉ. गोविंद कुमार वर्मा
विषय वस्तु विशेषज्ञ (पशु विज्ञान)
आलोक कुमार गुप्ता (कार्यक्रम सहायक)
तुलसी कृषि विज्ञान केंद्र दीन दयाल शोध संस्थान
गनीवां-210206 चित्रकूट (उ.प्र.)

संक्रामक थनैला रोग के अन्य क्षेत्रीय प्रचलित नाम स्तनशोथ एवं मैमाइटिश है। पालतू दुधारू पशुओं के स्तनशोथ को थनैला कहते है। इस रोग का संक्रमण अनेकों जीवाणुओ द्वारा होता है। इस रोग के प्रभाव से थन गर्म, कठोर व पीड़ादायक हो जाता है। दूध के रंग मे भी परिवर्तन व थक्के पाए जाते है। पुराने रोगीयों मे थन कठोर हो जाता है या फिर क्रियाशील अवस्था मे नहीं रहता है। कभी कभी तो चारों थनों से दूध निकलना बंद हो जाता है।

थनैला संक्रामक रोग दुधारू पशुओ का आर्थिक दृष्टि से एक अत्यन्त महत्वपूर्ण रोग है जिसका प्रभाव दुग्ध व्यवसाय पर प्रत्यक्ष रूप मे होता है। थनैला से दुग्ध उत्पादन मे तो कमी आती ही है साथ ही साथ दूध मे उपस्थित वसा के प्रतिशत मे भी अत्यधिक कमी आ जाती है। थनैला से उत्पन्न स्थाई हानियों के कारण बिना उत्पादन वाले पशुओ की आहार व्यवस्था का व्यय भी पशुपालकों को वहन करना पड़ता है। जन स्वास्थ्य की दृष्टि से भी इस रोग का बहुत महत्व है क्योंकि इस रोग के कुछ जीवाणु जैसे स्ट्रेप्टोकोकसपायोजेनिस तथा स्टैफाईलोकोकसआरियस मनुष्यों मे भी रोग उत्पन्न करते है। यह जीवाणु रोगी पशुओं के दूध से मनुष्यों तक पहुँचते है। अनेकों अवसरों पर क्षय रोग के जीवाणु भी थनैला रोग से प्रभावित पशुओ द्वारा दूध मे पहुंचते है। यदि दूध को भली भांति उबालकर सेवन न किया जाए तो मनुष्यों मे भी क्षय रोग होने का भय रहता है। संक्रामक थनैला रोग अनेकों जीवाणुओ द्वारा उत्पन्न होता है। प्रायः गो-पशुओ और भैंसों मे यह रोग स्ट्रपटोकोकसएग्लैक्सी द्वारा प्रभावित करता है। इसके अतिरिक्त भी अन्य प्रकार के जीवाणुओ द्वारा भी संक्रामक थनैला रोग अपना प्रकोप फैलाता है। खुरपका मुँहपका तथा गौ चेचक के विषाणुओ और कुछ फफूँदियों से भी थनैला रोग उत्पन्न होता है। थनैला रोग उत्पन्न करने मे अयन मे लगने वाली चोटो और घावों का बहुत अधिक महत्व होता है क्योंकि थनों मे संक्रमण घावों या चोंटो से होता है। दूध पीने वाले बच्चे भी घाव उत्पन्न कर देते है जिनसे द्वितीयक रूप मे जीवाणुओं के संक्रमण के फलस्वरूप थनैला रोग उत्पन्न हो जाता है। दूध निकालने वाली मशीन के कपों, ग्वालों के हांथों और पशुशालाओं व दुग्धशालाओ के बर्तनों से भी संक्रमण का प्रसार होता है। कारनीबैक्टीरियम पायोजेनसी से एक विशेष प्रकार का थनैला रोग होता है जिसे ग्रीष्मकालीन थनैला रोग कहते है। यह रोग कालांतर मे उग्र रूप धारण लेता है। इस कारण से अयन मे मवाद पड़ जाती है। खून चूसने वाली बड़े आकार की मक्खियाँ भी इस रोग कों फैलाती हैं। पूरा दूध न दुहना और दूध दुहने का गलत तरीका तथा दोहन के उपरान्त पशु का तुरन्त बैठना इस रोग के सहायक कारक हैं। थनैला दूधारू गाय, भैंस, बकरी, भेंड, शूकर व घोड़ियों आदि पशुओं मे प्रमुख रूप से होता है परन्तु रोग का महत्व दुग्ध व्यवसाय वाले पशुओं में अधिक होता है। रोग के प्रति संवेदनशीलता, पशुनस्ल, आनुवांशिकता, आयु, बच्चों का जन्म का समय व मौसम आदि पर निर्भर होता है। गाय और भैंस की अत्यधिक दूध देने वाली नस्लें थनैला के प्रति अधिक संवेदनशील होती है। पशुपालकों का मत है कि वयस्क पशुओं में संक्रामक थनैला रोग अधिक प्रभावित करता है। भेड़ बकरियों में थनैला रोग बच्चा देने के समय या बच्चों के जन्म के दो-तीन माह बाद अधिक होता है। समूह में अधिक संख्या में भेंडों या शूकरों को एक पशुशाला में रखे जाने से भी गंदगी के कारण अधिक पशुओं में थनैला हो सकता है। शारीरिक रूप से दुर्बल पशुओं को भी थनैला रोग अधिक प्रभावित करता है। संक्रमण का प्रवेश मुख्यतया थन की नलिका या रक्तजनित मार्ग से होता है। जीवाणु थन की नली द्वारा अयन में प्रविष्ट होते हैं तथा थन की नली और अयन में संख्या वृद्धि करते हैं। संक्रमण ऊपर की ओर बढ़ता है तथा दुग्धजन शिरानाल संग्राही वाहनी और कोष्ठिकाओं में पहुंच जाता है। श्वेत रक्त कोशिकाएं जीवाणुओं की ओर आकर्षित होती हैं और इनका भक्षण करती है। रक्त द्वारा संक्रमण अधिकतर क्षय रोग में ही होता है। रोगी पशुओं के दूध में फाइब्रिन के थक्के तथा दूध के रंग में परिवर्तन थनैला के सर्वप्रथम लक्षण प्रदर्शित होते हैं। दुग्ध दोहन में कठिनाई रोगी पशु का चंचल स्वभाव, अयन में सूजन, कठोरता और अयन गर्म होना आदि लक्षण भी उत्पन्न होते हैं। कभी-कभी पशुओं की भोजन के प्रति अरुचि तथा ज्वर आदि भी उत्पन्न हो जाता है। संक्रामक थनैला रोग से बचाव के लिए स्वच्छता संबंधी उपाय सर्वाधिक उपयोगी होते हैं। थनों से दूध निकालने से पूर्व तथा पश्चात जीवाणु नाशक औषधियों से धोना चाहिए। दूध दुहने से पूर्व हाथों या मशीन के कपों को भी जीवाणु नाशक दवाओं से जीवाणुरहित करना चाहिए। थनैला के संक्रमण से बचाव के लिए पशुओं के थनों को चोटों घावों आदि से बचाना चाहिए। उत्तम प्रबंधन व्यवस्था से थनैला के प्रकोप को बहुत कम किया जा सकता है। थनैला रोग की चिकित्सा के लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि रोग का प्रारंभिक अवस्था में निदान करके रोग के कारण का पता करके उसकी चिकित्सा करनी चाहिए। ग्राम धनात्मक जीवाणुओं का पेनिसिलीन तथा ग्राम ऋणात्मक जीवाणुओं का स्ट्रेप्टोमाइसिन से उपचार किया जाता है। आरियोमाइसिन, टेरामाइसिन तथा सल्फा औषधियों से भी रोग का उपचार किया जाता है। जीवाणुनाशक औषधि का चुनाव औषधि की संवेदनशीलता परीक्षण पर निर्भर होना चाहिए। किसी भी प्रकार से उपचार करने पर यह अत्यंत आवश्यक है कि थन से निरंतर दूध निकाला जाए ।आवश्यकता होने पर सायफन द्वारा भी दूध निकालना चाहिए । थन या अयन के ऊपर किसी भी प्रकार के गर्म तेल, घी या पानी की मालिश नहीं करनी चाहिए।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

किसानों के लिए एक वरदान शून्य बजट प्राकृतिक खेती

आदित्य कुमार सिंह वैज्ञानिक/तकनीकी अधिकारी, क्षेत्रीय कृषि अनुसंधान केन्द्र भरारी, झाँसी

डॉ. एच.एस. कुशवाहा प्रोफेसर, महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय चित्रकूट सतना (म.प्र.)

डॉ. नरेन्द्र सिंह (प्रोफेसर) बांदा कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, बांदा (उ.प्र.)

नई तकनीकों एवं नयी विधियों का इस्तेमाल करने हेतु किसानों को महंगी मशीनें, महंगे खाद व महंगे बीज का प्रयोग करना पड़ता है, जिससे खेती की लागत बढ़ गई है। खेती की नयी तकनीक के साथ किसान अपने खेत में रासायनिक खाद का अंधाधुंध इस्तेमाल कर रहे हैं। जिससे किसान की उपज में वृद्धि तो हो रही है, लेकिन उत्पादन लागत में भी वृद्धि हो रही है। ऐसे में किसान पूंजी के आभाव में कर्जे में डूबता जा रहा है तथा किसान को अपनी उपज की सही कीमत भी नहीं मिलती है। इन सभी कारणों से रासायनिक खेती घाटे का सौदा बनती जा रही है। इसके साथ ही किसानों के खेत की उर्वरता में भी कमी हो रही है। मिट्टी भी बंजर होती जा रही है। खेती के मौजूदा दौर में शून्य बजट प्राकृतिक खेती किसानों के लिए किसी वरदान से कम नहीं है। शून्य बजट प्राकृतिक खेती से उत्पादन लागत कम होगी और कम लागत में अधिक पैदावार होगी साथ ही उपज की अच्छी गुणवत्ता होने के कारण उसके दाम भी बाजार में अच्छे मिलेंगे।

शून्य बजट प्राकृतिक खेती करने का एक तरीका है जिसमें बिना किसी लागत के खेती की जाती है। खेती करने के इस तरीके में बाहर से किसी भी उत्पाद का कृषि में निवेश मना है। कुल मिला कर कहें तो यह सम्पूर्ण रूप से प्राकृतिक खेती है। शून्य बजट प्राकृतिक खेती में प्राकृतिक चीजो का ही इस्तेमाल होता है और जमीन पर भी कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता है।

शून्य बजट प्राकृतिक खेती: शून्य बजट प्राकृतिक खेती देसी गाय के गोबर एवं गोमूत्र पर आधारित है। एक देसी गाय के गोबर और गौमूत्र से एक किसान तीस एकड़ जमीन पर शून्य बजट खेती कर सकता है। देसी प्रजाति के गोवंश के गोबर एवं मूत्र से जीवामृत, घनजीवामृत तथा जामन बीजामृत बनाया जाता है। इन् सभी का खेत में प्रयोग करने से मिट्टी में पोषक तत्वों की वृद्धि के साथ-साथ जैविक गतिविधियाँ बढ़ती हैं। गाय के सप्ताह भर के गोबर एवं गौमूत्र से बनाये गये घोल का छिड़काव खेत में खाद का काम करता है और भूमि की उर्वरकता भी कम नहीं होती। जीवामृत का महीने में एक बार या दो बार खेत में छिड़काव किया जा सकता है, जबकि बीजामृत का इस्तेमाल बीज उपचार में किया जाता है। इस विधि से खेती करने से किसान को बाजार से किसी प्रकार की खाद और कीटनाशक रसायन खरीदने की जरुरत नहीं पड़ती है। फसलों की सिंचाई के लिए पानी एवं बिजली भी मौजूदा खेती बाड़ी की तुलना में दस प्रतिशत ही खर्च होती है।

शून्य बजट प्राकृतिक खेती के चार मूल स्तम्भ

जीवामृत: जीवामृत की मदद से जमीन को पोषक तत्व मिलते हैं और ये एक उत्प्रेरक का काम करता है, जिसकी

वजह से मिट्टी में सूक्ष्मजीवों की गतिविधि बढ़ जाती है। जीवामृत बनाने के लिए एक बैरल में 200 लीटर पानी डालें और उसमें 10 किलो ताजा गाय का गोबर, 5 से 10 लीटर वृद्ध गाय का मूत्र, 2 किलो दाल का आटा, 2 किलो भूरी शक्कर और मिट्टी को मिला दें, यह सब चीजें मिलाने के बाद इस मिश्रण को छाया में रख दें। 48 घंटे छाया में रखने के बाद यह मिश्रण इस्तेमाल करने के लिए तैयार हो जायेगा। एक एकड़ जमीन लिए 200 लीटर जीवामृत की जरुरत होती है और फसलों में महीनें में दो बार जीवामृत का छिड़काव देना होता है। किसान इसको सिंचाई के पानी में मिलाकर भी फसलों को दें सकते हैं।

बीजामृत: बीजामृत का इस्तेमाल नए पौधे के बीज रोपण के दौरान किया जाता है और बीजामृत की मदद से नए पौधों की जड़ो को मजबूत तथा मिट्टी से पैदा होने वाली बीमारियों से बचाया जाता है। इसे बनाने के लिए गाय का गोबर, एक शक्तिशाली फफूंदीनाशक, गौमूत्र, निम्बू और मिट्टी का इस्तेमाल किया जाता है। किसी भी फसल को बोने से पहले उन बीजों में अच्छे से बीजामृत लगा दें और कुछ देर उन बीजों को सूखने के लिए छोड़ दें तथा सूखने के बाद जमीन में बुवाई कर दें।

आच्छादन-मल्चिंग: मिट्टी की नमी बनाये रखने के लिए और उसकी प्रजनन क्षमता को बनाये रखने के लिए मल्चिंग का प्रयोग करते हैं। इस प्रक्रिया के अंदर मिट्टी की सतह पर कई तरह की सामग्री को लगाया जाता है। मल्चिंग तीन प्रकार की होती है- मिट्टी मल्च, भूसा मल्च और लाइव मल्च।

मिट्टी मल्च: मिट्टी के आसपास और मिट्टी इकट्ठा करके रखा जाता है, ताकि मिट्टी की जल प्रतिधारण क्षमता को और अच्छा बनाया जा सके अथवा खेती के दौरान मिट्टी की ऊपरी सतह को कोई नुकसान न पहुंचे।

भूसा मल्च: भूसा सबसे अच्छी मल्च सामग्री है। किसान चावल के भूसे और गेहूं के भूसे का उपयोग करके अच्छी फसल पा सकता है और मिट्टी की गुणवत्ता को भी सही रख सकता है।

लाइव मल्चिंग: इस प्रक्रिया के अंदर एक खेत में एक साथ कई तरह के पौधे लगाए जाते हैं और ये सभी पौधे एक दूसरे को बढ़ने में मदद करते हैं। ऐसे दो पौधों को एक साथ लगा दिया जाता है जिनमे से कुछ ऐसे पौधे होते हैं जो कि कम धूप लेने वाले पौधों को अपनी छाया प्रदान करते हैं और ऐसे पौधे का अच्छे से विकास हो पाता है।

व्हापासा: पौधों को बढ़ने के लिए अधिक पानी की आवश्कता नहीं होती है और पौधे व्हापासा यानि भाप की मदद से भी बढ़ सकते हैं। व्हापासा वह स्थिति है जिसमें हवा अणु होती है और इन दोनों अणु की मदद से पौधे का विकास हो जाता है।

शून्य बजट प्राकृतिक खेती के फायदे

कम लागत: शून्य बजट प्राकृतिक खेती तकनीक के अतंर्गत किसान को किसी भी प्रकार के रासायनिक और कीटनाशक तत्वों को खरीदने की जरुरत नहीं पड़ती है और इस तकनीक में किसान केवल अपने द्वारा बनाई गई चीजों का इस्तेमाल करता है, जिसके चलते इस प्रकार की खेती करने के दौरान कम लागत लगती है।

जमीन के लिए फायदेमंद: आजकल किसान अपनी फसल को किसी भी प्रकार की बीमारी या कीड़े से बचाने के लिए अलग अलग प्रकार के रासायनिक और कीटनाशकों का छिड़काव करते हैं। इसके कारण जमीन के उपजाऊपन को नुकसान पहुँचता है और कुछ समय बाद फसलों की पैदावार भी अच्छे से नहीं हो पाती है। मगर शून्य बजट प्राकृतिक खेती से जमीन का उपजाऊपन बना रहता है और फसलों की पैदावार भी अच्छी होती है।

मुनाफा ज्यादा: शून्य बजट प्राकृतिक खेती के तहत केवल खुद से बनाई कई खाद का इस्तेमाल किया जाता है और ऐसा होने से किसानों को किसी भी फसल को उगाने में कम खर्चा आता है और कम लागत लगने के कारण उस फसल पर किसानों को अधिक मुनाफा होता है।

अच्छी पैदावार: शून्य बजट प्राकृतिक खेती के द्वारा जो फसल उगाई जाती है उसकी पैदावार अच्छी होती है। यदि किसानों को यह लगता है कि शून्य बजट प्राकृतिक खेती के तहत खेती करने से फसलों की पैदावार कम होगी तो एसा बिलकुल नहीं है।

उत्पाद की गुणवत्ता बढ़ती है: शून्य बजट प्राकृतिक खेती से पैदावार की गुणवत्ता बढ़ती है, क्योंकि इस तकनीक में किसी भी रासायनिक उर्वरको एवं कीटनाशकों का प्रयोग नहीं होता है। इस तकनीक में केवल प्राकृतिक चीजो का ही प्रयोग किया जाता है जिससे फसल की गुणवत्ता अच्छी होती है और इसका सेवन करने से किसी भी प्रकार की बीमारी से ग्रस्त होने का खतरा नहीं होता है। इन प्रकार यह कहा जा सकता है कि शून्य बजट प्राकृतिक खेती किसानों के लिए अत्यधिक लाभदायक है। अतः किसानों को शून्य बजट प्राकृतिक खेती अपनाने की आवश्यकता है।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

मृदा संकेतकों का मृदा स्वास्थ्य एवं मृदा गुणवता में योगदान

सुमन ढाका (स्नातकोत्तर छात्र) मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन, कृषि महाविद्यालय, स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर (राजस्थान)

पंकज कुमार कसवां वरिष्ठ अनुसंधान अध्येता, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर, जयपुर

गुलाब चौधरी एवं पिन्टु चॉवला विद्यावाचस्पति उद्यान विज्ञान, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर, जयपुर (राजस्थान)

कृषि में उपयोग होने वाली निवेशित उत्पादक सामग्री (इनपुट) के गैर.विवेकपूर्ण उपयोग व प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक दोहन के कारण फसल की उत्पादकता और मिट्टी की गुणवत्ता को बनाए रखने के लिए एक बड़ा खतरा बन गया है। मृदा के क्षरण के कारण विभिन्न प्रकार की हानिया होती है पर पोषक तत्वों की आपूर्ति क्षमताए मृदा की उत्पादन क्षमता और मृदा कार्बनिक पधार्थ की मात्रा में बहुत कमी आती है। पर्याप्त मात्रा में फसल या पशु अवशेषों को पुनर्चक्रण किए बिना निरंतर फसल उत्पादन करते रहने के कारण मृदा में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा के स्तर में लगातार गिरावट आ रही है जिसके कारण मृदा का स्वास्थ्य खराब होता जा रहा हैं और फसल की उत्पादकता में गिरावट आ रही है अतरू हमें आवश्यक है की सतत कृषि अनापते हुए मृदा गुणवत्ता और मृदा स्वास्थ्य का प्रभंद किया जाये।

मृदा गुणवत्ता क्या है: मृदा की वह क्षमता जो प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्र में पौधों और पशओ की उत्पादकता को बनाए रखने के साथ साथ पानी और वायु की गुणवत्ता को या तो उसको बढ़ाना या बनाए रखने और साथ ही मानव स्वास्थ्य एवम उनके निवास स्थान को स्वच्छ बनाये रखना।

मृदा स्वास्थ्य क्या है: मृदा के पारिस्थितिकी तंत्र में सूक्ष्म जीवो व पादपो के जीवन को सतत बनाये रखना ही मृदा स्वास्थ्य कहलाता है।

एक स्वस्थ व गुणवत्ता युक्त मृदा के लक्षण

मृदा की भोतिक दशा: मृदा की भोतिक दशा फसल उत्पादन के अनुसार होनी चाहिए जिसमे मिट्टी भुरभुरी होनी चाहिए अच्छी संरचना के साथ-साथ कार्बनिक पधार्थ युक्त व बड़े और सख्त ढेले नहीं होना चाहिए।

मृदा की पर्याप्त गहराई: पर्याप्त गहराई से तात्पर्य मिट्टी प्रोफाइल की वह गहराई जिसमें पादप का अंकुरण सही ढंग से हो सके एवम उसकी जड़ो का सही से विकास हो सके जिससे वह मृदा में उपस्थित नमी व पादप पोषक तत्वों को ग्रहण करने में सक्षम हो सके अगर उथली गहराई वाली मृदा होती है तो एक संघनन परत का निर्माण होता है जिसके कारण पानी मृदा के अन्दर प्रवेश नहीं करता है जिसके कारण विभिन्न प्रकार की व्याधिया उत्पन्न होती है जेसे पानी मृदा की सतह पर एकत्रित हो जाता है जिससे मृदा क्षरण तो

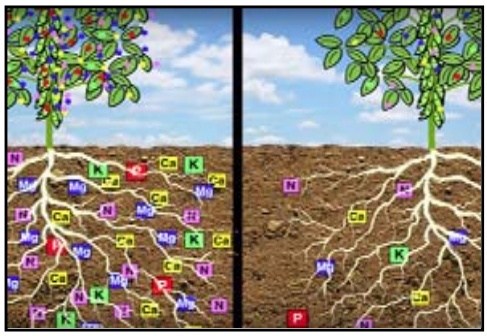

होता ही है साथ ही रोगों और हानिकारक कीटों का आक्रमण भी बढ़ता है इसलिए मृदा की पर्याप्त गहराई आवश्यक है।

मृदा की जल भंडारण क्षमता और जल निकासी की व्यवस्था : जब भारी बारिश होती है तो एक स्वस्थ मृदा में पानी को ग्रहण करने के लिए बड़े व स्थिर छिद्रो का होना आवश्यक है क्योकि इन बड़े छिद्रो के माध्यम से पानी का संचालन होता है और छोटे छिद्रो में जो जल संग्रहित किया जाता है उसका उपयोग पादप बाद में करता है। जब बारिश नहीं होती है तब यह छिद्र खाली रहते है और पौधों और मिट्टी के लिए ताजी हवा का आवागमन होता रहता है पौधों और मिट्टी को तो फायदा होता ही है साथ ही साथ मृदा में उपस्थित सूक्ष्म जीवो के लिए भी लाभदायक है।

मृदा की पोषक तत्वों की आपूर्ति क्षमता: मृदा की पोषक तत्वों की आपूर्ति क्षमता इस प्रकार से होनी चाहिए की पादपो की वृद्धि व विकास के लिए पोषक तत्वों को संतुलित बनाए रखने के साथ-साथ पर्याप्त और सुलभ आपूर्ति के साथ पौधो को उपलब्ध कराएं। पोषक तत्वों की अधिकता हो जाने से निक्षालन, भूजल को प्रदूषित करना, पोषक तत्व का अपवाहए विषाक्तता पौधों और माइक्रोबियल समुदायों के लिए भी हानिकारक है ।

रोगजनक और कीट: कृषि उत्पादन प्रणालियों में फसलों में रोगो और कीटों के कारण बहुत अधिक नुकसान होता है द्य स्वस्थ मृदा में रोगजनकों व हानिकारक कीटो की आबादी या तो कम होती है या इनकी सक्रियता कम होती है अगर इन रोगजनकों व हानिकारक कीटो की आबादी अधिक होने से यह फसल को नुकसान पहुंचाने के साथ-साथ पोषक तत्वों अन्य लाभदायक मृदा के सूक्ष्म जीवों से या निवास स्थानए अतिपरजीविता आदि के साथ प्रतिस्पर्धा करते है जिससे लाभदायक मृदा के सूक्ष्म जीवों व फसल को सीधा नुकसान होता है

खरपतवार: फसल उत्पादन में खरपतवार एक प्रमुख बाधा है जो की पानीए पोषक तत्वोंए सूरज की रोशनी तथा अंकुरण के लिए आवश्यक स्थान के लिए फसलों से प्रतिस्पर्धा करते है जिससे फसल उत्पादन प्रभावित होता है साथ ही साथ जब खरपतवारो के बीज फसल के बीजो के साथ मिल जाते है तो फसल की गुणवत्ता को ख़राब करता है। अतः एक स्वस्थ व गुणवत्तायुक्त मृदा में खरपतवारों की समस्या बहुत ही कम आती आती है।

लाभदायक सूक्ष्म जीव: एक स्वस्थ व गुणवत्तायुक्त मृदा में मृदा के सूक्ष्म जीवों की संख्या बहुत अधिक पाई जाती है जो की मृदा में विभिन्न कार्य करते है जैसे पोषक तत्वों के पुनःचक्रण करने में, कार्बनिक खाद के अपघटन मेंए मृदा संरंचना को सुधारना व नियमित बनाये रखना तथा हानिकारक सूक्ष्म जीवों व कीटो को भी पनपने नही देते है।

क्षरण के लिए प्रतिरोधी: एक स्वस्थ मृदा प्रतिकूल घटनाओं अत्यधिक हवा और बारिश से कटावए अधिक वर्षाए अत्यधिक सूखाए रोगो के प्रकोप से और अन्य संभावित प्रतिकूल घटनाये से प्रतिरोधी होती है द्य

स्वस्थ व गुणवत्ता मृदा के संकेतक

मृदा संकेतक क्या है: मृदा की भौतिकए रासायनिक और जैविक गुणों की विशेषताओ के बारे में बताने वाले कारक जिन्हें मिट्टी में परिवर्तन की निगरानी के लिए मापा जा सकता है मृदा संकेतक कहलाते है ।

दृश्य सूचक: ऐसे सूचक जो खेत में सीधे देखे जा सकते है दृश्य सूचक कहलाते है जैसे मृदा का रंगएखेत में बनी नालिया, खरपतवारो की आबादीए पादपो की अनुक्रियाएं मिट्टी का उड़ाना आदि को खेत में सीधे देखा जा सकता है।

भौतिक सूचक: ऐसे सूचक जो मृदा के कणों व कणों की संरचना के ऊपर निर्भर करते है भौतिक सूचक कहलाते है यह सूचक मुख्य रूप से मृदा की जल धारण क्षमता व जड़ के विकास का निर्धारण करती है यह मापदंड इस प्रकार हैं जैसे स्थूल घनत्वए सतह मृदा की गहराईए सरंध्रताए मृदा कणों की स्थिरताए मृदा कणाकार व भू पपड़ी का निर्माण आदि भोतिक सूचकों के अंतर्गत आते है।

रासायनिक सूचक : ऐसे सूचक जो पादप की वृद्धि एवं विकास में सहायक मृदा पोषक तत्वों व मृदा की स्थति के बारे में बताते है रासायनिक सूचक कहलाते है जैसे-मृदा पी.एच., लवणता, कार्बनिक पदार्थ की मात्रा, उपलब्ध नत्रजन, फॉस्फोरस, पोटेशियम, सल्फर, आयरन, ताम्ब, जिंकए मेगनिज व बोरोन आदि रासायनिक सूचकों के अंतर्गत आते है।

जैविक सूचक: ऐसे सूचक जो मृदा में उपस्थित लाभदायक सूक्ष्म जीवों के बारे में सूचना देते है जैविक सूचक कहलाते है जैसे मृदा में उपस्थित सूक्ष्म जीवों; मुख्यतया फंजाई, एक्टिनोमायसीटीस व बैक्टीरिया) की आबादीए मृदा एंजायम की क्रिया विधि आदि जैविक सूचकों के अंतर्गत आते हैं।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

जलवायु परिवर्तन का कृषि पर प्रभाव एवं कम करने के उपाय

अतुल गालव
विषय वस्तु विशेषज्ञ (कृषि मौसम विज्ञान)
डॉ. दीपक चतुर्वेदी वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष
शीशपाल वरिष्ठ अनुसंधान अध्येता (प्रसार शिक्षा)
कृषि विज्ञान केन्द्र जैसलमेर, (राजस्थान)

जलवायु परिवर्तन लंबे समय तक चलने वाला परिवर्तन है (अर्थात, दशकों से) मौसम के पैटर्न के सांख्यिकीय वितरण में जो एक पारिस्थितिकी के लिए बड़ी समस्या है और अपने जहरीले स्तर के साथ लंबे समय तक बना रहता है। यह सर्वविदित तथ्य है कि ग्रीनहाउस गैस (जीएचजी) उत्सर्जन जलवायु परिवर्तन का ही भाग है। कृषि जलवायु परिवर्तन का लक्ष्यकर्ता और योगदानकर्ता दोनों है।

कृषि ग्रीन हाउस गैसों का दूसरा सबसे बड़ा स्त्रोत है(19.6% कुल उत्सर्जन) (FAOSTAT) ,2014 में भारत के अंदर उत्सर्जीत कुल ग्रीन हाउस गैसों में 3402 मिलियन मीट्रिक टन कार्बन डाई ऑक्साइड था जो कुल वैश्विक ग्रीन हाउस गैस का 6.55% था (www.climatelinks.org), इसका मुख्य कारण है रसायनों का उपयोग ,उर्वरक, कम पोषक तत्व उपयोग-दक्षता वाले कीटनाशक, एंटेरिक किण्वन, प्रत्यारोपित चावल की खेती आदि7 इसके अतिरिक्त, 1/3 विश्व स्तर पर उत्पादित भोजन जलवायु परिवर्तन के कारण या तो खत्म हो जाता है या बर्बाद हो जाता है। (www.worldbank.org) जलवायु लचीलापन को आम तौर पर एक सामाजिक-पारिस्थितिक तंत्र के लिए अनुकूली क्षमता के रूप में परिभाषित किया जा सकता हैजलवायु परिवर्तन द्वारा उस पर लगाए गए बाहरी दबावों के मुकाबले तनावों को अवशोषित और कार्य को बनाए रखना औरअनुकूलन, पुनर्गठन, और अधिक वांछनीय विन्यासों में विकसित होना जो सिस्टम की स्थिरता में सुधार करते हैं, जिससे यह भविष्य के जलवायु परिवर्तन प्रभावों के लिए बेहतर तैयार हो जाता है।

कृषि पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव: आज इस दुनिया में शायद ही कोई ऐसा होगा जिस पर जलवायु परिवर्तन का कोई प्रभाव न पड़ा हो जिसमे कृषि विशेष रूप से जलवायु परिवर्तन के प्रति संवेदनशील है। जलवायु परिवर्तन के विभिन्न प्रकार के खतरे है उनमे है बढता तापमान ,कार्बन दी ऑक्साइड एवं वर्षा जो प्रत्यक्ष रूप से पोधे की वृधि को एवं अप्रत्यक्ष रूप से भूमि की उपलब्धता, सिंचाई, खरपतवार वृद्धि, कीट और रोगों द्वारा प्रकोप आदि को प्रभावित करते है। जलवायु परिवर्तन में हर किसी को चोट पहुँचाने की क्षमता है, लेकिन किसानों के इसकी चपेट में आने की संभावना सबसे अधिक रहती है और वे इससे सर्वाधिक प्रभावित होते भी हैं। भारत में कृषि प्रमुखतः मौसम पर आधारित है और जलवायु परिवर्तन की वजह से होने वाले मौसमी बदलावों का इस पर बेहद असर पड़ता। 1970 के बाद से वैश्विक औसत तापमान 1.7°C प्रति शताब्दी की दर से बढ़ रहा है। उच्च तापमान फसलों की गुणवत्ता और उपज को कम कर देता है और यह खरपतवार और कीट प्रसार को भी प्रोत्साहित करता है। गर्मी तनाव के कारण फसले जल्दी परिपक्वता की और चली जाती है जिससे उनकी उपज में कमी आ जाती है। औसत तापमान में 1°c वृद्धि के परिणामस्वरूप चावल जैसे C3 पौधे की अनाज उपज में 6% (सर्सीद्रन।, 2000) वहीं गेहूं, सोयाबीन, सरसों, मूंगफली, आलू में 3 से 7% की गिरावट दर्ज की गयी है। उत्तर-पश्चिमी भारत

में विशेष रूप से गेहूँ के तापमान में हर 1 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि से उपज में 4 एम .टी. की कमी आती है। वर्षा के पैटर्न में परिवर्तन अल्पकालिक फसल की विफलता की संभावना को और लंबे समय तक उत्पादन में गिरावट को बढ़ाता है । वर्षा के पैटर्न में बदलाव किट -लाभकारी किट के बिच की परस्पर क्रिया को बदल देता है , वर्षा के पैटर्न में बदलाव से पानी की उपलब्धता में बदलाव होगा जो खरपतवारो को बढ़ावा देगा इस प्रकार से कृषि रसायनों के प्रयोग की दर बढ़ेगी जो पर्यावरण प्रदूषण को बढ़ावा देगा। है।किसान हर साल चाहता है की उसकी फसल की उत्पादन प्रणाली में कम विभिन्नता के साथ उपज अच्छी आये पर हर साल बड़ते सूखे एवं बाढ़ की वजह से उसके उत्पादन में बहुत अधिक विभिन्नता के साथ कम उपज हो रही है। सूखे के कारण उपलब्ध पशुओ के चारे की गुणवत्ता भी कम हो जाती है

जलवायु परिवर्तन का कृषि पर निम्न प्रभाव पड़ रहे हैं जिससे किसानो की चिंताए बढ़ रही हैं-

- असमान वर्षा होने की वजह से हमारे देश में फसलों का खराब होना आम बात है। कई गाँवों में देखने को मिलता है कि हरियाली का नामो-निशान तक नहीं है और किसानों के लिये पशुओं का पेट भर पाना एक बड़ी चुनौती बन गया है।
- होने वाले नए परिवर्तनों को तुरंत अपनाने में समस्या उत्पन्न होती है। हर मौसम में किसान अलग-अलग फसल लेते हैं या उनका सम्मिश्रण करते हैं। बोरवेल, ट्रैक्टर तथा अन्य कृषि मशीनरी पर उन्हें भारी खर्च करना पड़ता है। • फसल के लगातार प्रभावित होने की वजह से ऐसे किसानों की संख्या तेज़ी से बढ़ रही है, जो गाँव में अपनी खेती की ज़मीन छोड़कर निकटवर्ती शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं। शहरों में इन किसानों को केवल मज़दूरी का ही काम मिल पाता है क्योंकि उनके पास किसी भी प्रकार का कौशल नहीं होता।
- भारत में मानसून की अच्छी वर्षा होतीहै, लेकिन बढ़ते तापमान की समस्या से भी देश को दो-चार होना पड़ता है।
- भारत में 120 मिलियन हेक्टेयर ऐसी भूमि है, जो किसी-न-किसी प्रकार की कमी (Degradation) से ग्रस्त है। लघु तथा सीमांत किसान इससे सर्वाधिक प्रभावित होते हैं।
- कृषि की मौसम पर अत्यधिक निर्भरता की वजह से फसलों पर लागत अधिक आती है, विशेषकर मोटे अनाजों की फसलों पर, जिनकी खेती अधिकतर उन क्षेत्रों में होती है जो वर्षा पर निर्भर होते हैं।
- अनुमान लगाया है कि आने वाले 80 वर्षों में खरीफ फसलों के मौसम में औसत तापमान में 0.7 से 3.3एष्ट की वृद्धि हो सकती है। इसके साथ वर्षा भी कमोबेश प्रभावित होगी, जिसकी वजह से रबी के मौसम में गेहूँ की उपज में 22% की गिरावट आ सकती है तथा धान का उत्पादन 15% तक कम हो सकता है।

जलवायु परिवर्तन के कृषि पर प्रभाव कम करने के उपाय

वर्षा जल के उचित प्रबन्धन द्वारा: तापमान वृधि के साथ फसलो मे सिंचाई की अधिक आवश्यकता पड़ती है। ऐसे मे जमींन का सरक्षण व वर्षा जल को एकत्रित करके सिंचाई हेतु प्रयोग मे लाना एक सहयोगी एवं उपयोगी कदम हो सकता है। वाटर शेड प्रबन्धन के माध्यम से हम वर्षा जल को सिंचित कर सिंचाई के रूप मे प्रयोग कर सकते है। इससे हमे जहा एक और हमे सिंचाई की सुविधा मिलेगी वही दूसरी और भू जल पुनभरण मे भी मदद मिलती है।

जैविक एवं समग्रित खेती: खेती मे रासायनिक खादों व कीटनाशको के इस्तेमाल से जहा एक और मृदा की उत्पादकता घटती है वही दूसरी और इनकी मात्र भोजन श्रंखला के माध्यम से मानव शरीर मे पहुच जाती है। जिससे अनेक प्रकार की बिमारिया होती है। रासायनिक खेती से हरित गेसो के उत्सर्जन मे भी इजाफा होता है अंतः हमें जैविक खेती करने की तकनीको पर अधिक से अधिक जोर देना चाहिए। एकल कृषि के बजाय समग्रित खेती मे जोखिम कम होता है। समग्रित खेती मे अनेक फसलो का उत्पादन किया जाता है जिससे यदि एक फसल किसी प्रकोप से समाप्त हो जाये थो दूसरी फसल से किसान की रोजी रोटी चल सकती है।

मौसम पूर्वानुमान द्वारा: जलवायु परिवर्तन के इस दौर मे किसान भाई मौसम के पूर्वानुमान के द्वारा आंधी, तूफ़ान एवं असमय वर्षा होने से होने वाले नुक्सान को कम कर सकते है। इसके लिए मौसम विभाग द्वारा किसान भाइयो के लिए संभाग स्तर पर कृषि विश्वविद्यालयों मे कृषि मौसम क्षेत्र इकाई एवं जिले स्तर पर प्रत्येक कृषि विज्ञान केन्द्र पर जिला कृषि मौसम इकाई की स्थापना की गयी है जिससे किसान भाई हर मंगलवार एवं शुक्रवार को मौसम आधारित कृषि सलाह बुलेटिन व्हाट्स उप द्वारा प्राप्त कर असमय मौसम मे आने वाले परिवर्तन से किसान भाई उनकी फसलो मे होने वाले नुक्सान को समय रहते कम कर सकते हैं।

फसल उत्पादन मे नयी तकनीको का विकास: जलवायु परिवर्तन के साथ साथ हमें फसलो के प्रारूप एवं उनके बीज बुने के समय मे भी परिवर्तन करना होगा। पारम्परिक ज्ञान एवं नयी तकनीको के समन्वयन तथा समावेश द्वारा वर्षा जल सरक्षण एवं कृषि जल का उपयोग मिश्रीत खेती व इन्टरक्रॉपिंग करके जलवायु परिवर्तन के खतरों से निपटा जा सकता है। कृषि वानिकी अपनाकर भी हम जलवायु परिवर्तन के खतरों से निजात पा सकते है। फसल बिमा के विकल्पों को मुहैया करना ताकि लघु एवं सीमांत किसान इनका लाभ उठा सके।

क्लाइमेट स्मार्ट एग्रीकल्चर: असल मे सीएस तीन आपस मे जुडी हुयी चुनौतियों से निपटने की कोशिश करती हैबी। ; उत्पादकता और आय बढ़ाना, जलवायु परिवर्तन के अनुकूल होना और जलवायु परिवर्तन को कम करने मे योगदान देना। इसका अर्थ हमें खेतो मे डाली जाने वाली चीजो को लेकर ज्यादा योग्य होना होगा। उदहारण के तौर पर सिंचाई को लि लेते हैं-जल के उचित इस्तेमाल के लिए सूक्ष्म सिंचाई को लोकप्रिय बनाना होगा। जलवायु परिवर्तन के अनुकूल होना यह दर्शाता है की खेतो को जलवायु परिवर्तन को झेलने लायक बनाना होगा। उतना ही महत्वपूर्ण है की नीतियों का ऐसा महूल बनाया जाये जो स्थानीय और रास्ट्रीय संस्थानों को मजबूत करें। सीएस के तरीको को अपनाने के लिए किसानो को उनकी भूगोलिक स्तिति के अनुरूप तकनिकी औउर आर्थिक सहायता उपलब्ध कराने की जरूरत है इसमें प्रमुख है जीरो बजट खेती व परम्परागत कृषि विकास योजना जिनको आज भारत मे तेजी से बढ़ावा मिल रहा है यह एक समेकित कृषि प्रणाली है जो रासायनिक उर्वरक और कीटनाशक से दूर रह कर स्थानीय रूप से सतत प्रकृति की होने के कारण यह तरीका खेतो की जलवायु परिवर्तन को झेलने की क्षमता बढ़ने और जलवायु परिवर्तन को कम करने मे काफी कारगर है।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

सौंफ की वैज्ञानिक खेती

अमृतपाल सिंह, डॉ. आर.के. नारोलिया
आत्मा राम मीना और महेश कुमार
स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर (राजस्थान)

सौंफ की व्यावसायिक रूप से एक साल की जड़ी बूटी के रूप में खेती की जाती है। यह वार्षिक जड़ी बूटी यूरोप की मूल निवासी है। सूखने के बाद इसके बीजों का इस्तेमाल ज्यादातर मसाले के काम में किया जाता है। सौंफ फाइबर, विटामिन सी, पोटेशियम का अच्छा स्रोत है इसके दाने आकार में छोटे और हरे रंग के होते है। सौंफ का उपयोग आचार बनाने में और सब्जियों में खुश्बू और जायका बढ़ाने में किया जाता है। इसके आलावा इसका उपयोग औषधि के रूप में भी किया जाता है। सौंफ को पान में डालकर भी चबाया जाता है, सौंफ मे पाचक तथा वायुनाशक दोनों प्रकार के गुण पाए जाते हैं। यह एक त्रिदोष नाशक औषधि है। सौंफ के बीजों से तेल भी निकाला जाता है। इसकी खेती रबी की फसल के रूप में की जाती है। भारत सौंफ का शीर्ष उत्पादक है और राजस्थान, आंध्र प्रदेश, पंजाब, उत्तर प्रदेश, गुजरात, मध्य प्रदेश, कर्नाटक और हरियाणा प्रमुख सौंफ उत्पादक राज्य हैं।

सौंफ की अच्छी उपज के लिए शुष्क और ठण्डी जलवायु उपयुक्त रहती है। बीजों के अंकुरण के लिए 20 से 29 डिग्री सेल्सियस तापमान सही रहता है तथा फसल की अच्छी बढ़वार के लिए 15 से 20 डिग्री सेल्सियस तापमान उपयुक्त रहता है। 25 डिग्री सेल्सियस से अधिक तापमान फसल की बढ़वार को रोक देता है। फसल के पुष्पन अथवा पकने के समय आकाश में लम्बे समय तक बादल रहने से तथा हवा मे अधिक नमी रहने से फसल मे झुलसा बीमारी तथा माहू कीट के प्रकोप की संभावना बढ़ जाती है। सौंफ की खेती लगभग सभी प्रकार की भूमि में की जा सकती है। कार्बनिक पदार्थों से भरपूर सभी मिट्टी सौंफ की खेती के लिए उपयुक्त है। यह सबसे अच्छा परिणाम देता है जब सौंफ की खेती के लिए दोमट मिट्टी में उगाया जाता है। सौंफ की खेती के लिए उथली मिट्टी से बचें। मिट्टी का पी एच 6.5 से 7 की सीमा में होना चाहिए।

सौंफ की उन्नत किस्में

राजस्थान फेनिल-101: श्री कर्ण नरेन्द्र शिष महाविद्यालय जोबनेर (जयपुर) की इस किस्म के पौधे बड़े सीधे और मजबूत तने वाले होते हैं। यह किस्म 150-155 दिनों में पककर तैयार हो जाती है तथा इसकी औसत उपज 15-18 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है

राजस्थान फेनिल -125: श्री कर्ण नरेन्द्र शिष महाविद्यालय जोबनेर (जयपुर) की इस किस्म के पौधे छोटे होते हैं। यह जल्दी पकने बाली किस्म है। इस किस्म की पैदावार 17-18 क्विं. प्रति हे. प्राप्त होती है।

राजस्थान फेनिल -143: यह आरएयू, जोबनेर द्वारा विकसित किया गया है, यह प्रति हेक्टेयर 12 क्विंटल बीज उपज देता है।

राजस्थान सौंफ -205: सौंफ इस किस्म को आरएयू, जोबनेर द्वारा विकसित किया गया था और 2009 में जारी किया गया था। यह 29.45 क्विं. प्रति हे. बीज देता है। यह अधिकतम उपज देने वाली किस्म है।

गुजरात सौंफ-1: मसाला अनुसन्धान केन्द्र जगुदन (गुजरात) की इस किस्म के पौधे लम्बे फैले हुए झाड़ीनुमा होते हैं। यह किस्म शुष्क परिस्थिति हेतु उपयुक्त है। इस किस्म को पकने में लगभग 200 दिन लगते हैं। पैदावार 16 क्विंटल प्रति हेक्टेयर होती है।

अजमेर सौंफ-1: (एन. आर. सी. एस. एस.) राष्ट्रीय बीजीय मसाला अनुसन्धान केंद्र, अजमेर इस किस्म का पौधा बड़ा शाखाओं युक्त होता है। यह किस्म 180-190 दिनों में पककर तैयार हो जाती है तथा 20-22 क्विंटल प्रति हेक्टेयर उपज प्राप्त होती है।

खाद एवं उर्वरक: यदि संभव हो तो खाद तथा उर्वरक की मात्रा मिट्टी की जांच कराने के बाद ही देनी चाहिए। सौंफ फसल की अच्छी पैदावार लेने हेतु 150-200 क्विंटल सड़ी हुई गोबर की खाद को बुवाई से एक महीने पहले खेत में अच्छी तरह से मिला दें। इसके अलावा 90 किलोग्राम नत्रजन, 60 किलोग्राम फॉस्फोरस, 40 किलोग्राम पोटाश तत्व में तथा 25 किलोग्राम जिंक सल्फेट प्रति हेक्टेयर देना चाहिए। नत्रजन की आधी मात्रा फॉस्फोरस, पोटाशतथा जिंक सल्फेट की पूरी मात्रा खेत की तैयारी के समय आखिरी जुताई के समय देना चाहिए तथा शेष नत्रजन की मात्रा दो भाग में बुवाई के 60 दिन बाद तथा 90 दिन बाद खड़ी फसल में देनी चाहिए।

बुवाई का समय: सौंफ एक लम्बी अवधि में पकने वाली फसल है। अतः रबी की शुरूआत में बुवाई करना अधिक उपज के लिए लाभदायक होता है। सौंफ को सीधा खेत में या पौधशाला में पौध तैयार करके रोपाई की जा सकती है। सौंफ की बुवाई के लिए अक्टूबर का प्रथम सप्ताह सर्वोत्तम होता है। नर्सरी विधि से बोने पर नर्सरी में बुवाई जुलाई से अगस्त माह में की जाती है तथा 45 से 60 दिन के बाद पौध की रोपाई कर दी जाती है।

बीज दर: सौंफ की बुवाई सीधे बीज द्वारा करने पर 10 किलोग्राम बीज प्रति हेक्टेयर की आवश्यकता होती है। परन्तु नर्सरी में सौंफ की एक हेक्टेयर खेत के लिए पौध तैयार करने हेतु 2.5 से 3.0 किलोग्राम बीज की आवश्यकता पड़ती है।

बीजोपचार: बीज जनित रोगों से बचाव के लिए सौंफ के बीज को बोने से पहले बीज का ट्राईकोडर्मा विरिडी 2-3 ग्राम प्रति किलोग्राम के अनुसार उपचारित करके ही बुवाई करें।

सौंफ की बुवाई के तरीके: बीज से सीधी बुवाईः सीधी बुवाई के अंतर्गत बीज को तैयार खेत मे सीड ड्रिल द्वारा 45 सेंटीमीटर की दूरी पर बुवाई करते हैं। बीज को 2-4 सेंटीमीटर की गहराई पर डालें। लगभग 10-12 दिनों बाद बीजों का अंकुरण होना शुरू हो जाता है। यदि सौंफ के बीजों को भिगोकर बोया जाए तो उनका अंकुरण आसानी से शीघ्र होता है।

रोपण विधि: रोपण विधि के लिए जुलाई के महीने में सौंफ की नर्सरी तैयार करते हैं। नर्सरी में सौंफ की पौध लगभग 40-45 दिनों में रोपाई करने हेतु तैयार हो जाती हैं। पौध को तैयार खेत में 40-60 सेंटीमीटर की दूरी पर लाइनों में रोपाई करें। पौधे से पौधे की दूरी 20 सेंटीमीटर रखनी चाहिए।

सिंचाई: सौंफ को औसतन 7 से 9 सिंचाईयों की जरूरत पड़ती है। यदि प्रारम्भ में मृदा में नमी की मात्रा कम हो तो बुवाई या रोपाई के तुरन्त बाद एक हल्की सिंचाई करनी चाहिए। पहली सिंचाई के 8 से 10 दिन बाद दूसरी सिंचाई की जा सकती है, जिससे अंकुरण अच्छे से हो सके। उपरोक्त दो सिंचाईयों के बाद मृदा की जलधारण क्षमता, फसल की अवस्था व मौसम के अनुसार 10 से 20 दिन के अन्तराल पर सिंचाई करनी चाहिए।

खरपतवार नियन्त्रण: यदि समय पर खरपतवारों का नियंत्रण न किया जाये तो फसल में लगभग 25-30 प्रतिशत तक उपज कम हो जाती है। सौंफ की बढ़वार प्रारम्भ में धीमी गति से होती है। इसलिए इसको खरपतवारों से पोषक तत्वों, पानी और प्रकाश के लिए अधिक प्रतियोगिता करनी पड़ती है। अतः फसल को खरपतवारों द्वारा होने वाली हानि से बचाने के लिए कम से कम दो या तीन बार निराई-गुड़ाई के 25 से 30 दिन बाद तथा दूसरी 60 दिन बाद करनी चाहिए। सौंफ में रासायनिक खरपतवार नियंत्रण के लिए पेन्डीमेथालिन 1.0 किलोग्राम सक्रिय तत्व बुआई के पश्चात् तथा अंकुरण से पूर्व 500 से 600 लीटर पानी में घोल बनाकर मिट्टी पर छिड़काव करना चाहिए।

फसल की कटाई: फसल की कटाई सौंफ के आवश्यक उत्पाद के हिसाब से की जाती है। उत्तम किस्म चबाने के काम आने वाली लखनवी सौंफ छत्रको को परागण के 30 से 40 दिन बाद, जब दानो का आकार पूर्ण विकसित दानों की तुलना में आधा होता है काटकर साफ जगह पर छाया में फैलाकर सुखाना चाहिए। उत्तम गुणवत्ता वाली सौंफ पैदा करने के लिए दानों के पूर्ण विकसित होते ही काट लेना चाहिए। कटे छत्रकों को छाया में सुखाने के बाद मंडाई आरै औसाई करके बीजों को अलग कर लेना चाहिए।

उपज: औसतन 15 से 23 क्विंटल प्रति हेक्टेयर सौंफ की उपज प्राप्त होती है।

कीट तथा बीमारियां

कर्तन कीट: कर्तन कीट कुछ प्रभवित क्षेत्रों में अधिक पाया जाता है। लार्वा मिट्टी के अंदर पौधों की सतह के पास पाया जाता है। वे दिन के दौरान मिट्टी के नीचे छिपे रहते हैं और रात में मिट्टी की सतह से बहार आ जाते हैं। रात में लार्वा भूख से पीड़ित होकर कोमल पत्तियाँ व तने और शाखाओ को खा जाता है।

रोकथाम: इस कीट के नियंत्रण हेतु नियमित रूप से खेत का निरीक्षण करना चाहिए। इसके नियंत्रण हेतु फोरेट 10 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर तथा मिथाइल पेराथियॉन धूल 25 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करना चाहिए।

मोयला (माहू): मोयला (माहू) सौंफ की फसल का एक प्रमुख कीट है और गंभीर क्षति के कारण फसल पैदावार व बीज गुणवत्ता में कमी होती है। इस कीट के भारी प्रकोप से फसल में 50 प्रतिशत तक उपज में नुकसान देखा गया है। निम्फ और वयस्क कोमल पत्तियों से रस चूसते हैं, जिससे वे कमजोर होकर सूख जाते हैं। नतीजन पौधों की वृद्धि अवरूद्ध होने से दानों की गुणवत्ता व मात्रा दोनों ही प्रभावित होती है।

रोकथाम: उर्वरक और सिंचाई की सिफारिश की गई मात्रा ही देनी चाहिए क्योंकि अत्यधिक नाईट्रोजन व सिंचाई की मात्रा पौधो को रसीला बनाती है, जो मोयला की उच्च संख्या के विकास को बढ़ाता है। जब मोयला की अधिक संख्या हो जाए तो 15 दिन के अंतराल में छिड़काव करनाचाहिए जैसे- डायमिथोएट।

प्रमुख रोग एवं रोकथाम:

कॉलर रॉट: यह रोग उन क्षेत्रों में अधिक दिखाई देता है, जहां पानी का ठहराव पौधे के पास अधिक होता है। पौधो का कॉलर हिस्सा (जड़ के ऊपर) में सड़न या गलन शुरू हो जाती है तथा पीले होकर बाद में मर जाते हैं।

रोकथाम: 1.0 प्रतिशत बोर्डो मिश्रण (3:3:50) के छिड़काव से रोग को नियंत्रित किया जा सकता है। खेत को पानी के ठहराव से बचाना चाहिए।

रेमुलेरिया झुलसा (रमुलेरिया ब्लाइट): यह बीमारी रेमुलेरिया फोइनीकुली नामक कवक के

कारण होती है। शुरु में छोटे-छोटे पीले धब्बे पत्तियो पर तथा बाद मे पौधे पर दिखाई देते हैं। ये धब्बे बढ़कर भूरे रंग में बदल जाते हैं। गंभीर अवस्था मे पूरा पौधा सूख कर मर जाता है।

रोकथाम: प्रारंभिक अवस्था में डायथेन एम-45 या डायथेन जेड-78 के 0.2 प्रतिशत घोल का छिड़काव करना चाहिए।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

अदरक की खेती और प्रबंधन

प्रीति देवतवाल (शोधार्थी विद्यावाचस्पति) (सस्य विज्ञान), कृषि विश्वविद्यालय, जोधपुर (राजस्थान)

डॉ. जगदीश चौधरी (सह-आचार्य) सस्य विज्ञान विभाग, महाराना प्रताप कृषि प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, उदयपुर

डॉ. श्रवण कुमार यादव वरिष्ठ अनुसधांन अद्येयता, सस्य विज्ञान विभाग, महाराणा प्रताप कृषि प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

वानस्पतिक नाम जिंजिबर ऑफिसिनेल

एक भूमिगत रूपान्तरित तना है। यह मिट्टी के अन्दर क्षैतिज बढ़ता है। इसमें काफी मात्रा में भोज्य पदार्थ संचित रहता है जिसके कारण यह फूलकर मोटा हो जाता है। अदरक जिंजीबरेसी कुल का पौधा है। अधिकतर उष्णकटिबंधीय (ट्रापिकल्स) और शीतोष्ण कटिबंध (सबट्रापिकल) भागों में पाया जाता है। अदरक दक्षिण एशिया का देशज है किन्तु अब यह पूर्वी अफ्रीका और कैरेबियन में भी पैदा होता है। अदरक का पौधा चीन, जापान, मसकराइन और प्रशांत महासागर के द्वीपों में भी मिलता है। इसके पौधे में सिमपोडियल राइजोम पाया जाता है।

सूखे हुए अदरक को सौंठ (शुष्ठी) कहते हैं। भारत में यह बंगाल, बिहार, चेन्नई,मध्य प्रदेश कोचीन, पंजाब और उत्तर प्रदेश में अधिक उत्पन्न होती है। अदरक का कोई बीज नहीं होता, इसके कंद के ही छोटे-छोटे टुकड़े जमीन में गाड़ दिए जाते हैं। यह एक पौधे की जड़ है। यह भारत में एक मसाले के रूप में प्रमुख है। अदरक यह महत्वपूर्ण मसाले की फसल है। फसल अनुसार उसकी बुवाई मई महिने के पहले पन्धरा दिनों में करते हैं। फसल के लिए गरम वातावरण अच्छा होता है।

अदरक का उपयोग

- सब्जी में तड़का लगाने के लिए अदरक का उपयोग किया जा सकता है।
- अदरक का अचार बनाकर इसे अपने आहार में शामिल किया जा सकता है। यह स्वादिष्ट भी लगेगा और इससे अदरक के फायदे भी हासिल होंगे।
- इसके अलावा, अदरक की चाय बनाकर पी सकते हैं।
- वहीं, अदरक के पाउडर का भी सेवन किया जा सकता है।
- इसके अलावा, अदरक को लंबा और पतला काट कर, फिर इस पर नमक-मिर्च और अपनी पसंद का मसाला लगाकर धूप में सुखा लें। फिर इसे आप कभी भी खा सकते हैं।

उत्पादन

अदरक का उत्पादन, 2018

देश	उत्पादन (टन में)
भारत	893,242
चीन	510,035
नाईजीरिया	369,019
नेपाल	284,000
इण्डोनेशिया	207,412
थाईलैण्ड	167,952
पूरा विश्व	2,785,57

अदरक की खेती: अदरक भारत की एक मुख्य मसाले वाली फसल है। अदरक की पैदावार में भारत सबसे आगे है। कर्नाटक, उड़ीसा, अरूणाचल प्रदेश, असम, मेघालय और गुजरात अदरक पैदा करने वाले मुख्य प्रान्त है।

जलवायु: अदरक की खेती गर्म और आर्द्रता वाले स्थानों में की जाती है। बुवाई के समय मध्यम वर्षा अदरक की गांठों (राइजोम) के जमाने के लिये आवश्यक होती है। इसके बाद थोड़ी ज्यादा वर्षा पौधों को वृद्धि के लिए तथा इसकी खुदाई के एक माह पूर्व सूखे मौसम की आवश्यकता होती हैं। अगेती बुवाई या रोपण अदरक की सफल खेती के लिए अति आवश्यक हैं। 1500-1800 मिमी वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों में इसकी खेती अच्छी उपज के साथ की जा सकती हैं। परन्तु उचित जल निकास रहित स्थानों पर खेती को भारी नुकसान होता है। औसत तापमान 25 डिग्री सेंटीग्रेड, गर्मियों में 35 डिग्री सेंटीग्रेड तापमान वाले स्थानों पर इसकी खेती बागों में अन्तरवर्तीय फसल के रूप में की जा सकती है।

मिट्टी: यह फसल अच्छे जल निकास वाली चिकनी, रेतली और लाल हर तरह की मिट्टी में उगाई जा सकती है। खेत में पानी ना खड़ा होने दें क्योंकि खड़े पानी में यह ज्यादा देर बच नहीं पाएगी। फसल की वृद्धि के लिए 6-6.5 पी एच वाली मिट्टी अच्छी मानी जाती है। उस खेत में अदरक की फसल ना उगाएं जहां पिछली बार अदरक की फसल उगाई गई हो। हर साल एक ही जमीन पर अदरक की फसल ना लगाएं।

खेत की तैयारी: मार्च-अप्रैल में खेत की गहरी जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करने के बाद खेत को खुला धूप लगने के लिए छोड़ दें। मई के महीने में डिस्क हैरो या रोटावेटर से जुताई करके मिट्टी को भुरभुरी बना लेते हैं। अनुशंसित मात्रा में गोबर की सड़ी खाद या कम्पोस्ट और नीम की खली का सामान रूप से खेत में डालकर पुनः कल्टीवेटर या देशी हल से 2-3 बार आड़ी-तिरछी जुताई करके पाटा चलाकर खेत को समतल कर लेना चाहिए। सिंचाई की सुविधा एवं बोने की विधि के अनुसार तैयार खेत को छोटी-छोटी क्यारियों में बांट लेना चाहिए। अंतिम जुताई के समय उर्वरकों को अनुशंसित मात्रा का प्रयोग करना चाहिए। शेष उर्वरकों को खड़ी फसल में देने के लिए बचा लेना चाहिए।

बीज (कन्द) की मात्रा

बीज हेतु 6-8 माह की अवधि वाली फसल में पौधों को चिन्हित करके काट लेना चाहिए। अच्छे किस्म के 2.5-5 सेमी लंबे कंद जिनका वजन 20-25 ग्राम तथा जिनमें कम से कम तीन गाठें हों, प्रवर्धन हेतु कर लेना चाहिए। मैंकोजेव फफूंदी से बीज उपचार करने के बाद ही प्रर्वधन हेतु उपयोग करना चाहिए। अदरक 20-25 क्विंटल प्रकंदध्हैक्टेयर बीज दर उपयुक्त रहता है तथा पौधों की संख्या 140000/हैक्टेयर पर्याप्त मानी जाती है। मैदानी भागों में 15-18 क्विंटल हैक्टेयर बीजों की मात्रा का चुनाव किया जा सकता हैं। चूँकि अदरक की लागत का 40-46 प्रतिशत भाग बीज में लग जाता इसलिये बीज की मात्रा का चुनाव, प्रजाति, क्षेत्र एवं प्रकंदों के आकार के अनुसार ही करना चाहिए।

बुवाई का समय

मध्य एवं उत्तर भारत में अदरक एक शुष्क क्षेत्र फसल है, जो अप्रैल से जून माह तक बुवाई योग्य समय हैं। सबसे उपयुक्त समय 15 मई से 30 मई है। 15 जून के बाद बुवाई करने पर कंद सड़ने लगते हैं और अंकुरण पर बुरा प्रभाव पड़ता है। दक्षिण भारत में अदरक की बुवाई मानसून फसल के रूप में अप्रैल-मई में की जाती है जो दिसम्बर में परिपक्व होती है। केरल में अप्रैल के प्रथम सप्ताह पर बुवाई करने पर उपज 200 प्रतिशत तक अधिक पाई जाती है। वहीं सिंचाई क्षेत्रों में सबसे अधिक उपज फरवरी के मध्य बोने पर पायी जाती है तथा कंदों के जमाने में 80 प्रतिशत की वृद्धि आंकी गई। पहाड़ी क्षेत्रों में 15 मार्च के आस-पास बुवाई की जाने वाली अदरक में सबसे अच्छा उत्पादन प्राप्त होता है।

प्रमुख किस्में

अदरक की कई प्रकार की किस्में होती हैं। इनमें कच्चे अदरक के लिए रियो डी जेनेरियो, चाइना, वायनाड लोकल, टफनगिया, टेली रोल के लिए-रयो डी जेनेरियो, सोंठ के लिए-मारण, वायनाड मैनन, थोड़े, वुल्लूनाटू, अरनाडू आदि प्रमुख हैं।

कटाई तथा खेती से कमाई

अदरक की फसल लगभग 8 से 9 महीने में तैयार होती है। पकने की अवस्था में पौधे की बढ़वार रुक जाती है। पौधे भी पीले पडकर सूखने लगते हैं और पानी देने के बाद भी उनकी वृद्धि नहीं होती। ऐसी फसल खोदने लायक मानी जाती है। अदरक की फसल औसतन 150 से 200 क्विंटल प्रति हेक्टेयर उपज देती है। एक एकड़ में करीब 1 लाख 20 हजार रूपए का खर्च आता है और एक एकड़ में 120 क्विंटल अदरक का उत्पादन हो सकता है। अदरक का बाजार भाव कम से कम 40 रूपए मिल ही जाता है। 1 एकड़ में अगर 40 के हिसाब से लगाएं तो करीब 4 लाख 80 हजार रूपए की आमदनी हो जाती है। इस तरह से 1 एकड़ में सारे खर्च निकाल कर कम से कम 2 लाख 50 हजार रुपए का किसानों को लाभ हो सकता है।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

तरल जैव-उर्वरक

राजू धायल (शोध विद्यार्थी)
राजस्थान कृषि महाविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

लाली जाट (असिस्टेंट प्रोफेसर)
दयानंद कॉलेज, अजमेर (राजस्थान)

रविन्द्र मीना
असिस्टेंट प्रोफेसर, सी.पी.यू., कोटा राजस्थान

जैव-उर्वरक चुनिंदा प्राकृतिक मृदा व वायुमण्डल में पाये जाने वाले लाभदायक सूक्ष्म जीवाणु होते हैं जो नाइट्रोजन के स्थिरिकरण, फास्फोरस, पोटस, जिंक व अनेक अन्य पौधों के पोषक तत्वों की घुलनशीलता में मदद करते हैं। हाल के समय में जैव-उर्वरकों का व्यवसायीकरण के कारण किसानों को उनकी उपयोगिता पूरी तरह समझ आ गई है और उन्होंने इसे स्वीकार किया है।

फसल के लिए नाईट्रोजन और फास्फोरस, पोटस व जिंक उपलब्ध कराने के अतिरिक्त, जैव-उर्वरक वृद्धि प्रेरकों (ग्रोथ प्रमोटर्स) के जरिए फसल की पैदावार भी सुधारते हैं। ये नाईट्रोजन, फास्फोरस, पोटस व जिंग सलफेट के सबसे सस्ते स्रोत हैं और अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं क्योंकि इनसे किसानों की खेती की लागत और साथ ही भारत सरकार के सब्सिडी के बिल घ्ज्ञटते हैं। कृभकों ने भी गजिरा (गुजरात) और बाद में लांजा (महाराष्ट्र) तथा वाराणसी (उ.प्र.) में जैव उर्वरक संयत्रों की स्थापना के साथ 1997 में जैव-उर्वरकों के उत्पादन और विपणन में प्रवेश किया तथा कृभकों ने अपने संयत्रों में तरल जैव-उर्वरक का उत्पादन भी शुरू कर दिया है।

नाईट्रोजन फिक्सिंग करने वाले जैव-उर्वरक: कृभको द्वारा मुख्य रूप से 4 प्रकार के नाइट्रोजन फिक्सिंग करने वाले जैव-उर्वरक तैयार किये जाते हैं।

अज़ोटोबैक्टर (नाइट्रोजनीय) जैव-उर्वरक: ये मिट्टी के स्वतंत्र-जीवन वाले वायुमंडलीय नाइट्रोजन-फिक्सिंग बैक्टीरिया हैं और किसी भी फसल ओर मिट्टी में नाइट्रोजन लगा सकते हैं लेकिन सब्जियों, फलों और कृषि फसलों के लिए अति महत्वपूर्ण है।

अजोस्पीरिलम (नाइट्रोजनीय) जैव-उर्वरक: ये स्वतंत्र जीवन वाले मिट्टी तथा वायुमण्डल की नाइट्रोजन को फिक्सिंग करने वाले बैक्टीरिया हैं और फलीदार फसल के अतिरिक्त किसी भी फसल और मिट्टी में नाइट्रोजन लगा सकते हैं लेकिन उच्च नमी की आवश्यकता वाली फसलों, जैसे धान/जूट, के लिए अति महत्वपूर्ण हैं।

ऐसीटोबैक्टर (नाइट्रोजनीय) जैव-उर्वरक: ये मिट्टी के स्वतंनत्र-जीवन वाले बैक्टीरिया हैं जो कि वायुमंडली नाइट्रोजन-फिक्सिंग हैं और किसी भी फसल और मिट्टी में नाइट्रोजन लगा सकते हैं लेकिन गन्ने की फसल के लिए अति महत्वपूर्ण है, जहां ये सर्वाधिक प्रभावी पाये जाते हैं।

राइज़ोबियम (नाइट्रोजनीय) जैव उर्वरक: ये जैव-उर्वरक फलीदार फसलों में जैसे दालों और बरसीम/लुसुन घास चारे की फसल के लिए उपयोग किए जाते हैं राईज़ोबियम जैव-उर्वरक किसी फसल-विशेष के लिए ही होते हैं। ये वायुमंडल में मौजूद नाईट्रोजन की फलीदार फसलों की जड़ों में ग्रंथियां बनाकर चिपका देते हैं। चिपकी हुई नाईट्रोजन एक बैक यूरिया/एकड़ के बराबर तक हो सकती है।

फास्फेट घुलनशीलता वाले जैव-उर्वरक (पी.एस.बी.): ये जैव-उर्वरक जैविक अम्ल उत्पन्न करते हैं जो कि मिट्टी में उपलब्ध अघुलनशील फॉस्फोरस

को तथा मिट्टी में मिलाए गए फॉस्फेटिक उर्वरकों के घुलने में तथा फॉस्फोरस को फसल के पौधों द्वारा ग्रहण करने में मदद करते हैं इसके अतिरिक्त ये वृद्धि नियामक भी उत्पन्न करते हैं जो कि फसल की वृद्धि के लिए लाभदायक होते हैं। उच्च/मध्यम फॉस्फोरस वाली मिट्टी की स्थिति में पी.एस.बी. एक बैग एस.एस.पी. के बराबर मिट्टी के फास्फोरस की घुलनशील कर सकते हैं।

पोटाश संघटक (पोटाश घुलनशीलता) तरल जैव-उर्वरक: पोटाश एक महत्वपूर्ण बृहद-पोषक तत्व है जो गुणवत्ता युक्त उपज के लिए आवश्यक होता है। इससे पौधों की जड़ें जल्दी विकसित होती है। अनेक प्रकार की मिट्टियिं में अघुलनशील पोटाश पाई जाती है, पोटाश संघट तरल जैव-उर्वरक (पोटाश मोबिलाइजिंग लिक्विडबायो फर्टीलाइजर (के.एम.बी.) ऐसे जैविक अम्ल उत्पन्न करता है जिससे मिट्टी के पोटाश और मिट्टी में डाले गए पोटैशियम उर्वरकों के घुलने में मदद मिलती है। पोटाश विलेयक के संचारण से प्रति एकड़ 8-10 किलो ग्राम पोटाश के संवर्द्धन में मदद मिलती है। यह मिट्टी की उर्वरता को बरकरार रखता है।

जिंक विलयक तरल जैव-उर्वरक: जिंक भारतीय मिट्टी के लिए एन.पी.के. के बाद चौथा सबसे महत्वपूर्ण पौधों का पोषक तत्व बन रहा है पौधों के ऊतकों में जिंक की कमी की समस्या का प्रमुख कारण जिंक की कम मात्रा के बजाय मिट्टी में जिंक की कम विलेयता है। जिंक विलेयक तरल जैव-उर्वरक (जेड.एस.बी.) ऐसे जैविक अम्ल उत्पन्न करता है जो मिट्टी के अघुलनशील जिंक उर्वरकों के घुलने में मदद करते हैं यह मिट्टी में मौजूद जिंक का भी विलयन कर सकता है। जिंक विलेयक के संचारण से प्रति एकड 1-2 किलो जिंक के संवर्द्धन में मदद कलती है। कंपोस्ट मिलाने से मिट्टी के जैव तत्वों में सुधार से इसकी ज्यादा बेहतर प्रतिक्रिया होती है।

एन.पी.के. तरल जैव-उर्वरक: नाइट्रोजन फास्फोरस व पोटाश क अलग अलग तरल जैव उर्वरक प्रयोग करने से कृषकों को धन व जैव उर्वरकों की अधिक आवश्यकता होती है। अतः धन व जैव उर्वरकों की मात्रा को कम करने के लिये एक ही जैव उर्वरक एन.पी.के. बनाया गया है। जिसमें नाइट्रोजन एकत्रीकरण, फास्फोरस व पोटाश को घोलने वाले बैक्टीरिया एक ही तरल जैव उर्वरक में कृषकों को मिल जाऐं। एन.पी.के. तरल जैव-उर्वरक ऐसे जैविक अम्ल उत्पन्न करता है जो मिट्टी के अघुलनशील फास्फोरस तथा पोटाश और मिट्टी में डाले गए एन.पी.के. उर्वरकों के घुलने में मदद करते हैं और फसल के पौधों द्वारा ग्रहण करना आसान बनाते हैं। इससे जड़ें जल्ब्री विकसित होती है। यह फसलों में फूलों, बीज और फलों के विकास को भी सुनिश्चित करता है। इसके अतिरिक्त एनपीके तरल जैव-उर्वरक वृद्धि नियामक व विटामिलन तथा हॉर्मोन जैसे जैविक रूप से सक्रिय तत्व भी उत्पन्न करता है जो फसल की वृद्धि ओर मजबूती के लिए लाभदायक होते हैं। यह मिट्टी में मौजूद पोटैशियम और नाईट्रोजन के निक्षालन को कम करता है। एन.पी.के. तरल जैव-उर्वरक के प्रयोग से प्रति एकड़ 10-20 किलो नाईट्रोजन, 8-10 किलो फास्फोरस और 8-10 किलो पोटाश के संवर्द्धन में मदद मिलती है। कंपोस्ट के साथ मिलाने पर मिट्टी के जैव तत्वों में सुधार से इसकी ज्यादा बेहतर प्रतिक्रिया होती है।

तरल जैव-उर्वरक के लाभ

अर्द्ध-ठोस जैव-उर्वरकों की तुलना में तरल जैव उर्वकों के अनेक लाभ हैं, जैसे-
जीवनकाल :1 से 2 वर्ष (अर्द्ध ठोस की तुलना में दोगुना)
तापमान सहिष्णुता: 45 डि.से. (अर्द्ध ठोस की तुलना में 15 डि.से. अधिक)
3 ड्रिप सिंचाई के साथ-साथ सामान्य सिंचाई के लिए उपयुक्त

- **जीवाणु गणनांक:** 10 करोड/मि.ली (अर्द्ध ठोस की तुलना में दोगुना)
- बीज/मिट्टी/जड में डालने की अनुशंसा
- रखरखाव/भंडारण/लाने-ले जाने में सुरक्षित
- मिश्रित जैव-उर्वरक बेहतर असर डालता है।
- मिट्टी को जैविक रूप से सक्रिय बनाए रखता है और मिट्टी की उर्वरता को बरकरार रखता है।
- **पर्यावरण के अनुकूल:** मिट्टी/पानी/हवा में कोई नुकसानदायक अवशिष्ट प्रभाव नहीं
- किसान की निवेश लागत को घटाता है और आय बढ़ाता है।
- पोटाश की आवश्यकता को कम करता है तथा पी. और के.के. आयात में विदेशी मुद्रा की बचत करता है।

अनाज, दानों, सब्जियों, रेशेदार और तिलहन की फसलों में आसानी से इस्तेमाल किया जा सकता है।

मात्रा और लगाने की पद्धतियां: मात्रा प्रति एकड़ एक ली. तरल जैव-उर्वरक

सर्वोत्तम पद्धतियां-बुवाई से पहले (मिट्टी का उपचार) : एन.पी.के. तरल जैव-उर्वरक को एक ली. मात्रा को 50 से 100 किलो कंपोस्ट में अच्छी तरह से मिलाएं और पौधरोपण से पहले, जो सके तो शाम को या बादल छाए दिन में खेत में डालें।

अन्य पद्धतियां: बुवाई के दौरान (बीजोपचार)- एक ली. एन.पी.के तरल जैव उर्वरक को एक किवंटल बीज में मिलाकर, बीज को आधा घण्टा तक छाया में सुखाकर तुरन्त खेत में बुवाई कर देनी चाहिए।

रोपण के दौरान (धान/सब्जियों के पौध/सेट का उपचार):

- एन.पी.के. तरल जैव-उर्वरक की एक ली. मात्रा को 20-25 लीटर पानी में मिलाकर घोल तैयार करते हैं। ■ पौध की जड़ों/सेट को इस घोल में 15-20 मिनट के लिए डुबोकर रखते हैं। ■ उपचारित पौध/सेअ को तुरंत रोपाई कर देनी चाहिये।

बुवाई के बाद (खड़ी फसलों में): यदि किसी कारण वश तल जैव-उर्वरक बुवाई के समय ना डाला जा सके, तो यह सिंचाई के जल के माध्यम से खड़ी फसल में प्रयोग किया जा सकता है।

- सामान्य सिंचाई की तिथि में, तरल जैव-उर्वरक के घोल वाले उपयुक्त डब्बे को पूरे खेत में पानी के प्रवेश के मुहाने पर लगा दें ताकि संचाई के पानी में बराबर मात्रा में मिलाया जाए। ■ ड्रिप सिंचाई की स्थिति में, तरल जैव-उर्वरक को ड्रिप सिंचाई के जरिए डालें।

सावधानियां

- जैव-उर्वरकों को सीधी धूप या गर्मी से बचाएं क्योंकि तेज धूप व गर्मी में तरल जैव उर्वरक के बैक्टीरिया मर जाता है।
- लंबे जीवनकाल हेतु जैव-उर्वरकों को ठंडे स्थानो में भंडारित करना चाहिए। ■ बच्चों/पालतू जानवरों से सदैव दूर रखें।
- इस्तेमाल के बाद साबुन से हाथ धोएं तथा खली डब्बे को नष्ट कर दें या गडढे में दबा देना चाहिए। ■ जैव-उर्वनकों को रसायनों/रासायनिक उर्वरकों व कीटनाशकों आदि के साथ भी नहीं मिलाना चाहिए क्योंकि इनके साथ मिलाने पर बैक्टीरिया मर जाते हैं। ■ जैव-उर्वरकों को देशी या कम्पोस्ट खाद के साथ मिलाकर प्रयोग करने से अधिक लाभ प्राप्त होता है।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

मधुमक्खी पालनः आय के विभिन्न स्त्रोत

रामावतार यादव
राजपाल बोचलिया
रशपाल सिंह (सहायक आचार्य) सुरेन्द्र कौर
मेमौरियल कृषि महाविद्यालय, 24बी.बी., पदमपुर (राजस्थान)
अर्जुन लाल यादव (सहायक आचार्य)
पादप रोग विज्ञान, कृषि महाविद्यालय, बीकानेर (राजस्थान)

राजस्थान में मधुमक्खी पालन एक सफल व्यवसाय के रूप में सामनें आया है। वर्तमान में इस व्यवसाय का विकास मधु अथवा शहद उत्पादन तक ही सीमित है। इसकें अन्य उत्पाद जैसे- पराग, रॉयल जैली, मौनी विष तथा प्रोपोलिस का बड़े स्तर पर उत्पादन कर प्रदेश के मधुमक्खी पालक अधिक लाभ अर्जित कर सकते है। मधुमक्खी स्वंय के भोजन के लिये फूलों से मकरन्द या पराग अवस्था दोनों की एकत्रित करती हैं। अतः ऐसी फसलें जिनकें फूलों में पराग और मकरंद प्राप्त मात्रा में मिलते हैं, इस उद्योग के लिए अधिक उपयोगी है। पराग (पोलन) पाउडर जैसा प्रदार्थ है। जो फूलों के नर भाग (पुंकेसर) में पाया जाता है। परागकणों के परिपक्व होने पर पराग कोष खुल जाते हैं। मधुमक्खी इन्हीं परागकणों को अपनी पीछली टांगों में स्थित पराग-थैली में एकत्रित कर छत्ते की चैखट में बने कोष्ठों में जमा कर देती है। पराग-प्रोटीन, वसा एवं खनिज लवण का स्त्रोत होता है। इसी कारण मधुमक्खी के भरण-पोषण में इसकी सख्त जरूरत पड़ती है। शिशुओं के भोजन में एवं उनके विभिन्न अंग और ग्रन्थियों के विकास में पराग महत्वपूर्ण है।

मधुमक्खी की विभिन्न अवस्थाओं में भोजन का रूप/प्रकार

अवस्था	भोजन
लार्वा (1-3दिन)	रॉयल जैली
लार्वा (4दिन)	परागशहद
शिशु (1-13दिन)	पराग
मधुमक्खी	मकरद/शहद+पराग
प्रौढ़ मधुमक्खी	शहद

मौनागृह में पराग का संग्रहण

मधुमक्खियाँ इसका उपयोग बराबर करती हैं पराग की उपलब्धता पूरे वर्ष तक समान नहीं रहती है। अतः मौनागृह में पराग की कमी पर मधुमक्खी कमजोर रह जाती हैं तथा अपने जीवनकाल को भी छोटा कर देती है, इसी के कारण इनकी संख्या में भारी कमी हो जाती है। अध्ययन के अनुसार एक मधुमक्खी के सम्पूर्ण विकास के लिए 3.2 मि.ग्रा. नाइट्रोजन की आवश्यकता होती हैं, जो कि 100 मि.ग्रा. पराग के सेवन से इनको मिलती है। पराग में रंगों की विविधता होती है, साथ में बनावट एवं आकार भी विभिन्न होते हैं। पराग में कई पदार्थ पाये जाते हैं। इनमें प्रोटीन की औसत मात्रा 7 से 30 प्रतिशत तक होती है।

मधुमक्खी द्वारा एकत्रित पराग का विश्लेषणः

क्रूड प्रोटीन	21 प्रतिशत
वसा (ईथर निष्कासित)	5 प्रतिशत
नमी (सूखे पोलन में)	7 प्रतिशत
राख	3 प्रतिशत
चीनी (अपचायी)	26 प्रतिशत
चीनी (अनपचायी)	30 प्रतिशत

इसके अतिरिक्त विटामिन, एन्जाइम, अम्ल आदि प्रदार्थ भी पराग में सूक्ष्म मात्रा में पाये जाते है।

पराग संचयः मौनागृह में पराग की आवक कम होने पर मधुमक्खियों को कृत्रिम रूप से प्रोटीन की खुराक दी जाती है। यदि फूलों में पराग को एकत्रित करते है। तो यह अधिक समय लेने वाला तथा महंगा पड़ता है। अतः मधुमक्खी बहुतायत से जिन फूलों से पराग लाती है, उसकों लकड़ी से बने ''पोलन ट्रेप'' की सहायता से पराग को मौनागृह से बाहर ही एकत्रित किया जाता है।

पोलन ट्रेप के विभिन्न भागः मुख्य रूप से ट्रेप के तीन भाग होते है।

1. बड़ा भाग जो हमेशा मौनागृह के द्वारा पर लगा रहता है।
2. पोलन-ट्रे जो कि इस बड़े भाग में आसानी से जुड़ जाती है तथा अलग भी हो सकती है।
3. पराग एकत्रित करने वाली पट्टी जिसमें 5.0 मि.मी. के कई छिद्र बने होते हैं। मधुमक्खी इन्ही छिद्रों के माध्यम से कॉलोनी (मौनागृह) में प्रेवश करती हैं।

पोलन ट्रेप लगाने की विधि

मौनागृह के मुख्य द्वार पर इसे लगा दिया जाता है। पराग एकत्रित करने वाली पट्टी (स्क्रिन) को शुरूआत के 3-4 दिनों तक हटा लिया जाता है। जिससे मधुमक्खियों के प्रवेश में रूकावट न हो। जब मधुमक्खी इस नई व्यवस्था से अभ्यस्त हो जाती है, तत्पश्चात् स्क्रिन माइका शीट अथवा प्लास्टिक की बनी होती है। मौनागृह में प्रवेश के दौरान मधुमक्खी की पिछली टागें जब 5.0 मि.मी. छिद्र से निकलती हैं। तो पराग थैली में जमा पराग, पोलन-ट्रे के ऊपर गिरता है। जो बाद में इसी ट्रे में एकत्रित होता रहता हैं यदि मौसम साफ है तो दो से तीन दिन बाद इस ट्रे को खाली कर देना चाहिए अन्यथा हर दिन ट्रे में से पराग निकाल लेना चाहिए। एकत्रित पराग को छलनी की सहायता से साफ करना चाहिए। फलों से पराग की आवक अच्छी होने पर एक मेलीफेरा जाति की कॉलोनी से 1 किलो पराग प्रतिदिन एकत्रित किया जा सकता है।

पराग भण्डारणः उपरोक्त विधि द्वारा एकत्रित पराग का निम्न विधियों से भण्डारण किया जा सकता है।

पराग सुखाकरः ट्रेप की सहायता से एकत्रित साफ एवं ताजा पराग को सुखाया जाता है जब तक की इसका वनज स्थिर ना हो जाये। इस सूखे पराग का 1 से 2 दिन तक रेफ्रीजरेटर में फ्रोजन करना चाहिए। इस तरह कीट के अण्डे तथा सूक्ष्म गिडार यदि हो तो नष्ट हो जाती है। इस पराग को प्लास्टिक अथवा काँच के डिब्बे में सीलबन्द कर कमरे में रखा जा सकता है।

पराग शहदः साफ किये हुए ताजा पराग 2 भाग में शहद (1भाग) मिलाकर इसको गूंथ लिया जाता है। इस मिश्रण को डिब्बे में भरकर कमरे में रखा जा सकता है।

पराग चीनीः साफ किये हुए ताजा पराग (2भाग) में दानेदार चीनी (1 भाग) को मिला दी जाती हैं। इसके बाद डिब्बे में भरकर एक चीनी की पतली परत चढ़ने से पराग लम्बे समय तक खराब नहीं होता है।

फ्रोजन परागः साफ एवं ताजा पराग को पोलिथिन की थैलियों में रखकर इसे सीधे ही रेफ्रीजरेटर में फ्रोजन कर दिया जाता है।

भंडारित (संग्रहित) पराग देने की विधिः मौनागृह में जब प्राकृतिक पराग की आवक कम अथवा बन्द हो जाती है तो किसी एक विधि द्वारा संग्रहित पराग को 'पराग सप्लीमेंट' के रूप में मधुमक्खियों को दिया जाता है। इसको बनाने के लिए मिश्रण में पानी की उचित मात्रा मिलाकर गूंथ लिया जाता है, इसे 'पोलन पेटिज' कहते हैं। पेटिज बनाते समय निम्न बातों को ध्यान अवश्य रखना चाहिए-

भण्डारित पराग	चीनी/पानी की मात्रा
सूखा पराग	67 ग्राम मिश्रण+33 ग्राम पिसी चीनी+15 मि.ली. पानी
परागशहद	100 ग्राम मिश्रण+7 मि.ली. पानी
परागचीनी	100 ग्राम मिश्रण +11 मि.ली.पानी
फ्रोजन पराग	67 ग्राम मिश्रण +33 ग्राम पीसी चीनी +10 मि.ली. पानी

एक पोलन पेटीज बनाने में 250-300 ग्राम पराग का उपयोग किया जा सकता हैं।

मधुमक्खियों द्वारा एकत्रित पराग के अनेक व्यापारिक उपयोग है पराग की अनुपलब्धता के समय अधिकतम उपयोग मधुमक्खियों द्वारा किया जा सकता है। पराग आहार देने से ब्रूड का समुचित विकास, इनकी संख्या में बढ़ोत्तरी तथा शहद उत्पादन अधिक होता है। वैज्ञानिकों के अनुसार वैंकल्पिक आहार में इस पराग को मिलाने से यह अधिक स्वादिष्ट हो जाता है। किसी क्षेत्र में पराग के विभिन्न स्त्रोतों का पता लगाया जा सकता हैं तथा साथ में यह भी देखा जा सकता है कि किस माह में पराग की आवक उक्त क्षेत्र में कैसी रहती है।

पौध प्रजनन कार्यक्रम में व चिकित्सा विज्ञान में ।

पराग के प्रमुख स्त्रोत

फूल खिलने का समय	फसल एवं वृक्ष
जनवरी-फरवरी	सरसों, धनिया, सौंफ, बरसीम
मार्च-अप्रेल	आंवला, अमरूद, गाजर, सफेदा, कद्दूवर्गीय सब्जियाँ, गाजर घास
मई-जून	मक्का, कद्दूवर्गीय सब्जियाँ, अमरूद, तरबूज, गाजर घास
जुलाई-अगस्त	मेंहदी, बाजरा, मक्का, तिल, गाजर घास
सितम्बर-अक्टूबर	बाजरा, मेंहदी, तिल, ढेचा, अमरूद, बैर, बबूल, गाजर घास
नवम्बर-दिसम्बर	सरसों, अजवाईन, गाजर घास

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

संरक्षण कृषि में शून्य जुताई बीज सह उर्वरक ड्रिल की उपयोगिता

प्रदीप कुमार एवं घड़सीराम
पी.एचडी. शस्य विज्ञान विभाग, (राजस्थान)

संरक्षण कृषि **(Conservation agriculture)** वह पद्धति है जिसमें कृषिगत लागत को कम रखते हुए अत्यधिक लाभ व टिकाऊ उत्पादकता लाई जा सकती है। साथ में प्राकृतिक संसाधनों जैसे मृदा, जल, वातावरण व जैविक कारकों में संतुलित वृद्धि होती है। संरक्षित खेती के विकास के क्रम में बुआई से संबंधित मशीनों में जीरो-टिल सीड-कम-फर्टिलाइजर ड्रिल एक बहुत ही उपयोगी यन्त्र है। इस यन्त्र को बिना जुताई खाद, बीज बुआई यन्त्र से भी जाना जाता है।

इस यंत्र के द्वारा बीज तथा खाद फसलों के आवश्यकतानुसार बराबर दूरी तथा कम मात्रा में डाला जाता है। इस मशीन का मुख्य उपयोग बिना जुताई के बीज तथा खाद बोने के लिए किया जाता है। शून्य जुताई विधि में जुताई एवं बीज के रोपण के लिए केवल एक बार ट्रैक्टर चलाने की आवश्यकता होती है। शुन्य जुताई मशीन से समय की बचत के साथ-साथ मिट्टी, ईंधन, ट्रैक्टर की लागत, पानी, उर्वरक और कीटनाशक की भी बचत होती है। इस मशीन के प्रयोग से परंपरागत विधि की तुलना में मुदा कठोरता (कॉम्पैकसन) कम होती है एवं फसल समय से तैयार हो जाती है जिससे अगली फसल की बुआई उचित समय से हो जाती है।

शून्य जुताई बीज सह उर्वरक ड्रिल जीरो टिल सीड कम फर्टिलाइजर ड्रिल

शून्य जुताई बीज सह उर्वरक ड्रिल किसानों के लिए एक बहुत ही उपयोगी मशीन है। यह उन्हें मिट्टी से छेड छाड किए बिना पिछली फसल की कटाई के बाद सीधे बीज डालने में मदद करता है। शून्य-बीज-सह-उर्वरक ड्रिल कई मॉडल और आकारों में आता है। इन मशीनों के फाले अंग्रेजी के उल्टे 'टी' के समान होता है जिसके द्वारा भूमि में केवल एक पतली सी नाली बन जाती है। इन पतली नालियों में 5-7 से. मी. की गहराई पर खाद तथा बीज स्वयं ही मशीन द्वारा पड़ता रहता है। इस मशीन द्वारा धान, गेहूँ, मसूर, मटर, मूंग इत्यादि फसलों

की बुआई की जा सकती है। यह मशीन 35-40 अश्वशक्ति (**hp**) के ट्रैक्टर द्वारा आसानी से खींचा जा सकता है। 1 फाले वाले मशीन द्वारा एक घंटे में करीब एक एकड़ की बुआई हो जाती है यानि की मशीन की बुआई क्षमता लगभग 0.4-0.6 हेक्टेयर प्रति घंटा होती है। मशीन को चलाने में ट्रैक्टर द्वारा एक घंटे में लगभग 4-6 लीटर डीजल प्रति हेक्टेयर की खपत होती है ।

शून्य जुताई बीज सह उर्वरक ड्रिल के प्रमुख भाग

- फ्रेम • स्लिट फरो ओपनर फाला • बीज और उर्वरक के बक्से • पावर ट्रांसमिशन की इकाई
- बीज मीटरिंग प्रणाली • उर्वरक मीटरिंग प्रणाली
- गहराई नियंत्रण के लिए पहिये • हिच बिंदु।

मशीन परिचालन में सावधानियां

- मशीन में फाल फसल के अनुसार उचित दूरी पर लगा लेना चाहिए। इसके लिए फालों में लोहे के क्लैंप लगे होते हैं जिनको खिसका कर फालों की दूरी को कम या अधिक किया जा सकता है।
- उर्वरक को बक्से में भरते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि उर्वरक में ढेले न हों।
- ट्रैक्टर के द्वारा मशीन चलने की गति सीमा 3-3.5 कि.मी. प्रति घंटा होनी चाहिए।
- उर्वरक छिड़कने के पश्चात यन्त्र को अच्छी प्रकार से साफ करके रखना चाहिए तथा बक्से में उर्वरक नहीं होना चाहिए।
- प्लास्टिक के पाइप लगाते समय यह ध्यान रखना चाहिए की पाइप में अधिक मोड न आए अन्यथा बीज तथा खाद रुक सकता है।
- यह मशीन उन खेतों में अच्छी तरह से काम नहीं करती है जहां नमी का स्तर बहुत अधिक है और ऐसी स्थितियों में बीज और उर्वरक ट्यूबों में अवरोध होने की संभावना होती है।

खेत में नमी कम होने पर यदि मशीन को चलाया जाता है तो मिटटी के ढेले बहुतायत में निकलते हैं। यह मिट्टी के ढेले फालों के बीज बूट में फंस जाते हैं जिससे कि बीज वाली प्लास्टिक पाइप बंद हो जाती है और बीज नहीं गिर पाता है। मशीन चलाते समय मशीन के पीछे एक व्यक्ति को ध्यान रखना चाहिए और पाइप के बंद होने पर मशीन को रोककर मिट्टी के ढेले को तुरंत ही निकल देना चाहिए। चिकनी मिट्टी (क्ले) में मशीन का प्रयोग करने से पहले उसकी नमी का जरुर ध्यान रखें। नमी कम होने पर मशीन के फाले ठीक से गहराई में नहीं जा पाएंगे तथा उससे बड़े आकर के मिट्टी के ढेले निकलेंगे जिससे बुआई में दिक्कत आएगी। खेत में नमी ज्यादा होने पर ट्रैक्टर के पहिये स्लिप करेंगे तथा शून्य जुताई-बीज-सह-उर्वरक ड्रिल का ड्राइव हील स्लिप करने से बीज सही मात्रा मे नहीं गिर पायेगा।

पूरे फसल की बुआई हो जाने के बाद मशीन के दोनों बक्सों से बीज एवं उर्वरक को पूरी तरह से निकल लेना चाहिए। अक्सर देखा गया है कि उर्वरक बॉक्स में उर्वरक रह जाने के कारण उसमें जंग लग जाती है साथ ही साथ उर्वरक नमी को पाते ही बक्से से रासायनिक प्रतिक्रिया कर उसे नष्ट करने लगता है। पूरे फसल की बुआई हो जाने के बाद मशीन को अच्छे से धोकर, धूप में सुखाकर किसी ऐसे स्थल पर रखना चाहिए जहां धूप एवं बरसात से बचाव हो सके। कपडे को इंजिन से निकला हुआ पुराना मोबिल या आयल में भिगोकर मशीन के उन सभी भागों को पोंछ देना चाहिए जिनका मिट्टी के साथ संपर्क होता है जैसे की ड्राइव पहिया, फाले इत्यादि।

यदि मशीन को खुले में रखना मजबूरी हो तो पूरे मशीन पर बाहर से आयल की हल्की परत कपड़े से पोंछ कर चढ़ा दें जिससे बारिश होने पर जंग लगने की सम्भावना कम हो जाए।

शून्य जुताई बीज सह उर्वरक ड्रिल के लाभ

- ईंधन की बचत • समय की बचत • अच्छा अंकुरण • बीज उर्वरक का उचित वितरण
- फसल अवशेषों से नमी और तापमान संरक्षण में बहुत मदद मिलती है • मृदा स्वास्थ्य में सुधार
- पर्यावरण के अनुकूल

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

मधुमक्खी पालन

बिशना राम (कृषि स्नातकोत्तर) कीट विज्ञान विभाग, स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर

शिवानी चौधरी विद्यावाचस्पति छात्रा, कीट विज्ञानं विभाग, स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय बीकानेर

मधुमक्खी पालन एक ऐसा ही व्यवसाय है जो मानव जाती को लाभान्वित कर रहा है यह एक कम खर्चीला घरेलु उद्योग है जिसमे आय, रोजगार व वातावरण शुद्ध रखने की क्षमता है। यह एक ऐसा रोजगार है जिसे समाज के हर वर्ग के लोग अपना कर लाभान्वित हो सकते है। मधुमक्खी पालन कृषि व बागवानी उत्पादन बढ़ाने की क्षमता भी रखता है। मधुमक्खियां मोन समुदाय में रहने वाली कीटों वर्ग की जंगली जीव है इन्हें उनकी आदतों के अनुकूल कृत्रिम ग्रह (हईव) में पाल कर उनकी वृधि करने तथा शहद एवं मोम आदि प्राप्त करने को मधुमक्खी पालन या मौन पालन कहते है।

शहद एवं मोम के अतिरिक्त अन्य पदार्थ, जैसे गोंद (प्रोपोलिस, रायल जेली, डंक-विष) भी प्राप्त होते है। साथ ही मधुमक्खियों से फूलों में परपरागण होने के कारण फसलो की उपज में लगभग एक चैथाई अतिरिक्त बढ़ोतरी हो जाती है। आज कल मधुमक्खी पालन ने कम लागत वाला कुटीर उद्योग का दर्जा ले लिया है। ग्रामीण भूमिहीन बेरोजगार किसानो के लिए आमदनी का एक साधन बन गया है। मधुमक्खी पालन से जुड़े कार्य जैसे बढईगिरी, लोहारगीरी एवं शहद विपणन में भी रोजगार का अवसर मिलता है।

मधुमक्खी परिवार

एक परिवार में एक रानी कई हजार कमेरी तथा 100-200 नर होते है।

रानी : यह पूर्ण विकसित मादा होती है एवं परिवार की जननी होती है। रानी मधुमक्खी का कार्य अंडे देना है अछे पोषण वातावरण में एक इटैलियन जाती की रानी एक दिन में 9500-9800 अंडे देती है। तथा देशी मक्खी करीब 700-900 अंडे देती है। इसकी उम्र औसतन 2-3 वर्ष होती है।

कमेरी/श्रमिक

यह अपूर्ण मादा होती है और मौनगृह के सभी कार्य जैसे अण्डों बच्चों का पालन पोषण करना, फलों तथा पानी के स्त्रोतों का पता लगाना, पराग एवं रस एकत्र करना, परिवार तथा छतो की देखभाल, शत्रुओं से रक्षा करना इत्यादि इसकी उम्र लगभग 2-3 महीने होती है।

नर मधुमक्खी

यह रानी से छोटी एवं कमेरी से बड़ी होती है। रानी मधुमक्खी के साथ सम्भोग के सिवा यह कोई कार्य नही करती संभोग के तुरंत बाद इनकी मृत्यु हो जाती है और इनकी औसत आयु करीब 60 दिन की होती है।

मधुमक्खियों की किस्में

भारत में मुख्य रूप से मधुमक्खी की चार प्रजातियाँ पाई जाती है-

एपिस डोरसेटा (पहाड़ी मधुमक्खी): यह बड़े आकार की मधुमक्खी होती है, जो ऊंचाई पर छत्ता बनाती है। स्वभाव से बहुत ही गुस्सैल प्रवृति की होती है। वर्ष में एक छत्ते से औसतन 20 से 25 किलोग्राम शहद प्राप्त होता है।

एपिस फलोरिया (छोटी मधुमक्खी)

यह सबसे छोटे आकार की मधुमक्खी होती है, जो मैदानी स्थानों पर झाडियों पर छत के कोने में छत्ता बनाती हैं। एक वर्ष से 200 ग्राम से 2 किलोग्राम शहद प्राप्त होता है।

एपिस सेराना इण्डिका (भारतीय मधुमक्खी)

यह भारतीय मूल की प्रजाति है, जो पहाडी व मैदानी क्षेत्रों में पाई जाती है। यह समान्तर दूरी पर पेड़ों, गुफाओं और छुपी हुई जगहों पर छत्ते बनाती है। एक वर्ष में छत्ते से 3 से 6 किलोग्राम शहद बनाती है।

एपिस मेलिफेरा (इटालियन मधुमक्खी)

इस मधुमक्खी को इटेलियन मधुमक्खी भी कहते हैं। यह आकार और स्वभाव में एपिस इंडिका की तरह होती है, लेकिन इस प्रजाति की रानी मक्खी के अण्डे देने की क्षमता बहुत अधिक होती है, साथ ही भगछूट की प्रक्रिया कम होती है एवं शहद अधिक मात्रा में इकट्ठा करती है। एक वर्ष में दो खंड के बक्से से करीब 60 से 80 किलोग्राम शहद प्राप्त होता है, साथ ही रानी मक्खी के अधिक अण्डे देने से मधुमक्खियों के वंश की बढोत्तेरी भी अधिक होती है। इसलिए व्यावसायिक पालन की दृष्टि से यह श्रेष्ठ मधुमक्खी प्रजाति हैं।

मधुमक्खी पालन के लिए अवश्यक सामग्री

मौन पेटिका, मधु निष्कासन यंत्र, स्टैंड, छीलन छुरी, छत्ताधार, रानी रोक पट, हाईवे टूल (खुरपी), रानी रोक द्वार, नकाब, रानी कोष्ठ रक्षण यंत्र, दस्ताने, भोजन पात्र, धुआंकर और ब्रुश।

मधुमक्खी परिवार का उचित रखरखाव एवं प्रबंधन

मधुमक्खी परिवारों की सामान्य गतिविधियां 10 और 38°C सेंटीग्रेट की बीच में होती है उचित प्रबंध द्वारा प्रतिकूल परिस्तिथियों में इनका बचाव आवश्यक हैं। उतम रखरखाव से परिवार शक्तिशाली एवं क्रियाशील बनाये रखे जा सकते है। मधुमक्खी परिवार को विभिन्न प्रकार के रोगों एवं शत्रुओं का प्रकोप समय समय पर होता रहता है। जिनका निदान उचित प्रबंधन द्वारा किया जा सकता है इन स्तिथियों को ध्यान में रखते हुए निम्न प्रकार वार्षिक प्रबंधन करना चाहिये।

शरदऋतु में मधुवाटिका का प्रबंधन

शरद ऋतु में विशेष रूप से अधिक ठंढ पड़ती है जिससे तापमान कभी कभी 10 या 20°C सेन्टीग्रेट से निचे तक चला जाता है। ऐसे में मौन वंशो को सर्दी से बचाना जरुरी हो जाता है। सर्दी से बचने के लिए मौनपालको को टाट की बोरी का दो तह बनाकर आंतरिक ढक्कन के निचे बिछा देना चाहिए। यह कार्य अक्टूबर में करना चाहिये। इससे मौन गृह का तापमान एक समान गर्म बना रहता है। यह संभव हो तो पोलीथिन से प्रवेश द्वार को छोड़कर पूरे बक्से को ढक देना चाहिए। या घास फूस या पुवाल का छापर टाट बना कर बक्सों को ढक देना चाहिए । इस समय मौन गृहों को ऐसे स्थान पर रखना चाहिये। जहाँ जमीं सुखी हो तथा दिन भर धुप रहती हो परिणामस्वरूप मधुमक्खियाँ अधिक समय तक कार्य करेगी अक्टूबर में यह देख लेना चाहिये की रानी अच्छी हो तथा एक साल से अधिक पुरानी तो नही है यदि ऐसा है तो उस वंश को नई रानी दे देना चाहिये। जिससे शरद ऋतु में श्रमिको की आवश्यक बनी रहे जिससे मौन वंश कमजोर न हो ऐसे क्षेत्र जहाँ शीतलहर चलती हो तो इसके प्रारम्भ होने से पूर्व ही यह निश्चित कर लेना चाहिये की मौन गृह में आवश्यक मात्रा में शहद और पराग है या नही ।

यदि शहद कम है या नही है तो मौन वंशों को 50:50 के अनुपात में चीनी और पानी का घोल बनाकर उबालकर ठंडा होने के पश्चात मौन गृहों के अंदर रख देना चाहिये। जिससे मौनो को भोजन की कमी न हो। यदि मौन गृह पुराने हो गये हो या टूट गये हो तो उनकी मरम्मत अक्टूबर नवम्बर तक अवश्य करा लेना चाहिए। जिससे इनको सर्दियों से बचाया जा सके। इस समय मौन वंसो को फुल वाले स्थान पर

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

रखना चाहिये। जिससे कम समय में अधिक से अधिक मकरंद और पराग एकत्र किया जा सके ज्यादा ठंढ होने पर मौन गृहों को नही खोलना चाहिए। क्योंकि ऐसा करने पर ठण्ड लगने से शिशु मक्खियों के मरने का डर रहता है। साथ ही श्रमिक मधुमक्खियाँ डंक मरने लगती है पर्वतीय क्षेत्रो में अधिक ऊंचाई वाले स्थानों पर गेहूं के भूंसे या धान के पुवाल से अच्छी तरह मौन गृह को ढक देना चाहिए।

बसंत ऋतु में मौन प्रबंधन

बसंत ऋतु मधुमक्खियों और मौन पालको के लिए सबसे अच्छी मानी जाती है। इस समय सभी स्थानों में प्रयाप्त मात्रा में पराग और मकरंद उपलब्ध रहते है जिससे मौनों की संख्या दुगनी बढ़ जाती है। परिणामस्वरूप शहद का उत्पादन भी बढ़ जाता है। इस समय देख रेख की आवश्यकता उतनी ही पड़ती है जितनी अन्य मौसमो में होती है शरद ऋतु समाप्त होने पर धीरे धीरे मौन गृह की पैकिंग (टाट, पट्टी और पुरल के छापर इत्यादि) हटा देना चाहिए। मौन गृहों को खाली कर उनकी अच्छी तरह से खाली कर उनकी अच्छी तरह से सफाई कर लेना चाहिए। पेंदी पर लगे मौन को भलीभांति खुरच कर हट देना चाहिए संम्भव हो तो 500 ग्राम का प्रयोग दरारों में करना चाहिए जिससे कि माईट को मारा जा सके। मौन गृहों पर बहार से सफेद पेंट लगा देना चाहिए। जिससे बहार से आने वाली गर्मी में मौन गृहों का तापमान कम रह सके ।

बसंत ऋतु प्रारम्भ में मौन वंशो को कृत्रिम भोजन देने से उनकी संख्या और क्षमता बढती है। जिससे अधिक से अधिक उत्पादन लिया जा सके। रानी यदि पुरानि हो गयी हो तो उसे मरकर अंडे वाला फ्रेम दे देना चाहिए। जिससे दुसरे वाला सृजन शुरू कर दे यदि मौन गृह में मौन की संख्या बढ़ गयी हों तो मोम लगा हुआ अतिरिक्त फ्रेम देना चाहिए। जिससे की मधुमक्खियाँ छत्ते बना सके यदि छत्तों में शहद भर गया हो तो मधु निष्कासन यंत्र से शहद को निकल लेना चाहिए। जिससे मधुमक्खियां अधिक क्षमता के साथ कार्य कर सके यदि नरो की संख्या बढ़ गयी हो तो नर प्रपंच लगा कर इनकी संख्या को नियंत्रित कर देना चाहिए।

ग्रीष्म ऋतु में मौन प्रबंधन - ग्रीष्म ऋतु में मौनो की देख भाल ज्यादा जरुरी होता है जिन क्षेत्रो में तापमान 40एष्ट सेंटीग्रेट से उपर तक पहुचना है। वहां पर मौन गृहों को किसी छायादार स्थान पर रखना चाहिए। लेकिन सुबह की सूर्य की रौशनी मौन गृहों पर पदनी आवश्यक है जिससे मधुमक्खियाँ सुबह से ही सक्रीय होकर अपना कार्य करना प्रारम्भ कर सके इस समय कुछ स्थानों जहाँ पर बरसीम, सूर्यमुखी इत्यादि की खेती होती है। वहां पर मधुस्त्रव का समय भी हो सकता है। जिससे शहद उत्पदान किया जा सकता है । इस समय मधुमक्खियों को साफ और बहते हुए पानी की आवश्यकता होती है। इसलिए पानी को उचित व्यवस्था मधुवातिका के आस पास होना चाहिये

मौनो को लू से बचने के लिए छप्पर का प्रयोग करना चाहिये जिससे गर्म हवा सीधे मौन गृहों के अंदर न घुस सके अतिरिक्त फ्रेम को बाहर निकल कर उचित भण्डारण करना चाहिये। जिससे मोमी पतंगा के प्रकोप से बचाया जा सके मौन वाटिका में यदि छायादार स्थान न हो तो बक्से के उपर छप्पर या पुआल डालकर उसे सुबह शाम भिगोते रहना चाहिये। जिससे मौन गृह का तापमान कम बना रहे कृत्रिम भोजन के रूप में 50-50 के अनुपात में चीनी और पानी के उबल कर ठंडा होने अपर मौन गृह के अंदर कटोरी या फीडर में रखना चाहिये। मौन गृह के स्टैंड की कटोरियों में प्रतिदिन साफ और तजा पानी डालना चाहिए। यदि मौनो की संख्या ज्यादा बढ़ने लगे तो अतिरिक्त फ्रेम डालना चाहिए।

वर्षा ऋतु में मौन प्रबंधन: वर्षा ऋतु में तेज वर्षा, हवा और शत्रुओं जैसे चींटियाँ, मोमी पतंगा, पक्षियों का प्रकोप होता है मोमि पतंगों के प्रकोप को रोकने के लिए छतो को हटा दे फ्लोर बोड को साफ करे तथा गंधक पाउडर छिडके चीटो को रोकथाम के लिए स्टैंड को पानी भरा बर्तन में रखे तथा पानी में दो तिन बूंदें काले तेल की डाले मोमी पतंगों से प्रभावित छत्ते, पुराने काले छत्ते एवं फफूंद लगे छत्तों को निकल कर अलग कर देना चाहिए।

मधुमक्खी परिवारों का विभाजन एवं जोड़ना

विभाजन: अच्छे मौसम में मधुमक्खियों की संख्या बढती है तो मधुमक्खी परिवारों का विभाजन करना चाहिये। ऐसा न किये जाने पर मक्खियाँ घर छोड़कर भाग सकती है। विभाजन के लिए मूल परिवार के पास दूसरा खाली बक्सा रखे तथा मूल मधुमक्खी परिवार से 50 प्रतिशत ब्रूड, शहद व पराग वाले फ्रेम रखे रानी वाला फ्रेम भी नये बक्से में रखे मूल बक्से में यदि रानी कोष्ठ हो तो अच्छा है अन्यथा कमेरी मक्खियाँ स्वयं रानी कोष्ठक बना लेगी तथा 16 दिन बाद रानी बन जाएगी। दोनों बक्सों को रोज एक फीट एक दुसरे से दूर करते जाये और नया बक्सा तैयार हो जायेगा।

जोड़ना: जब मधुमाखी परिवार कमजोर हो और रानी रहित हो तो ऐसे परिवार को दुसरे परिवार में जोड़ दिया जाता है। इसके लिए एक अखबार में छोटे छोटे छेद बनाकर रानी वाले परिवार के शिशु खण्ड के उपर रख लेते है। तथा मिलाने वाले परिवार के फ्रेम एक सुपर में लगाकर इसे रानी वाले परिवार के उपर रख दिया जाता है। अखबार के उपर थोडा शहद छिडक दिया जाता है जिससे 10-12 घंटों में दोनों परिवारों की गंध आपस में मिल जाती है। बाद में सुपर और अखबार को हटाकर फ्रेमो को शिशु खण्ड में रखा जाता है।

शहद व मोम निष्कासन व प्रसंस्करण

मधुमक्खी पालन का मुख्य उद्देश्य शहद एवं मोम उत्पादन करना होता है। बक्सों में स्थित छत्तों में 75-80 प्रतिशत कोष्ठ मक्खियों द्वारा मोमी टोपी से बंद कर देने पर उनसे शहद निकाला जाए इन बंद कोष्ठों से निकाला गया शहद परिपक्व होता है। बिना मोमी टोपी के बंद कोष्ठों का शहद अपरिपक्व होता है जिनमे पानी की मात्रता अधिक होती है। मधु निष्कासन का कार्य साफ मौसम में दिन में छत्तों के चुनाव से आरम्भ करके शाम के समय शहद निष्कासन प्रक्रिया आरम्भ करना चाहिए। अन्यथा मखियाँ इस कार्य में बाधा उत्पन्न करती है। शहद से भरे छत्तों को बक्से में रख कर ऐसे सभी बक्सों का कमरे या खेत में बड़ी मच्छरदानी के अंदर रखकर मधु निष्कासन करना चाहिए। अब छीलन चाकू को गर्म पानी में डुबोकर एवं कपडे से पोंछकर चाटते से मोम की टोपियाँ हटा देनी है। छत्ते को शहद निकलने वाली मशीन में रखकर यंत्र को घुमाकर कर बारी बारी से छत्तों को पलटकर दोनों ओर से शाहद निकला जाता है। इस शहद को मशीन से निकलकर टंकी में लगभग 48 घंटे तक पड़ा रहने देते है। ऐसा करने पर शहद में मिले हवा के बुलबुले तथा मोम इत्यादि शहद की उपरी सतह पर तथा मैली वस्तुएं पेंदी पर बैठ जाती है। शहद को पतले कपडे से छानकर स्वच्छ एवं सुखी बोतलों में भरकर बेचा जा सकता है।

शहद प्रसंस्करण (घरेलु विधि): इस प्रकार निष्कासित शहद में अशुधियां जैसे पानी की अधिक मात्रा, पराग, मोम एवं कीट के कुछ बहग रह सकती है। इस अशुद्धियाँ हटाने के लिए शहद का प्रसंस्करण जरुरी होता है। इसके लिए बड़े गंज में पानी रखकर गर्म किया जाता है। तथा छोटे कपडे से छान शहद रखते है। शहद को चम्मच द्वारा हिलाते रहे ताकि सारा शहद एक समान गर्म हो जब शहद 60एष्ट सेन्टीग्रेट तक गर्म हो जाए तब शहद वाले बर्तन पानी वाले बर्तन से अलग कर देते है। इस गर्म किये गए शहद की बारीक छलनी द्वारा छानकर टोंटी लगे स्टील के ड्रम में भर देते है। जब शहद ठंडा हो जाये तो उसके उपर जमी मोम के पारत को करछी से हटा कर टोंटी द्वारा शहद को बोतलों में भरे लिया जाता है।

मोम का निष्कासन एवं प्रसंस्करण: पुराने छत्तों से मोम काटकर उबलते पानी में डाल कर पिघला लेते है। उपर तैरते हुए मोम को निकल लिया जाता है इस मोम को साफ करने हेतु 2-3 बार शहद पानी में पिघलाकर ठंडा कर लेते है। प्रत्येक बार जमे हुए मोम की तलहटी पर लगी गन्दी चाकू से काटकर अलग करते रहना चाहिए।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

स्वस्थ बीज उत्पादन कैसे करें

डॉ. सीमा ठाकुर, डॉ. देविंदर कुमार मेहता
डॉ. राजेश ठाकुर
कृषि विज्ञान केन्द्र, सोलन (हिमाचल प्रदेश)

बीज उत्पादन एक विशिष्ट प्रक्रिया है। बीज की गुणवता, इससे उगाई जाने वाली फसल की उत्पादकता व गुणवता के निरधारण में मूल कारक होते है। अत: बीज की गुणवता का सतर बनाए रखने के लिए इसके उत्पादन में कुछ सिद्धांतों का पालन अनिवार्य होता हैं इन सिद्वान्तों को निम्नलिखित रूप में सूचीबद किया जा सकता है-

बीज स्त्रोत का नियंत्राण: बीज उत्पादन के दौरान आनुवांशिक शुद्वता बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि बीज उपयुक्त स्त्रोत से लिया जाए, जिससे शुद्वता के साथ-साथ उसकी वंशावली व वर्ग भी ज्ञात रहे। अत: बीज किसी प्रमाणीकरण संस्था द्वारा मान्य स्त्रोत से प्राप्त किया जाता है। आधर बीज उत्पादन के लिए प्रजनक या आधर बीज व प्रमाणित बीज उत्पादन के लिए आधर बीज का प्रयोग किया जाता है। बोने से पहले बीज थैलों पर लगे टैग या लेबिल से उसकी शुद्वता की जांच कर ली जाती है और बुआई के बाद लेबिल संभाल कर रखे जाते हैं।

खेत का चयन: बीज फसल के लिए खेत का चयन करते समय यह ध्यान रखा जाता है कि खेत की स्थिति, बीज फसल की पृथक्करण आवश्यकताओं के अनुरूप हो और खेत में पिछले वर्ष वह फसल न उगाई गई हो। खेत स्वयं उगे अन्य पौधें व खरपतवारों से मुक्त हो व खेत की मृदा की किस्म व उर्वरता बीज फसल के अनुरूप होने के साथ-साथ, मृदा-जन्य कीड़ों व रोगों से मुक्त हो।

संदूषण स्त्रोत से पृथक्करण: बीज स्त्रोतों को पर-परागण द्वारा होने वाले संदूषण, कटाई व गहाई के समय अन्य बीजों के मिश्रण तथा रोगों के फैलाव की रोकथाम के लिए निश्चित दूरी पर उगाया जाता है, जो बीज फसल की परागण विधि् व बीज वर्ग के आधर पर रखा जाता है। आमतौर पर स्वयं परगित फसलों में 3 मीटर, आंशिक पर-परागित फसलों में 30 मीटर तथा पर-परागित फसलों में 200 मीटर की दूरी रखी जाती है। कीट परागित ;1000 मी. तकद्ध तथा वायु परागित फसलों में ;वायु की दिशा के अनुसारद्ध और अध्कि दूरी रखनी पड़ती है। आधर बीज उत्पादन में प्रमाणित बीज की तुलना में अध्कि ;प्राय: दोगुनीद्ध दूरी रखनी पड़ती है। इसके लिये भारत सरकार ने विभिन्न फसलों के लिये मानक जारी किये है। इन मानकों का अनुसरण वैधनिक रूप से अनिवार्य है। यदि बीज फसल व अन्य खेतों के बीच में कोई रूकावट खड़ी कर दी जाए तो पृथक्करण दूरी कम की जा सकती है। जैसे-संकर बीज उत्पादन में सीमांत पंक्तियों का बोया जाना, किसी दूसरी असम्बन्धित फसल की पंक्तियां लगाना अथवा कोई भौतिक बाध ;जैसे, 2 मी. ऊँची पॉलिथीन शीटद्ध खड़ी करना। पौधे

या पौधें के समूह को किसी तरह से ढककर, फूलों पर लिफाफे लगाकर, पृथक्करण वाले पौधे के फूलों से नर अंगों को अलग करके भी पृथक्करण किया जा सकता है। जब बीज फसल को भिन्न फसल के खेतों से अपेक्षित दूरी पर उगाना सम्भव नहीं होता तो बीज फसल को अगेती या पछेती फसल के रूप में उगाया जाता है, जिससे बीज फसल व निकटस्थ भिन्न फसल में पुष्पन भिन्न समय पर हो। भिन्न किस्मों के बीजों को कटाई के बाद अलग रखा जाता है और गहाई व संसाध्न क्रियाएं भी अलग-अलग की जाती है, जिससे यांत्रिक मिश्रण न हो पाये।

सस्य क्रियाएं

खेत की तैयारी: खेत की तैयारी अच्छी होनी चाहिए ;इससे फसल के बीजों का अंकुरण अच्छा होता है, खरपतवारों की रोकथाम तथा भूमि में जल प्रबन्ध् अच्छा होता है।

बुआई: बीज फसल की बुआई उपयुक्त समय पर उचित नमी अवस्था में की जानी चाहिए। बीज फसल में बीज की दर वाणिज्य फसल की अपेक्षा कम रखी जाती है और पंक्ति से पंक्ति व पौधे से पौधे की दूरी भी कुछ अध्कि रखी जाती है, जिससे अवांछनीय पौधें के निकालने में सुविध रहे। कभी-कभी बीजों को प्रसुप्ति समाप्त करने, जीवाणु-निवेशन व बीज जन्य कीड़ों व बीमारियों की रोकथाम के लिए उपचारित करने की आवश्यकता होती है।

संकर बीज उत्पादन में दो जनकों को वांछित अनुपात ;2 मादा: नर अथवा 6 मादा: 2 नरद्ध में बोया जाता है, जिनके चारों सीमांत पंक्तियां लगाई जाती है।

खाद एवं उर्वरक: बीज फसल में पौधें व दानों के उचित विकास के लिए नत्राजन, फॉस्फोरस व पोटाश जैसे प्रमुख पोषक तत्व यथासमय पर्याप्त मात्रा में देने की आवश्यकता होती है, जो जैविक खादों व उर्वरकों के द्वारा पूरी की जा सकती है। कभी-कभी कुछ अन्य पोषक तत्वों, जैसे कैल्शियम, मैग्नीशियम, लोहा, तांबा, जस्ता, गंध्क, बोरोन, मैगनीज और मैग्नीशियम की पूर्ति भी भूमि परीक्षण में इनकी कमी मिलने पर की जाती है। जैविक खाद ;गोबर की खाद, कम्पोस्ट आदिद्ध बुआई से एक माह पूर्व खेत में मिला देनी चाहिये। नत्राजन वाले उर्वरक 2-3 बार ;बुआई के समय, 30-40 दिन बाद व पुष्पन से पूर्वद्ध लेकिन फॉस्फोरस व पोटाश बुआई से पूर्व या बुआई के समय दिए जाते हैं।

सिंचाई व जल-निकास: बीज फसल से अच्छी उपज लेने के लिए कई सिंचाईया करनी पड़ती हैं। कुछ फसलों में फालतू पानी के निकास की भी आवश्यकता होती है। सिंचाई की मात्रा व अवधि् फसल की आवष्यकता के अनुरूप रखने समे अच्छी बीज उपज एंव गुणवता प्राप्त की जा सकती है।

फसल सुरक्षा: बीज फसल को खरतवारों, कीड़ों व बीमारियों से मुक्त रखने के लिए समय-समय पर निराई-गुड़ाई करने रहना चाहिए तथा आवश्यकतानुसार खरपतवारनाशकों, कीटनाशकों व कवक नाशकों का छिड़काव भी करना चाहिए।

अवांछनीय पौधें को निष्कासन : बीज फसल से समय-समय पर अन्य किस्मों के पौधें, खरपतवारों व रोगों पौधें को निकालते रहना चाहिए, जिससे पर-परागण व रोगों के प्रसार से बीज खराब न होने पाए। पौधें को पूरे ;जड़ सहितद्ध उखाड़कर, थैलों या लिफाफों में बंद करके खेत से बाहर ले जाकर गड्ढे में दबा या जला देना चाहिए, जिससे वे संदूषण न फैलाएं। भिन्न पौधें को ऊँचाई, तने व पत्ती के रंग, आकार व शक्ल आदि के आधर पर पहचाना जा सकता है।

कटाई व गहाई: बीजों के पूर्णत: परिपक्व हो जाने पर उचित नमी अवस्था में कटाई की जाती है। अध्कि नमी अवस्था में कटाई करने पर गहाई व सफाई करने में बीज क्षति होती है, कवकों व कीड़ों का आक्रमण शीघ्र होता है और अंकुरण क्षमता पर विपरित प्रभाव पड़ता है। साथ ही कटाई में देरी से ध्ूप, वर्षा आदि से बीज गुणवत्ता में ÷स होता है और कुछ फसलों में दाने खेत में बिखरने की समस्या होती है। कटाई व बैलों से की जा सकती है। इस सबसे यॉंत्रिक क्षति व संदूषण से बचाव किया जाता है। बीज की गहाई पक्के फर्श अथवा तिरपाल पर की जानी चाहिए।

बीज प्रसंस्कर: प्राय: कटाई के समय बीज फसल में नमी की मात्रा सुरक्षित अवस्था में अध्कि होती है। अत: उसे सुरक्षित आर्द्रता मात्रा के स्तर तक लाने के लिए ध्ूप या कृत्रिम सुखाई द्वारा सुखाया जाता है। विभिन्न फसलों में सुरक्षित आर्द्रता मात्रा भिन्न होती है। इसके बाद उसमें से अन्य पदार्थ ;अन्य बीज व अक्रिय पदार्थद्ध अलग करके उसकी उचित सफाई की जाती है।

बीज उपचार: बीज जनित कीड़ों व रोगों से भण्डारण में बीज को होने वाली क्षति और खेत में इनके प्रसार से बचाव के लिए बीजों को विभिन्न कीटनाशकों व कवकनाशकों से उपचारित किया जाना आवश्यक होता है।

बीज भण्डारण: बीजों को निम्न ताप व निम्न नमी की दशाओं में भंडारित किया जाता है, जिससे भण्डारण के समय कीड़ों के फैलने का भय न रहे। इसके लिए बीज बोरों या साइलों बिन में रखा जाता है। बोरों को प्रयोग से पूर्व अच्छी तरह साफ कर लेना चाहिए, क्योंकि उनमें पहले से अन्य फसल के बीज या कीड़े आदि हो सकते हैं।

बीज परीक्षण: बीज में अनुवांशिक व भौतिक शुद्धता, अंकुरण प्रतिशत व नमी प्रतिशत आदि के लिए परीक्षण किये जाते हैं, जिनका ब्यौरा उन पर लगाए जाने वाले अंकन पत्रों में दिया जाता है। बीज परि.क्षण बीज विधन के अनुरूप किया जाता है। उत्पादित बीज भारतीय नयुनतम बीज प्रमाषीकरण मानक के अनुरूप होना चाहिए।

पैकिंग: प्रसंस्कृत व परीक्षित बीज को उपयुक्त और नमीयुक्त थैलों में भरकर सील किया जाता है और प्रमाणपत्रा संल्गन किए जाते हैं। थैलों में बीज के बारे में पूर्ण जानकारी सहित लेबिल व टैग आदि लगाए जाते हैं।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

प्याज एवं लहसुन में रोग एवं कीट प्रबंधन

पंकज यादव, महेन्द्र कुमार सारण
(पादप रोग विज्ञान विभाग)
जय प्रकाश (कीट विज्ञान विभाग)
मोहन लाल जाट (उद्यान विभाग)
चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

प्याज एवं लहसुन भारत में उगाई जाने वाली महत्वपूर्ण सब्जी एवं मसाला फसलें है, जिसे भारतीय उपमहाद्वीप के दोनों फसल चक्रों अर्थात रबी एवं खरीफ ऋतुओं में उगाया जाता है प्याज एवं लहसुन में बहुत से औषधीय गुण भी पाये जाते हैं। इसमें प्रोटीन एवं कुछ विटामिन भी अल्प मात्रा में रहते हैं। भारत के प्याज उत्पादक राज्यों में महाराष्ट्र, गुजरात, उ.प्र., उड़ीसा, कर्नाटक, तमिलनाडू, म.प्र.,आन्ध्रप्रदेश एवं बिहार प्रमुख हैं। प्याज व लहसुन से अधिक उत्पादन के लिए हानिकारक रोगों एवं कीटों की रोकथाम आवश्यक है। प्याज के विभिन्न रोगों एवं कीटों की पहचान करके निम्न प्रकार से उसका प्रबंधन कर सकते हैं-

आर्द्रगलन (डैम्पिंग आफ): प्याज व लहसुन में यह रोग मुख्य रूप से पीथियम, फ्यूजेरियम तथा राइजोक्टोनिया कवकों द्वारा होता है। बीज में अंकुर निकलने के तुरन्त बाद, उसमें सड़न रोग लग जाता है जिससे पौध जमीन से उपर आने से पहले ही मर जाती है। बीज अंकुरण के 10-15 दिन बाद जब पौध जमीन की सतह से उपर निकल आती है तो इस रोग का प्रकोप दिखता है। पौध के जमीन की सतह पर लगे हुए स्थान पर सड़न दिखाई देती है और आगे पौध उसी सतह से गिरकर मर जाती है।

- प्रमाणित बीजों का प्रयोग करना चाहिए। ■ बुवाई से पूर्व बीज को थाइरम या कैप्टान 2.5 ग्राम प्रति कि.ग्रा बीज की दर से उपचारित करें। ■ जड़ और जमीन को ट्राइकोडर्मा विरडी के घोल (5.0 ग्राम प्रति लीटर पानी) से 15 दिन के अन्तराल पर छिड़काव करना चाहिए। ■ खरीफ मौसम में पौधशाला की क्यारियां जमीन की सतह से उठी हुई बनायें जिससे कि पानी इकट्ठा न हो।

मृदुरोमिल आसिता (डाउनी मिल्ड्यू): प्याज व लहसुन में यह रोग पेरोनोस्पोरा डिस्ट्रक्टर नामक फफूंद द्वारा होता है। इसके लक्षण सुबह जब पत्तियों पर ओस हो तो आसानी से देखे जा सकते है। पत्तियों पर छोटे, सफेद रंग के धब्बे जिनमें अधिक आर्द्रता और नमी होने पर धब्बों के मध्य सतह पर हल्के भूरे रंग के कवक तन्तु की वृद्धि देखी जा सकती है। अधिक संक्रमण होने पर पत्तियाँ प्रभावित भाग से मुलायम होकर लटक जाती है व सूख जाती है। अधिक नमी एवं कम तापमान प्याज के इस रोग के सहायक तत्त्व हैं रोगी पौधे से प्राप्त कन्द आकार में छोटे होते हैं तथा इनकी भंडारण अवधि कम हो जाती है।

प्रबंधन

- हमेशा अच्छी प्रजाति के बीजों का इस्तेमाल करना चाहिए।
- इस रोग की रोकथाम के लिए केराथेन नामक फफूंदनाशक को 1 ग्राम प्रति लीटर के हिसाब से पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए। रोग की पुनरावृत्ति होने पर 15 दिनों बाद एक बार पुनः छिड़काव करना चाहिए।
- बीमारी का प्रकोप होने पर मेटालेक्सिल 8 प्रतिशत मेंकोजेब 64 प्रतिशत डबल्यू पी फफूंदनाशक की 2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी के घोल का छिड़काव 10 दिन के अन्तराल पर दो बार करना चाहिए।

बैंगनी धब्बा (पर्पल ब्लाच): यह बीमारी आल्टरनेरिया पोरी नामक फफूंद से होता है एवं प्याज एवं लहसुन उगाने वाले सभी क्षेत्रों में पायी जाती है। इस रोग के लक्षण प्याज की पत्तियों और बीज फसल की डंठलो पर शुरूआत में सफेद भूरे रंग के धब्बे बनते हैं एवं जिनका मध्य भाग बैंगनी रंग का होता है। रोगग्रस्त पत्तियां झुलस जाती हैं तथा पत्ती और तने गिर जाते हैं जिसके कारण कन्द और बीज नहीं बन पाते। अनुकूल समय में जब वातावरण का तापक्रम 27 से 30 सेंटीग्रेट तथा आर्द्रता अधिक हो इस रोग का संक्रमण उस समय अधिक होता है इस बीमारी का प्रकोप खरीफ मौसम की फसलों में ज्यादा दिखाई पड़ता है।

प्रबंधन

- 2-3 साल का फसल-चक्र अपनाना चाहिए। प्याज से संबंधित चक्र शामिल नहीं करना चाहिए। ■ बीज का उपचार थायरम या कैप्टान नामक फफूंदनाशक की 2.5 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से करना चाहिए। ■ रोग के लक्षण दिखाई देने पर मैंकोजेब (3 ग्राम प्रति लीटर) या कार्बेन्डाजिम (2 ग्राम प्रति लीटर) को पानी में घोलकर 15 दिन के अंतराल पर छिड़काव करना चाहिए। ■ फफूंदनाशक क्लोरोथैलोनिल 2.0 ग्राम प्रति लीटर या मैन्कोजेब का 2.5 ग्राम प्रति लीटर या प्रोपीनेब 2.0 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर दिन के अंतराल पर छिड़काव करें।

प्याज का कण्ड (स्मट): यह बीमारी यूरोस्टिीस सीपली नामक फंफूद से फैलती है। इस रोग में रोगग्रस्त पत्तियों और बीज पत्तों पर काले रंग के फफोले बनते है जो बाद में फट जाते हैं और उसमें से रोगजनक फंफूदी के असंख्य बीजाणु काले रंग के चूर्ण के रूप में बाहर निकलते हैं और दूसरे स्वस्थ पौधों में रोग फैलाने में सहायक होते हैं।

प्रबंधन

- हमेशा स्वस्थ एवं उत्तम कोटि के बीजों का इस्तेमाल करना चाहिए। ■ दो-तीन वर्ष का फसल-चक्र अपनाना चाहिए। ■ बीज को बोने से पूर्व थाइरम या कैप्टान 2.0-2.5 ग्राम प्रति कि.ग्रा. की दर से उपचारित करें। ■ कार्बेन्डाजिम 0.1% फफूंदनाशक का छिड़काव दो बार 15 दिनों के अन्तराल पर करना चाहिए।

झुलसा रोग (स्टेमफीलियम ब्लाइट): प्याज व लहसुन में यह रोग स्टेम्फीलियम वेसीकेरियम द्वारा उत्पन्न होता है। प्रारंभ में छोटे सफेद तथा हल्के भूरे धब्बे बनते हैं, जो बाद में गहरे भूरे या काले रंग के हो जाते हैं। प्याज में यह धब्बे पत्ती के भीतरी सतह में फैल जाते है, जबकि बाहरी सतह हरी रहती है व बीज फसल में डंठलों पर भी फैल जाते हैं। पत्तियां धीरे-धीरे सिरे की तरफ से सूखना शुरू करती हैं और आधार की तरफ बढ़कर पूरी सूख कर जल जाती हैं और कन्दों का विकास नहीं हो पाता।

प्रबंधन

- स्वस्थ एवं अच्छी प्रजाति के बीज का प्रयोग करना चाहिए। ■ लम्बा फसल-चक्र अपनाना चाहिए। ■ बीज का उपचार कैप्टान या थायरम नामक फफूंदनाशक की 2.5 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से करना चाहिए। ■ पौध की रोपाई के 45 दिनों के बाद 0.25 प्रतिशत मैनकोजेब (डाइथेन एम-45) या 0.2-0.3% कॉपर आक्सीक्लोराइड (ब्लाइटाक्स- 50) का छिड़काव प्रत्येक 15 दिन के अन्तराल पर 3-4 बार करना चाहिए। ■ फफूंदनाशक क्लोरोथैलोनिल 2.0 ग्राम प्रति लीटर या मैन्कोजेब 2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर 10 दिन के अंतराल पर छिड़काव करें।

आधार विगलन (बेसल रॉट): प्याज में यह रोग फ्युजेरियम आक्सीस्पोरम फफूंद के द्वारा होता है, इस रोग के संक्रमण के शुरूआत में पत्तियाँ और बीज डंठल पीली पड़ जाती है, जो बाद में धीरे-धीरे सूख जाती है। जिसके कारण प्याज के कन्द और बीज फसल में अम्बेल का आकार छोटा रह जाता है। इस रोग का मुख्य लक्षण कन्दों के निचले आधारीय भाग में सड़न दिखाई देती है तथा जड़े गुलाबी रंग की हो जाती है। गर्म एवं उष्ण जलवायु मे इस रोग का प्रकोप अधिक होता है।

प्रबंधन

- लगाने से पूर्व क्षतिग्रस्त तथा बीमारीग्रस्त कन्दों को अलग कर नष्ट कर देना चाहिए ■ पिछली फसलों के अवशेषों को जलाकर नष्ट करना चाहिए तथा गर्मियों में गहरी जुताई करनी चाहिए। ■ कन्दों को कार्बेन्डाजिम 2.0 ग्राम/ली.टर के घोल में डुबाकर लगाना चाहिए। ■ पौध रोपाई या कन्द बुवाई पूर्व खेत में ट्राइकोडर्मा विरिडी या ट्राइकोडर्मा हारजिएनम की 5 से 6 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से गोबर की खाद के साथ मिलाना चाहिए। ■ कार्बेन्डाजिम नामक फफूदीनाशक का 0.1% की दर से 10 दिन के अन्तराल पर दो छिड़काव करें साथ ही साथ ड्रेन्चिंग करें।

प्याज का विषाणु पीत बौना (ओनियन येलो ड्वार्फ वाइरस): यह एक विषाणु जनित रोग है। रोग ग्रसित पौध की पत्तियों के आधार पर पीली धारियाँ दिखाई पड़ती हैं। नई पत्तियाँ पीली और चपटी हो जाती है, बाद में पत्तियाँ मुड़ने लगती है। कंद छोटे व अनियमित आकार के हो जाते हैं। यह रोग एफिड द्वारा फैलता है।

प्रबंधन

- रोगग्रस्त पौध को उखाड़कर गड्ढे में दबा देना चाहिए। ■ डेल्टामेथ्रिन या फिप्रोनिल 0.1 प्रतिशत कीटनाशक का छिड़काव करना चाहिए।

प्याज व लहसुन के प्रमुख कीट

चुरड़ा कीट (थ्रिप्स) : थ्रिप्स प्याज व लहसुन के साथ-साथ, कई अन्य फसलों का महत्वपूर्ण कीट हैं। यह कीट वर्ष भर सक्रिय रहता है, इस जाति की मादा 50 से 70 अण्डे पत्तियों की बाह्म परत में गड्ढा बनाकर देती है। अण्डों से 5 से 10 दिन बाद छोटे-छोटे अर्भक निकलते हैं। इसका पूरा जीवन-चक्र 14 से 30 दिनों में पूरा होता हैं। यह कीट प्याज और लहसुन के पौधों के फूलों और पत्तियों पर तेज गति से चलते हुए देखा जा सकता हैं। वे आम तौर पर एक पत्ते के आधार पर या फूल में एकत्र होते हैं। इस कीट के निम्फ एवं प्रौढ़ दोनों ही अवस्थायें मुलायम पत्तियों का रस चूस कर उन्हें क्षति पहुँचाती हैं, इस कीट से प्रभावित पत्तियों में जगह जगह पर सफेद धब्बे दिखाई देते हैं, इनका अधिक प्रकोप होने पर पत्तियां सिकुड़ जाती है और पौधों की बढ़वार रुक जाती है। प्रभावित पौधों की पत्तियाँ चांदी जैसी सफेद, मुड़ी हुई, झुर्रीदार हो जाती हैं और धीरे-धीरे सिरे से नीचे की ओर सूख जाती हैं। पौधे न तो बल्ब बनाते हैं और न ही फूल बीज लगाते हैं। पत्ती की नोक का रंग बदलना और सूखना इसका मुख्य लक्षण है।

प्रबंधन

- कीट प्रतिरोधी किस्मे उगाएं। ■ कीट के प्रकोप को कम करने के लिए नीम लेपित यूरिया का प्रयोग करें। ■ 10 ट्रैप प्रति एकड की दर से आसमानी नीले रंग के स्टिकी ट्रैप लगाएं। ■ रोपाई हमेशा समय पर ही करनी चाहिए।
- शुष्क वातावरण वाली जगहों पर 2 से 6 सप्ताह के अन्तर पर प्याज की रोपाई करनी चाहिए, जिससे थ्रिप्स के जीवन-चक्र को नियंत्रित किया जा सके।
- थ्रिप्स कीट को बौछारीय सिंचाई द्वारा भी कम कर सकते हैं, क्योंकि बौछारीय सिंचाई से यह कीट मर जाते हैं।
- कीट के प्रकट होते ही 300 मिली मैलाथियान 50 ईसी या 175 मि.ली. डैल्टामेथ्रिन 2.8 ई.सी. या 60 मि.ली. साइपरमेथ्रिन 25 ई.सी. या 150 मि.ली. साइपरमेथ्रिन 10 ई.सी को 200- 250 लीटर पानी प्रति एकड में स्प्रे करें। कटाई से पहले 7 दिनों की प्रतीक्षा अवधि देखी जानी चाहिए।
- प्याज के बीज उत्पादन वाली फसल में उपरोक्त सभी कीटनाशकों का छिड़काव फूल आने से पहले करना चाहिए।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

लवणीय एवं तैलीय पानी का उचित उपयोग

सीमा, रीटा दहिया, राम प्रकाश
मनीष ककरालिया

चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय हिसार

हम इस तथ्य से भली भाती परिचित है कि भूमि, जल एवं पौधों का गहरा संबंध होता हैं। पौधों की वृद्धि के लिए एक निश्चित मात्रा में नमी की आवश्यकता होती हैं। पौधों की वृद्धि के लिए आवश्यक जल की आपूर्ति प्राकृतिक संसाधनों से नहीं होने पर पौधों की जलापूर्ति सिंचाई द्वारा की जाती हैं कृषि विकास एवं सघन फसल उत्पादन में पानी का उचित उपयोग एक महत्वपूर्ण घटक है, जिसका दूसरा अन्य विकल्प नहीं हैं। संपूर्ण विश्व में केवल 3 प्रतिशत पानी पीने योग्य है, जिसमें से 2.4 प्रतिशत ग्लेशियरों और उत्तरी-दक्षिणी ध्रुव में जमा हुआ है और केवल 0.6 प्रतिशत पानी नदियों, झीलों और तालाबों में पाया जाता है। इस पानी का उपयोग कृषि एवं अन्य व्यवसायिक कार्यो के लिए लिया जा सकता है। वस्तुतः संपूर्ण विश्व में जल संसाधनों की कमी निरंतर चिंता का विषय बना हुआ है। प्रदेश में लगभग 55 प्रतिशत भूमिगत जल क्षारीय व लवणीय ग्रसित है जिसको भी सुधार करकें उपयोग में लिया जा सकता है।

सिंचाई के पानी की गुणवत्ता की जांच कैसे करें

पानी में घुले लवणों की सांद्रता

यदि सिंचाई जल की चालकता 2250 माइक्रो मोज से अधिक है तो यह जल सिंचाई के लिए अनुपयुक्त माना जाता है। परंतु 750 माइक्रो मोज विद्युत चालकता वाले पानी से लवण सहिष्णु फसलों की सिंचाई की जा सकती हैं।

कैल्शियम और मैग्नीशियम के योग से सोडियम का अनुपात

सोडियम की अधिक मात्रा की उपस्थिति से सिंचाई जल को हानिकारक माना जाता है। यदि सोडियम की मात्रा कैल्शियम और मैग्निशियम के योग से अधिक पाई जाती है तो ऐसे निरंतर जल सिंचाई से मिट्टी को उसर बनाने में सहायक है।

बोरान की सांद्रता

यदि सिंचाई जल में बोरान की मात्रा 1 पी.पी.एम. से कम है तो वह सिंचाई के लिए सुरक्षित है। सिंचाई जल में 3 पी.पी.एम. बोरान की मात्रा पर केवल सहिष्णु फसलें ही उगाई जा सकती हैं।

कार्बोनेट और बाइकार्बोनेट की सांद्रता

सिंचाई जल में कार्बोनेट एवं बाइकार्बोनेट की मात्रा 8.5 एम.ई. प्रति लीटर से अधिक होने पर सिंचाई नहीं करनी चाहिए।

एस. ए. आर. और आर. एस. सी. की सांद्रता

यदि सिंचाई जल की एस. ए. आर. 10 एम. ई. प्रति लीटर एवं आर. एस. सी. 1.25 एम. ई. प्रति लीटर से कम है तों यह सिंचाई के उपयोग माना जाता है । परंतु यदि सिंचाई जल की एस. ए. आर. 18 एम. ई. प्रति लीटर एवं आर. एस. सी. 2.5 एम. ई. प्रति लीटर से अधिक पायी जाती है तो वह सिंचाई जल के लिए अनुकूल नहीं है।

पानी का उचित प्रबंधन व ध्यान देने योग्य बातें

- सबसे पहले भूमिगत जल की संपूर्ण जांच करवा लेनी चाहिए जिससे आसानी से पता चल सके कि भूमिगत जल लवणीय या क्षारीय हैं।
- सिंचाई से पहले भूमि के समतल करवा ले ताकि कम पानी में ज्यादा उत्पादन लिया जा सकता हैं।
- खारे पानी के प्रभाव वाले क्षेत्रों में नमक सहनशील फसलों का ही चयन करें जैसे कि जौं, सरसों, आलू, ज्वार, मक्का आदि।
- खारे पानी के प्रभाव को कम करने के लिए टपका सिंचाई प्रणाली का उपयोग भी अत्यधिक लाभदायक हैं। इससे लवणों का फसल पर कम असर होता है एवं पानी का उपयोग भी कम पाया गया हैं।
- इन क्षेत्रों में गोबर व कंपोस्ट खाद का प्रयोग करना चाहिए ताकि भूमि में जीवांश एवं सुक्ष्म जीवों की संख्या को बढ़ाया जा सके। • खारे पानी के प्रभाव वाले क्षेत्रों में कुछ मात्रा में नहर के पानी का प्रयोग भी किया जाता है ताकि लवणों के जमाव को रोका जा सके और मृदा की गुणवता कों बनाए रखा जा सकें।
- सिंचाई वाले पानी की आर. एस. सी. 2.5 एम ई प्रति लीटर से अधिक हो तब जिप्सम का उपयोग किया जा सकता है। आर. एस. सी. की हर एम. ई प्रति लीटर के लिए 1.5 क्विंटल जिप्सम प्रति एकड़ का उपयोग करें। जिप्सम को ऊपरी सतह में अच्छे से मिलाकर भरपूर पानी लगाएं ताकि अगली फसल के लिए नमक की मात्रा अवशोषित हो जाए।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

गेहूँ का पीला रतुआ एवं रोकथाम

बिशन सिंह (कृषि विकास अधिकारी)
कृषि एवं किसान कल्याण विभाग, (हिसार) हरियाणा

फसल की महत्वता

खाद्यान्न फसलों में गेहूँ बहुत ही महत्वपूर्ण फसल है। हमारे देश में चावल के बाद गेहूं को सबसे अधिक खाया जाता है। समस्त उत्तर भारत में बड़े भू-भाग पर रबी के मौसम में इसकी खेती की जाती है। उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, मध्यप्रदेश, राजस्थान आदि गेहूं के प्रमुख उत्पादक राज्य हैं।

खाद्यान्न फसलों की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण फसल होने के कारण, इसका अच्छा उत्पादन लेने के लिए बीमारियों व कीटों से बचाना अति आवश्यक है। देश के अन्न भंडार भरने के साथ-साथ गेहूं फसल की अच्छी पैदावार देश के किसानों को समृद्ध व शक्तिशाली तो बनाती ही है तथा देश की खाद्यान्न स्थिति को ही मजबूत करने में भी सहायता करती है।

पीला रतुआ (Yellow Rust)

- पीला रतुआ गेहूं में लगने वाले रोगों में से एक मुख्य रोग है। कृषि वैज्ञानिक की भाषा में इसको येलो रस्ट या स्ट्राइप रस्ट **(stripe rust)** के नाम से भी जाना जाता है। यह रोग गेहूं में पक्सीनिया स्ट्राईफॉरमिस नामक फंगस द्वारा फैलता है। यह रोग आमतौर पर हिमालय पर्वतीय क्षेत्रों से मैदानी क्षेत्रों में पाया जाता है। इस रोग के लिए लगभग 7-13 डिग्री सैल्सियस तापमान बीजाणु जमाव व पौधों को संक्रमण के लिए अनुकूल माना जाता है। परन्तु 12-15 डिग्री सैल्सियस तापमान पर यह रोग पूरे खेत में फैल जाता है। वातावरण का तापमान 22-25 डिग्री पहुंचने पर इस रोग का फैलाव रूक जाता है।

पीला रतुआ का प्रकोप

- पीला रतुआ गेहूं में फफूंद **(Fungus)** के द्वारा फैलता है। जिसकी वजह से पौधे की पत्तियों पर धारियों में पीले रंग के छोटे-छोटे धब्बे कतारों में बन जाते हैं। कभी-कभी यह धब्बे पत्तियों व डंठलों/तनों पर भी पाए जाते हैं। इन पत्तियों को हाथ से छूने, सफेद कपड़े व नैपकिन इत्यादि से छूने पर पीले रंग का पाऊडर लग जाता है। ऐसे खेत में जाने पर कपड़े पीले हो जाते हैं। यदि यह रोग फसल में कल्ले निकलने की अवस्था में या इससे पहले आ जाए तो गेहूं की पैदावार एवं उसकी गुणवत्ता पर काफी विपरीत असर पड़ता है। फसल में भारी हानि होती है। पत्तियों का सिर्फ पीला होना ही इस रोग के लक्षण नहीं है। बल्कि पत्तियों को छूने पर हल्दी जैसा पीला रंग इस रोग की मुख्य पहचान है।

रोग की पहचान

- प्रारंभिक अवस्था में यह रोग खेत में 10-15 पौधों पर एक गोल दायरे के रूप में शुरू होता है तथा धीरे-धीरे बढ़ता जाता है। इसे अवस्था को रोग का फोकस **(Centre)** कहा जाता है। आरंभ में यह फोकस (केंद्र) कम होते हैं परंतु समय के साथ ये फोकस/केंद्र संख्या बढ़ने लगती है। परंतु एक समय ऐसा आ जाता है। जब पूरा खेत इस रोग से ग्रस्त हो जाता है। यह रोग प्रायः छाया वाले क्षेत्रों में तथा अधिक नमी वाले क्षेत्रों में खेतों में ज्यादा आता है। जहां नाईट्रोजन खादों का प्रयोग अधिक व पोटाश खाद का प्रयोग ना किया गया हो। क्योंकि पोटाश तत्व पोधो में गुणवत्ता बनाये रखने व बीमारियों से लड़ने के लये क्षमता प्रदान करता है।

पीला रतुआ प्रकोप क्षेत्र

उत्तर पश्चिम मैदानी क्षेत्रों में मुख्यतः पंजाब, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश का मैदानी भाग, राजस्थान पश्चिमी उत्तर प्रदेश, दिल्ली, कुछ भाग उत्तराखंड (मैदानी क्षेत्रों) इत्यादि इस रोग से ग्रस्त होते हैं। आमतौर पर यह रोग अधिक नमी तथा तराई वाले क्षेत्रों में अधिक फैलता है। हरियाणा में अंबाला, करनाल, यमुनानगर, कुरुक्षेत्र, पानीपत सिरसा, हिसार आदि जिलों में इसका प्रकोप अधिक होता है।

रोकथाम के उपाय

1. गेहूं के बीज का उपचार अवश्य करें, बीज उपचार के लिए सिफारिश की गई फफूंदनाशक दवाओं से सही तरीके से प्रयोग करें। सिफारिश गई फफूंदनाशक दवाएं की सूची इस प्रकार है। बीज जनित रोगों के बचाव हेतु ?1 ग्राम रेक्सिल (**Tebuconazole** 2% **DS**) या 2 ग्राम विटावैक्स (**Carbo&in** 37.5%+**Thiram** 37.5% **DS**) या 2 ग्राम कार्बेंडाजिम **(Bavistin 50% WP)** या 2 ग्राम थाइरम (**Thiram** 75% **DS**) या 2.5 ग्राम मैनकोज़ेब (**Mancozeb** 75% WP) प्रति किलो बीज की दर से उपचारित कर बुवाई करें।
- फसल की बुवाई समय पर करें तथा सिफारिश की गई रोग रोधी किस्मों की ही बुआई करे। जैसे कि **H.D.** 2967, **PBW**-550, **PBW**-502, **DBW**-17, **WH**-542, **WH**-1021, **DPW**-621-50, **HD**-3086
- आवश्यकता से अधिक सिंचाई न करें व नाइट्रोजन खाद का कम प्रयोग करें।
- मिट्टी जांच के उपरान्त संतुलित खाद डालें।
- फसल पर इस रोग के लक्षण दिखाई देने पर दवाई का छिड़काव करें। यह स्थिति अक्सर जनवरी के अंत या फरवरी के शुरू में आती हैं। इससे पहले यदि रोग का प्रकोप दिखाई दे तो छिड़काव तुरन्त करें।
- छिड़काव के लिए प्रोपीकोनेजोल 25 ईसी (टिल्ट) या टैबूकोनेजोल 25.9 ईसी (फॉलीकर 250 ईसी) या ट्रियाडिफेमान 25 डब्ल्यूपी (बैलीटोन) का 0.1 प्रतिशत की दर से घोल बना छिड़काव करें। इसके लिए 200 मि.ली. दवा 200 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़काव करें।
- यदि रोग का प्रकोप तथा फैलाव अधिक हो तो दूसरा छिड़काव 10-15 दिन के अंतराल पर अवश्य करें।
- छिड़काव के लिए पानी व दवा की मात्रा सिफारिश अनुसार ही रखें व छिड़काव सही ढंग से करें ताकि दवा पौधों के निचले तथा ऊपरी भागों में अच्छे ढंग से पहुंच जाए।
- फसल चक्र (**Crop rotations**) अवश्य अपनाएं

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

स्क्रीन प्रिंटिंग छपाई की एक प्राचीन तकनीक

डॉ. सरोज यादव, डॉ. नीलम म. रोज
डॉ. नीलम सैनी
वस्त्र एवं विज्ञान अभिकल्पन विभाग
इन्दिरा चक्रवर्ती गृह विज्ञान महाविद्यालय
चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय हिसार

स्क्रीन प्रिंटिंग

स्क्रीन प्रिंटिंग एक प्रिंटिंग (छपाई) की एक प्राचीन तकनीक है, जिसके द्वारा कपड़े अथवा कागज पर रंगों को स्थानांतरित करके विभिन्न प्रकार के डिजाईन बनाये जाते हैं। इसका प्रयोग वस्त्रों तथा विभिन्न वस्तुओं को एक कलात्मक रुप प्रदान करने के लिये किया जाता है। यह एक बहुत ही आसान छपाई है जिसमें पहले नमूने (डिजाईन) को कपड़े पर बनाया जाता है तत्पश्चात् उसे सिल्क या नाईलॉन के कपड़े पर स्थानांतरित किया जाता है।

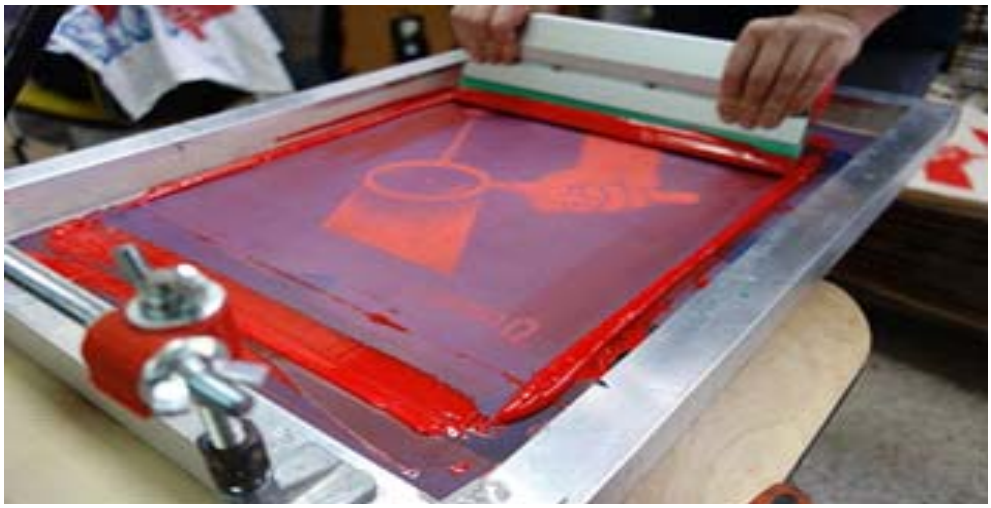

कपड़े का डिजाईन वाला भाग छोडकर बाकि कपडे के हिस्से में मोम के घोल से अवरुद्ध किया जाता है। इस प्रकार छपाई करते समय केवल डिजाईन वाले हिस्से से ही रंग कपड़े पर स्थानांतरित होते हैं। एक से अधिक रंग की छपाई करने के लिये अलग-2 स्क्रीन का उपयोग किया जाता है।

स्क्रीन प्रिंटिंग के लिये सामग्री

- डिजाईन के लिये स्क्रीन
- एक मेज जहां आप अपना कपडा बिछा कर उस पर छपाई कर सकते हैं।
- रबर की स्कवीजी (रंगफैलाने के लिए)
- डिजाईन के अनुसार विभिन्न रंग (पिंगमेट रंग)
- छपाई के लिये कपडा (सूती, रेशमी, सिल्क आदि)

प्रिंटिंग करने की विधि

कपडे की छपाई के लिये तैयार करना

सबसे पहले जिस कपड़े पर छपाई करनी है उसे साबुन से अच्छी प्रकार धोलें। तत्पश्चात् उसे सुखा कर इस्त्री कर लें। कपड़े में सलवटें नही होनी चाहिये।

रंग तैयार करना

एक बर्तन में 25 ग्राम पिंगमेट रंग लें, उसमें 500 ग्राम बाईन्डर व 5 मि.ली फिक्सर डालें। इस सामग्री को अच्छी तरह मिलायें तथा पेस्ट तैयार कर लें।

स्क्रीन बनाना

यदि आपके पास तैयार स्क्रीन है तो उसका उपयोग कर सकते हैं। अपने डिजाईन के अनुसार स्वंय भी स्क्रीन तैयार कर सकते हैं

स्क्रीन बनाने की सामग्री

- नाईलॉन का कपडा
- लकड़ी का फ्रेम
- स्टेपलर
- गोंद
- ब्रश (तूलिका)
- हथौडा

स्क्रीन बनाने की विधि

फ्रेम के आकार का नाईलॉन का कपडा काटें। फ्रेम पर कपड़े को लगाने के लिये चारों तरफ 2÷ अतिरिक्त कपडा रखें। कपडें को पूरी तरह से खींचकर अच्छी प्रकार स्टेपलर और हथौडे की सहायता से फ्रेम पर लगालें। ब्रश की सहायता से डिजाईन वाले भाग को छोडकर अतिरिक्त कपड़े पर गोंद का घोल लगा दें। तत्पश्चात् उसे अच्छी प्रकार सूखने के लिये रख दें तैयार की गई स्क्रीन को छपाई के लिये प्रयोग करें। एक से अधिक रंग की छपाई के लिये अलग-2 स्क्रीन तैयार करें।

कपड़े पर छपाई करना

- तैयार कपड़े को छपाई करने की मेज पर बिछा लें।
- छपाई करने वाले स्थान पर निशाना लगा लें।
- स्क्रीन को छपाई वाले स्थान पर रखें।
- तैयार किये हुए रंग के घोल को स्क्रीन पर डालें तथा स्कवीजी की सहायता से अच्छी प्रकार बराबर दबाव देते हुए फैलायें।
- ध्यान दे कि रंग कपडे के डिजाईन वाले भाग पर ही डालें।
- छपाई के उपरान्त स्क्रीन को सावधानीपूर्वक उठायें अन्यथा छपाई खराब हो सकती है।
- छपाई के 48 घण्टे बाद कपडे की उल्टी तरफ से इस्त्री करें और चार-पाँच दिन बाद ही धोयें।

स्क्रीन प्रिंटिंग के लाभ

- यह एक सरल एवं सस्ती तकनीक है।
- एक बार तैयार किये गये स्क्रीन को बार बार उपयोग कर सकते हैं।
- स्क्रीन तैयार करने के लिये किसी तकनीकी योग्यता की आवश्यकता नही है।
- ठस कला के उपयोग से अच्छे पैसे कमाये जा सकते हैं।
- घरेलू स्त्रियाँ खाली समय का सदुपयोग करके इस कला के द्वारा सुन्दर कलात्मक चीजें बना सकती हैं।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

गेहूँ में खरपतवार नियंत्रण व पोषक तत्व कमी के लक्षण व उपचार

योगिता बाली, मीनू व गुलाब सिंह
कृषि विज्ञान केन्द्र भिवानी
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय हिसार

हरियाणा की लगभग 70 प्रतिशत आबादी गाँव में रहती है और मुख्यता कृषि पर निर्भर है। अगर आकड़ो पर ध्यान दिया जाये तो राज्य में गेहू का उत्पादन 6 गुना बढ़ा है पर इसके साथ–साथ कृषि सम्बन्धी गंभीर समस्याऐ भी उत्पन हो गई है। गेहूँ रबी की एक मुख्य फसल है। इसमे लगातार नई किस्मे आने से पैदावार प्रति एकड़ तो बढ़ी है पर साथ ही खरपरवार की समस्या भी अधिक बढ़ गई है।

लगातार धान-गेहूँ फसल चक्र वाले क्षेत्रों में गुल्ली डंडा/कनकी एक बहुत बड़ी समस्या बन गई है। इसके अलावा जंगली मटर, कंडाई, हिरनखुरी, जंगली पालक आदि खरपतवारों का नियंत्रण न किया गया तो पैदावार में भरी गिरावट आकी जा सकती है।

गेहूँ के मुख्य खरपतवार

घास जाति के खरपतवार-कनकी या गुल्ली डंडा, जंगली जई।

चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार

बाथू, जंगली पालक, मेथा, हिरनखुरी, कृष्णनील, चटरी मटरी, प्याजी, गजरी व कंडाई आदि

खरपतवार नियंत्रण

गेहूँ की फसलों में खरपतवार नियंत्रण निम्न तरीको से किया जा सकता है-

निराई-गुड़ाई

खरपतवार नियंत्रण के लिए पहले व दुसरे पानी के बाद एक से दो गुड़ाई करे यदि संभव हो तो खरपतवारनाशको के प्रयोग दोबारा भी खरपतवारो का नियंत्रण आसानी से किया जा सकता है।

गेहूँ में चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों के नियंत्रण हेतु प्रयोग किये जाने वाले खरपतवारनाशक

- 2-4 डी सोडियम साल्ट, 250 ग्राम प्रति एकड़ के हिसाब से 35-45 दिन के बाद छिड़काव करें
- 2,4-डी एस्टर, 300 ग्राम प्रति एकड़ के हिसाब से 35 -45 दिन बाद छिड़काव करें
- एलग्रिप 8 ग्राम, 200-250 लीटर प्रति एकड़, फ्लैट फेन नोज़ल का इस्तेमाल कर चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों पर नियंत्रण पाया जा सकता है।
- जंगली पालक, हिरनखुरी के नियंत्रण हेतु एफ्फिनिटी 20 ग्राम प्रति एकड़ की दर से 200-250 लीटर पानी का घोल तैयार कर बिजाई के 30-35 दिन बाद छिड़काव करें
- गेहूँ में मिश्रित खरपतवारो के नियंत्रण के लिए एटलांटिस 160 ग्राम प्रति एकड़ की दर से 200 -250 लीटर पानी में मिलकर छिडकाव करें परन्तु ऐसे खेत में ज्वार व मक्के की फसल ना लें।

गेहूँ की पैदावर पर ना केवल खरपतवारो का विपरीत असर दिखाई देता है। अपितु पोषक तत्वों की कमी के कारण भी पोधे की बढ़वार व उसके पैदावार पर गहरा असर पड़ता है। वैसे तो ये छोटे पोषक तत्व कम मात्रा में ही आवश्यक होते है परंतु पौधे की विभिन्न अवस्थाओ की बढ़वार में जरुरी एवं सहायक भी होती है जैसे कि-

- गेहूं में बालियाँ बनते समय पत्तियों पर भूरे पीले रंग की धारियां बनाना, बालिया का मुड़ी-तुड़ी होकर निकलना, मैगनीज के लक्षण को दर्शता है। तो 1 किलोग्राम मैगनीज सल्फेट को 200 लीटर पानी प्रति एकड़ की दर से छिडकाव करें
- लोहे की कमी के कारण नई पत्तियों पर पीली धारी बन जाती है। इसके उपचार के लिए फैरस सल्फेट का छिडकाव करने से लाभ होता है।
- यदि पत्तों पर हल्का रंग या अनियमत धब्बे आ जाते हैं। पत्तों की नोका वाला सिरा हरा हो और बाकि पत्ता पीला पड़ जाये तो इसका अर्थ है की पोधे में जस्ते की कमी के लक्षण है। यदि खड़ी फसल में ये कमी नजर आये तो 0.5% जिंक सल्फेट व 2.5% यूरिया का घोल बनाकर 15-15 दिन के अंतर पर दो छिडकाव करें

विशेष सावधानियां

- गेहूँ की बिजाई से पहले मिट्टी की जाचं अवश्य करवाए ,एवं साइल हेल्थ कार्ड के आधार पर खाद उर्वरक का प्रयोग करें
- बीज उपचारित करके ही बिजाई करें
- जिन क्षेत्रों में कनकी में प्रतिरोधकता की समस्या आ गई है वहां आईसोप्रोटूरान का प्रयोग न करें
- खरपतवारनाशको के छिड्काव के लिए सदैव फ्लैट फैन नोजल का इस्तेमाल करें
- जब हवा बंद हो , तभी छिड्काव करें
- यदि चना, सरसों या चौड़ी पत्ती वाली फसल ली गई है वहाँ 2-4 डी का प्रयोग ना करें नहीं तो विकलांगता आ जाएगी
- हल्की मिट्टी वाले क्षेत्र में नाइट्रोजन की मात्रा 2 बार की बजाय 3 बार में डालें
- सूत्रकर्मी प्रभावित क्षेत्रों में राज. एम. आर किस्म की बिजाई करे व प्रति एकड़ 13 किलोग्राम कार्बोफ्यूरान बिजाई के समय प्रयोग करें।
- गेहूँ की अनुमोदित किस्मों व प्रमाणित बीजों की ही बुवाई करें

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

झारखण्ड में अमरुद की उन्नत खेती

आशा कुमारी, विशाल नाथ पांडे
कृष्णा प्रकाश भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, हजारीबाग, झारखण्ड-825405

अमरुद भारत का एक लोकप्रिय फल है। क्षेत्रफल और उत्पादन की दृष्टि से देश में उगाए जाने वाले फलों में अमरुद का चौथा स्थान है। यह अन्य फलों की अपेक्षा अधिक गर्मी व सूखा सहन कर सकता है। इसके फल न केवल विटामिन और पौष्टिक तत्वों से भरपूर हैं बल्कि इसकी खेती काफी लाभदयक है। खाने के अलावा इसके फलों से जैम, जेली, नेक्टरस चीज और टाफी आदि बनाई जाती है। परीक्षणों से स्पष्ट हो चुका है कि छोटानागपुर क्षेत्र में अमरुद कि खेती करना काफी लाभदायक है। झारखण्ड में प्रमुखतः हज़ारीबाग़, रांची, पलामू, लोहरदगा आदि जिलों में इसकी अधिक उत्पादन देखीं गई हैं जिसके कारण यह झारखंडी सेब के नाम से प्रचलित है।

प्रमुख किस्में

अमरुद कि कई किस्में हैं लेकिन व्यावसायिक दृष्टि से इलाहाबाद सफेद तथा लखनऊ -49 ही सर्वोत्तम पायी गयी है।

इलाहाबाद सफेदा: इस किस्म के पेड़ सीधे बढ़ने वाले, मध्यम ऊंचाई के बड़े गोलाकार, फल की सतह चिकनी, छिलका पीला, गुदा मुलायम, सफेद, सुवासित और मीठा होता है। बीज अधिक बड़े आकार के व् कड़े होते हैं। इस किस्म की भण्डारण क्षमता अच्छी है।

लखनऊ-49: इस किस्म को रसदार अमरुद भी कहते हैं। इस किस्म के पेड़ फैलने वाले, अधिक शाखा व् फल देने वाले होते हैं। फल मध्यम से बड़े, गोल अंडाकार, खुरदरी सतह वाले और पीले रंग के होते हैं। गुदा मुलायम, सफेद, आकार बड़ा व् बीज कड़े होते हैं। भंडारण क्षमता मध्यम होती है। उत्पादन अच्छा होता है।

भूमि

अमरुद को लगभग प्रत्येक प्रकार की मिट्टी में उगाया जा सकता है परन्तु अच्छे उत्पादन के लिये उपजाऊ भूमि अच्छी पाई गई है। अमरुद की बागवानी 4.5 से 9.00 पी.एच. मान वाले मिट्टी में की जा सकती है। परन्तु 7.5 पी.एच. मान से ऊपर वाली मिट्टियों में उकठा रोग के प्रकोप की संभवना बढ़ जाती है।

अमरुद के रोग

उकठा या म्लानी रोग

कारकी: प्युजेरियम आक्सिस्पोरम फा.सिस्प. सिदिअइए ।

लक्षण

रोगी पौधे मुरझाये हुए रहते हैं और उनकी पत्तियां भूरे रंग की होती है। कभी-कभी एक ही पेड़ के कुछ भाग और पत्तियां मरी होती हैं, जबकि शेष भाग स्वस्थ और हरा बना रहता है। डाल की सतह बदरंग हो जाती है।

नियंत्रण के उपाय

1. जड़ों में चूने के प्रयोग से रोग कम हो जाता है।
2. रोगी पौधों को जड़ सहित खोद कर जला देना चाहिए तथा खोदाई से बने गड्ढे में थैरम 3 ग्राम प्रति लीटर की दर से पानी में घोल कर डालना चाहिए।
3. उचित उर्वरकों के साथ-साथ पौधे की देख-रेख अच्छी तरह करनी चाहिए।

तना कैंकर (तना का कोढ़)

कारकी: फेइसेलोस्पोरा सिदीअई

लक्षण : तने और शाखाओं की डाल के फट जाने से उनमें दरारें पड़ जाती हैं। पोषक तत्वों का बहाव बन्द हो जाता है। अधिक रोगी होने पर पूरा पौधा सूख जाता है।

नियंत्रण के उपाय

1. रोगी शाखाओं को काटकर जला देना चाहिए और कटे भाग पर किसी कवकनाशी रसायन जैसे बोड्रों पेस्ट का लेप लगा देना चाहिए। 2. प्रत्येक छंटाई के बाद इंडोफिल एम-45 की 2.5 ग्राम मात्रा को को 1 लीटर पानी में घोल कर 2 से 3 छिड़काव 15 दिनों के अंतर पर करना चाहिए।

कालासडन या श्यामवर्ण रोग

कारकी : कोलेतोत्रेइम सीडीआइ

लक्षण : रोगी फलों पर खुरदरे फफोले बन जाते हैं। इनके आकार एवं भाग संख्या में बढ़ने के कारण फलों का अधिक से अधिक भाग रोगी हो जाता है। रोगी फल सिकुड़कर भूरे हो जाते हैं। ये रोगी फल या पेड़ से लगे रहते हैं या फिर गिर पड़ते हैं। शाखाओं कलियों और फूल पर भी रोग के लक्षण दिखाई पड़ते हैं। शाखायें ऊपर से नीचे की ओर सूखती जाती हैं।

नियन्त्रण के उपाय

1. पेड़ पर लगे रोगी फलों और शाखाओं को काट कर जला देना चाहिए। 2. भण्डारण एवं रास्ते में सडन को रोकने के लिए स्वस्थ कड़े फलों का चुनाव उपचारित पेडों से करें। 3. रोग के लिए सहनशील हल्के लाल गूदे वाली किस्मों को उगाना चाहिए।
4. फैइतोलन या ब्लैताक्स-50 की 3 ग्राम मात्रा की प्रतिलीटर पानी की दर से घोल कर 15 दिनों के अन्तर पर 3-4 छिडकाव करना चाहिए।

धूसर अंगमारी या फल चित्ती या स्काब रोग

कारकी : पेस्तालोशिया सिदिअई

लक्षण: पत्तियों पर भूरे धब्बे बनते हैं जिनके किनारे गहरे रंग के होते हैं। कच्चे फलों पर गहरे चित्ती या स्कब बनते हैं जो फलों को खराब करके उनका मूल्य कम कर देते हैं।

नियंत्रण के उपाय

1. रोगी फलों एवं शाखाओं को काटकर जलाकर नष्ट कर दें।
2. **ब्लैताक्स:** 50 या फैटोलन की 3 ग्राम मात्रा को एक लीटर पानी में घोल कर आवश्यक मात्रा का घोल बनाकर रोगी पौधों पर छिड़काव करें।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

नींबूवर्गीय फलों के उत्पादन में प्रमुख समस्याएं एवं उनका निदान

मनुज अवस्थी, डॉ. सुरेन्द्र कुमार मलिक
आई.सी.ए.आर.-राष्ट्रीय पादप आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, पूसा, नई दिल्ली

आम, केले के बाद तीसरे सबसे बड़े फल उद्योग के रूप में भारत की बागवानी संपदा और अर्थव्यवस्था में नींबू वर्गीय फलों का एक महत्वपूर्ण स्थान है। भारत में उगाए जाने वाले नींबू वर्गीय फलों जैसे मैंडरिन ऑरेंज) सिट्रस रेटिकुलाटा (सबसे प्रमुख है। यह भारत में नींबू वर्गीय फलों की खेती के तहत कुल क्षेत्रफल का लगभग 40% है। भारत में सबसे महत्वपूर्ण नींबू वर्गीय फलों की मुख्य प्रजातियां जैसे सिट्रस रेटिकुलाटा स्वीट ऑरेंज, सिट्रस साइनेंसिस और एसिड लाइम, सिट्रस ऑरेंटिफोलिया (देश में उत्पादित सभी नींबू वर्गीय फलों का क्रमशः 41, 23 और 23% हिस्सा हैं।

नींबू वर्गीय फलों की खेती मुख्य रूप से महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, पंजाब, कर्नाटक में की जाती है। जबकि भारत का उत्तर-पूर्वी क्षेत्र जैसे मेघालय, त्रिपुरा, मिजोरम, सिक्किम, अरुणांचल प्रदेश, आसाम, और मणिपुर में जंगली प्रजातियां तथा सबसे अधिक विविधता पायी जाती है। भारत, नींबू वर्गीय फलों के आनुवंशिक संसाधनों की विविधता में अत्यधिक समृद्ध है।

नींबू वर्गीय फलों के उत्पादन में प्रमुख समस्याएं

भारत में नींबू वर्गीय फलों को उगाने वाले उत्तर पूर्वी के कुछ राज्य जैसे अरुणांचल प्रदेश, नागालैंड, मणिपुर, त्रिपुरा, सिक्किम में कम उपज निम्न कारणों से होती है; जैसे मिट्टी की ढलान, मिट्टी के प्रकार, उर्वरता, ऊंचाई, पेड़ की उम्र, बढ़ती स्थिति, पेड़ के खराब पोषण, वास्तविक रोपण सामग्री की अनुपलब्धता, पुराना बाग और कीट एवं बीमारी का प्रकोप; जबकि फलों का झड़ना, डाईबैक एवं लाइकेन की समस्या पुराने बागों में अधिक पायी जाती है। मिट्टी की खराब पोषण स्थिति के कारण फलों का झड़ना लाइकेन की समस्या होती है, जबकि सूटी मोल्ड की समस्या मिट्टी की अधिक उर्वरता के साथ बढ़ जाती है।

नींबू वर्गीय फलों में अन्य प्रमुख समस्याएं निम्नलिखित हैं;

- बारिश के भारी और लंबे समय तक गिरना (7-9 महीने)
- 60-70% ढलानों तक खेती के कारण भारी मिट्टी का क्षरण
- वृक्षारोपण की आयु
- अम्लीय मिट्टी में संशोधन का कोई उपयोग नहीं
- जिंक की कमी का व्यापक प्रसार
- प्रमुख और गौण तत्वों का कुपोषित पोषण
- प्रमुख कीट और रोग के प्रकोप का उचित अथवा कोई नियंत्रण नहीं
- ट्रिस्टिज़ा और ग्रीनिंग की व्यापकता
- उचित फसल भार का रखरखाव नहीं

नींबूवर्गीय फलों की प्रजातियां: नींबू वर्गीय फलों के उद्योग में, काफी अच्छी संख्या में नींबू वर्गीय फलों की प्रजातियों का व्यावसायिक रूप से कुछ प्रत्यक्ष फल उत्पादन के लिए जबकि कुछ प्रजनन आदि में रूटस्टॉक्स के रूप में दोहन किया गया है।

पूर्वोत्तर भारत से नींबू वर्गीय प्रजातियों का विविधता संग्रहण

प्रमुख नींबू वर्गीय फलों की प्रजातियां निम्नलिखित हैं:

ऑरेंज ग्रुप

सिट्रस सिनेन्सिस: स्वीट ऑरेंज(मोसम्बी, माल्टाब्लड रेड, सथगुद्दी, वेलेंशिया, पाइनएप्पल)
सिट्रस औरनसियम : सॉर ऑरेंज

मैंडरिन ग्रुप

सिट्रस रेटिकुलाटा: नागपुर मैंडरिन, कूर्ग , खासी मैंडरिन, हिल मैंडरिन
सिट्रस अंशु: सात्सुमा मैंडरिन ऑफ़ जापान
सिट्रस डेलीसिओसा: विलो लीफ मैंडरिन, किन्नौ विल्किंग ऑफ़ यूएसए
सिट्रस नोबिलिस: किंग ऑरेंज, टेम्पल

पूमेलो ग्रेपफ्रूट ग्रुप

सिट्रस ग्रान्डिस : रोपण ऑफ़ थाईलैंड
सिट्रस पारडीसी: फोस्टर रूबी मोघ दुंकन थॉम्पसन

एसिड ग्रुप

सिट्रस लिमन: लेमन यूरेका एंड लिस्बन
सिट्रस जम्भीरी: रफ लेमन
सिट्रस औरनसीफोलिआ: सॉर लाइम
सिट्रस लीमेटॉइड्स: स्वीट लाइम
सिट्रस मेडिका: सिट्रोन
सिट्रस करना: करना खट्टा
सिट्रस लैटीफोलिआ: ताहिती लाइम
सिट्रस लीमेट्टा: पानी जमीर
सिट्रस लीमोनिआ: रंगपुर लाइम
वाइल्ड सेमिवील्ड: स्पीशीज सम्बंधित जेनरा
सिट्रस इंडिका: इंडियन वाइल्ड ऑरेंज
सिट्रस लाटिपस: खासी पापेड़ा
सिट्रस मक्रोप्टेरा: मलेशियन पापेड़ा
सिट्रस आईचंगेसिस: आईचंग पापेड़ा

पौध प्रसारण

नींबू वर्गीय फलों को मुख्यतः बडिंग एवं कुछ हद तक ग्राफ्टिंग विधि द्वारा प्रसारित किया जाता है। कागजी नींबू को मुख्य रूप से बीज अथवा गूटी द्वारा प्रसारित किया जाता है। लेमन के पौधे गूटी, दाबा या कलम द्वारा तैयार किये जाते है। नींबू वर्गीय फलों में डिक्लाइन की समस्या गंभीर होती है। अतः इनमें उपयुक्त मूलवृंत का प्रयोग भी किया जाता है जिनपर बडिंग या ग्राफ्टिंग (संतरा, मौसमी) द्वारा अच्छी गुणवत्ता के पौधे तैयार किये जा सकते हैं।

बगीचा लगाने का तरीका

बगीचा लगाने के लिए 5× 5 मी. की दूरी पर वर्गाकार विधि में रेखांकन करके 60 सें.मी.× 60 सें.मी.× 60 सें.मी. आकार के गड्ढे तैयार करने चाहिए। लातेहार, डाल्टनगंज एवं चतरा जैसे जिलों में जहाँ की मिट्टी में मुरम या पत्थर के टुकड़ों की अधिकता है वहाँ गड्ढों की गहराई 1-1.5 मी. तक रखनी चाहिए। गड्ढों की खुदाई मई-जून में तथा भराई जून-जुलाई में करनी चाहिए। यदि मिट्टी अत्यंत खराब है तो तालाब की अच्छी मिट्टी में 20-25 कि.ग्रा. गोबर की सड़ी खाद, 1 कि.ग्रा. करंज/नीम/महुआ की खली, 50-60 ग्राम दीमकनाशी रसायन, 100 ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट/डीएपी प्रति गड्ढे के दर से देने से बाग़ स्थापना अच्छी होती है एंड पौधों की बढ़वार भी उचित रहती है। पौधों को जुलाई-अगस्त में गड्ढों के बीचो-बीच उनके पिण्डी के आकार की जगह बनाकर लगाना चाहिए तथा उनके चारों तरफ थाला बनाकर पानी देना चाहिए। पौधा लगाते समय यह ध्यान रखें कि उनका ग्राफ्टिंग/बांडिग का जोड़ जमीन से 10-15 सें.मी. ऊपर रहे।

पौधों की देख-रेख

नींबू वर्गीय फलों के नवजात पौधों को उचित देख-रेख की आवश्यकता होती है। नये पौधों को गर्मी के मौसम में तेज धूप एवं लू तथा सर्दी के मौसम में ठंड एवं पाले के बचाव का समुचित प्रबंध करना चाहिए। पौधों के जड़ों के पास पर्याप्त नमी बनाये रखने के लिए समय-समय पर सिंचाई की व्यवस्था करनी चाहिए एवं पलवार बिछानी चाहिए। खरपतवार नियंत्रण हेतु भी थालों की समय पर गुड़ाई एवं पतवार का प्रयोग लाभकर पाया गया है।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in

वानस्पतिक अवस्था में पौधों में उचित ढांचा निर्माण अत्यंत जरूरी होता है। अतः उनकी उचित काट-छांट भी करनी चाहिए। पौधों को पर्याप्त मात्रा में पोषक तत्व भी देना जरूरी होता है। अतः संतरा और मौसमी के प्रत्येक पौधे को 20-30 कि.ग्रा. गोबर की सड़ी हुई खाद, 1-1.5 कि.ग्रा. यूरिया 1-1.5 कि.ग्रा. सि.सु.फा. तथा 0.5-0.6 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ़ पोटाश प्रति वर्ष देने चाहिए। इसके साथ ही साथ फल देने वाले पौधों को जिंक सल्फेट (200 ग्रा./पौधा) तथा बोरान (100 ग्रा./पौधा) भी दिया जाना चाहिए। उर्वरक की अच्छी मात्रा नये कल्ले निकलने के समय तथा हल्की मात्रा फल लगने के बाद देने से अच्छी उपज मिलती है। पौधों की वानस्पतिक अवस्था में खाद एवं उर्वरक का संतुलित प्रयोग से उनकी बढ़वार अच्छी होती है। नींबू में भी इसी प्रकार से उर्वरक का व्यवहार किया जाता है।

पौधों की सूखने की समस्या (सिट्रस डिक्लाइन) एवं निदानः नींबू वर्गीय फलों के पौधे जब 15-20 वर्ष के हो जाते हैं तब उनमें सूखने की समस्या पैदा हो जाती है। जिसे सिट्रस डिक्लाइन कहते हैं। झारखंड की अम्लीय मिट्टी में यह समस्या ज्यादा देखी गई है। अतः उसका उचित निदान एवं पोषण प्रबंध अत्यंत आवश्यक हो जाता है। इसके नियंत्रण के लिए निम्नलिखित प्रक्रिया (डिक्लाइन नियंत्रण सिड्यूल) अपनानी चाहिए।

- सूखी एवं रोग ग्रसित डालियों को काट कर हटा दें।
- मुख्य तने पर लगे बोरर के छिद्रों को साफ़ कर उसमें किरोसिन तेल से भींगी रुई ठूंस कर बंद करे दें।
- मकड़ी के जालों तथा कैंकर से ग्रसित पत्तियों को साफ़ कर दें। ■ डालियों के कटे भागों पर ब्लू कापर + अरण्डी तेल का पेंट बनाकर लगायें।
- रोगग्रसित पत्तियों, डालियों को इक्ट्ठा करके जला दें तथा बागीचे की जमीन की गुड़ाई करें। उपरोक्त प्रक्रिया मार्च-अप्रैल में करें और गर्मी में जमीन खुला रखें।

नींबू वर्गीय पौधों की बीमारियां व कीटों से करें सुरक्षाः माल्टा, संतरा, नींबू, मीठा नींबू आदि नींबू वर्गीय पौधों की श्रेणी में आते हैं। इनमें विटामिन सी की मात्रा अधिक होती है, लेकिन विभिन्न कीट एवं बीमारियों के कारण फल की पैदावार व गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

बीमारियां

संतरा व माल्टा का कोढ़ (कैंकर) व टहनी मार रोग -कैंकर में पत्तों, टहनियों व फलों पर गहरे रंग के खुरदरे धब्बे पड़ जाते हैं। टहनी मार में टहनियां ऊपर से सूखनी शुरू हो जाती हैं।

गोंद निकलना तथा तने व फल का गलना

जमीन की सतह के नजदीक तने की छाल उखड़कर गल जाती है और तने से गोंद जैसा पदार्थ निकलने लगता है। गलन रोग में आरंभ में पत्तों, टहनियों व फलों पर बाहर से पीले गहरे रंग के गोल धब्बे पड़ जाते हैं। पत्तों व फल की सतह कागज की तरह हो जाती है।

साइट्रस इंडिका: दुर्लभ, लुप्तप्राय और स्थानिक प्रजातियां

बीमारियों की रोकथाम

पोषण एवं रोग प्रबंध

रोगग्रसित पौधों में 40 किग्रा गोबर की खाद + 4.5 किलो नीम/करंज खली + 150 ग्रा. ट्राइकोडर्मा (मोनीटर) + 1 कि.ग्रा. यूरिया + 800 ग्रा. सि.सु.फा. + 500 ग्रा. म्यूरेट ऑफ़ पोटाश + 1 कि.ग्रा. चूना प्रति वृक्ष के हिसाब से दो भागों में बांटकर जून-जुलाई और अक्टूबर में दें। यह प्रक्रिया लगातार 2 वर्षों तक अवश्य करें। जब पौधों पर पत्तियाँ आ जायं तब उन पर 200 ग्रा. नाइट्रोजन, 75 ग्रा. फास्फेट, 125 ग्रा. पोटाश का घोल बनाकर 15 दिनों के अंतराल पर 2-3 छिड़काव करें। इसी के साथ जिंक सल्फेट (2 ग्रा./ली.) तथा कैल्सियम क्लोराइड/कैल्सियम नाइट्रेट (5 ग्रा./ली.) का 2 छिड़काव भी करें। वायरस को फैलाने वाले कीड़ों के नियंत्रण का समुचित प्रबंध करें। इसके लिए नये कल्ले निकलते समय एमिडाक्लोरप्रिड (3 मिली/10 ली.) या क्वीनालफास (20 मि.ली./10 ली.) तथा डाइमेथोएट (15 मि.ली./10 ली.) या कार्बोरिल (20 ग्रा./10 ली.) का घोल बनाकर दो-दो छिड़काव एकान्तर विधि से करें। मृदाजनित एवं पत्तियों पर लगने वाले रोगों के नियंत्रण का प्रबंध करें। फाइटोफ्थोरा के नियंत्रण के लिए 1 प्रतिशत बोडो मिक्चर में 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट का घोल बनाकर वर्षा ऋतु में छिड़काव करें। कैंकर के निदान हेतु स्ट्रेप्टोसाइक्लिन या पाउसामाइसिन (500 पीपीएम) का 2-3 छिड़काव नये कल्ले आते समय करें।

दिसंबर से फरवरी

गोंद निकलने वाले भाग को कुरेद कर साफ करें और बोर्डो पेस्ट लगाएं। काट छांट के बाद 0.3% कापर आक्सीक्लोराइड के तीन छिड़काव अक्टूबर, दिसंबर व फरवरी में करें।

अप्रैल से मई

जस्ते की कमी को रोकने के लिए तीन किलो जिंक सल्फेट व 1.5 किलो बुझा चूना 500 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

जुलाई

बारिश शुरू होने के बाद 0.3 कापर आक्सीक्लोराइड का छिड़काव करें।

अगस्त से सितंबर

संतरे व माल्टे के कोढ़ की रोकथाम हेतु जिन दिनों बारिश न हो उन दिनों में 0.3 प्रतिशत कापर आक्सीक्लोराइड का छिड़काव करें।

प्रमुख कीट

नींबू का तेलाः नींबू जाति के पौधों को नींबू का तेला रस चूसकर मार्च-अप्रैल तथा वर्षा ऋतु के बाद हानि पहुंचाता है।

नींबू की लीफ माइनरः पत्तियों की दोनों सतहों पर चांदी की तरह चमकीली और टेढ़ी-मेढ़ी सुरंग बनाती है।

नींबू की सफेद मक्खीः मार्च से सितंबर तक सक्रिय रहने वाला यह कीट भी पत्तियों से रस चूसकर नुकसान पहुंचाते हैं।

रोकथामः तेला व लीफ माइनर के नियंत्रण हेतु अप्रैल में 750 मि.ली. मैटासिस्टाक्स 25 ईसी या 625 मिली रोगोर 30 ईसी या 500 मिली मोनोक्रोटोफास 36 एसएल को 500 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ बाग में छिड़कें।

संतरा की खेती हेतु मासिक कार्य का विवरण

जनवरी-फरवरी

■ नये पौधों की काट-छांट करें। ■ गोद रिसाव के नियंत्रण के लिए पौधों के तनों पर लेप लगायें। ■ कीड़े मकोड़ों का नियंत्रण का प्रबंध करें। ■ नये पौधों के थालों की सफाई तथा उनकी समस्याओं का समुचित निदान करें। ■ पौधों की उम्र के अनुसार डोलोमाइट का प्रयोग करें।

मार्च-अप्रैल

- खाद एवं उर्वरक प्रयोग का कार्य पूरा करें।
- नये पौधों का गर्मी में बचाव करें एवं नियमित पानी दें
- मूलवृंत से निकलने वाले जंगली कल्लों को हटायें।
- अगर नया बगीचा लगाना है तो रेखांकन, गड्ढा की खुदाई, भराई इत्यादि का काम करें।
- पुराने पौधों में खाद एवं उर्वरक का प्रयोग करें।

जुलाई-अगस्त

■ नये बाग में पौधे लगायें। ■ बाग में खाद एवं उर्वरक का प्रयोग करें तथा अंतर फसल लगायें। ■ जल निकास का समुचित प्रबंध करें। ■ रोग एवं कीड़े-मकोड़ों का नियंत्रण करें। ■ थालों से खरपतवार निकालें तथा नये पौधों की देख-रेख करें।
■ गोद निकलने पर पौधों के तनों पर पेस्ट लगायें।

सितम्बर-अक्टूबर

■ नये पौधों की देख रेख करें। ■ खरपतवार नियंत्रण करें। ■ कीड़े एवं बीमारियों का नियंत्रण करें।
■ सूक्ष्म पोषक तत्वों का छिड़काव करें। ■ फलों से लदी डालियों को सहारा प्रदान करें।

नवम्बर-दिसम्बर

■ सूखी डालियों को हटायें। ■ नये पौधों को ठंडी से बचाने का इंतजाम करें। ■ फलों पर लगने वाले कीड़ों तथा बीमारियों का नियंत्रण करें। ■ पके फलों की तोड़ाई करें।

इसी प्रकार के नींबू वर्गीय अन्य फसलों में भी माह दर माह किये जाने वाले कार्यों को सूचीबद्ध करके उनका समय पर अनुपालन करना चाहिए। यदि बताये गये विधियों एवं क्रियाओं का समय पर एवं सही ढंग से पालन किया जाय तो नींबू वर्गीय फसलों विशेषकर किन्नों तथा कागजी नींबू से भरपूर पैदावार ली जा सकती है।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

बैंगन के प्रमुख कीट एवं प्रबंधन

अमित कुमार, मनोज कुमार
नागेन्द्र कुमार
कीट विज्ञान विभाग, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, पूसा (समस्तीपुर) बिहार
श्याम बाबु साह
बिहार कृषि विश्वविद्यालय सबौर (भागलपुर) बिहार

बैंगन सोलेनेसीयस कुल की सब्जी है। इसका उत्पादन देश भर में बड़े पैमाने पर किया जाता है। इसके उत्पादन में कीटों के द्वारा काफी नुकसान होता है। एक अनुमान के अनुसार कम से कम 35–40 प्रतिशत हानि होती हैं। बैंगन की फसल में हानि पहुँचाने वाले प्रमुख कीट एवं इसके प्रबंधन के उपाय निम्नलिखित हैं:

तना एवं फल बेधक

यह बैंगन का सबसे हानिकारक कीट है। इसके द्वारा 60-70 प्रतिशत उपज की हानि होती है। इस कीट की सूड़ी अवस्था हानिकारक होती है। शुरूआत की वानस्पतिक अवस्था में सूड़ी पौधे की कोमल टहनियों और तनों में छेद बनाकर अन्दर घुस जाती है और आन्तरिक भाग में सुरंग बनाकर खाती है। क्षतिग्रस्त पौधे का ऊपरी हिस्सा मुरझाकर लटक जाता है और पौधे की वृद्धि रूक जाती है। फलन की अवस्था में फल में छेदकर अन्दर घुस जाती है और सूड़ी फल का आन्तरिक हिस्सा खाती है तथा अपने मल के द्वारा आंतरिक सुरंग को भर देती है, जिससे फल खाने योग्य नहीं रह जाता है। यह कीट वर्षा काल तथा वसन्त ऋतु में अपेक्षाकृत अधिक सक्रिय रहता है।

एपिलेकना भृंग

यह बैंगन का एक महत्वपूर्ण कीट है । यह पत्तियों को नुकसान पहुँचाता है। इस कीट की सूड़ी (पिल्लू) तथा व्यस्क दोनों ही पौधों को क्षति पहुँचाते हैं। यह पत्तियो के हरी सतह को खुरच कर खाते हैं जिसके फलस्वरूप पत्तियाँ पूरी तरह से सूखी हुई नजर आती हैं। इस कीट के व्यस्क और पिल्लू को आसानी से पहचान सकते हैं। व्यस्क कीट भूरापन पीले रंग का होता है और उसके अगले पंख कड़ा तथा गुम्बद के आकार का अर्द्धगोलाकार होता है जो उदर को ढके रहता है। उसके ऊपर 15-20 की संख्या में काले रंग का धब्बा होता है तथा पिल्लू पीले रंग का होता है तथा उसके ऊपर अधिक संख्या में काँटे की जैसी संरचना होती है जो शरीर को ढके रहती हैं। यह कीट बैंगन की

पत्तियों को आधे चन्द्रमा के आकार में काट कर खाता है।

फुदका

यह एक रस चूसक कीट है जो पौधों के कोमल तना तथा पत्तियों से रस को चूसते हैं। इस कीट के शिशु तथा वयस्क दोनों ही पौधों से रस चूसकर हानि पहुँचाते हैं। इससे ग्रसित पत्तियाँ किनारे से पीला पड़ना आरम्भ कर देती है तथा बाद में पूरी पत्ती पीला पड़कर सुख जाती है और सिकुड़ कर पीछे की ओर मुड़ जाती है। इस कीट के अधिक प्रकोप से पौधे की बढ़वार रूक जाती है। जिस वजह से पौधे में कलियाँ कम आती हैं और उपज प्रभावित होती है।

माहू

माहू के शिशु और व्यस्क दोनों ही फसल को नुकसान पहुँचाते हैं । यह पौधों से रस चूसते रहते है जिससे प्रभावित पौधे पीले पड़ जाते हैं और सुख जाते हैं। मांहू मधुरस का रिसाव करता है जिसके वजह से यह पौधे को नुकसान पहुँचता है। ग्रसित पत्ती की निचले पत्ती पर गिरा मधुरस पत्तियों को ढक देता है जिसके कारण प्रकाश संश्लेषण रूक जाता है तथा काले फफूंद का आक्रमण हो जाता है और बीमारी पैदा हो जाती है। इस तरह से पौधा एकदम काला दिखाई देता है और सूख जाता है। इसकी बढ़वार रूक जाती है और उपज पर प्रभाव पड़ता है।

लाल मकड़ी

यह बहुत छोटे-छोटे लाल रंग के मकड़ी होते हैं। इसके शिशु तथा व्यस्क दोनों नुकसान पहुँचाते हैं । यह पत्तियों की निचले सतह से तथा कोमल तनों और कलिकाओं से रस चूसते रहते हैं। जिसके कारण पत्तियाँ नीचे की तरफ मुड़ना शुरू हो जाती हैं और झुर्रीदार हो जाती हैं। मकड़ियाँ उसको हल्के जाले से ढक देती हैं जिसके कारण पौधे की बढवार रूक जाती है तथा उपज पर प्रभाव पड़ता है।

प्रबन्धन

- हिंसक पक्षियों को खेत में आकर्षित करने के लिए 10 प्रति एकड़ की दर से उनके ठिकाने खड़े कर देना चाहिए।
- डेल्टा और पीले चिपचिपे जाल 2-3 प्रति एकड़ की दर से टिड्डे और माहू आदि के लिए स्थापित किये जाने चाहिए ।
- कीटनाशक की अनुशंसित मात्रा से ज्यादा न प्रयोग करें।
- हमेशा ताजा तैयार किये गये-कीटनाशकों के मिश्रण का प्रयोग करें। एक ही कीटनाशक बार-बार न प्रयोग करें।
- मोनोक्रोटोफॉस जैसे अत्यधिक खतरनाक कीटनाशक का बैंगन में प्रयोग न करें
- फल तुड़ाई से ठीक पहले कीटनाशकों का प्रयोग न करें।
- कीटनाशकों के प्रयोग के बाद 3-4 दिन तक फलों की तुड़ाई न करें।
- तना एवं फल छेदक की निगरानी और बड़े पैमाने पर उन्हें फंसाने के लिए 5 प्रति एकड़ फिरोमॉन ट्रैप स्थापित किये जाने चाहिए। हर 15-20 दिन के अन्तराल पर उन्हें ललचा कर आकर्षित करने के लिए चारा बदल दें।
- तना एवं फल छेदक के नियंत्रण के लिए एक सप्ताह के अन्तराल पर 1-1.5 लाख प्रति हेक्टेयर की दर से अण्डानाशक ट्राइकोग्रामा ब्रासिलिएसिस छोड़ें।
- छेदक द्वारा नुकसान किये गये तनों को काटकर तथा खराब फलों को इकट्ठा कर नष्ट कर देना चाहिए।
- समय-समय पर हड्डा भृंग के अंडे, लार्वा तथा व्यस्क को इकट्ठा कर नष्ट कर देना चाहिए।
- नीम केक 250 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से रोपाई के पच्चीसवें तथा साठवें दिन मिट्टी में मिलायें। यह तना भेदक तथा सूत्रकृमि से होने वाले नुकसान से बचाता है।
- नीम की गिरी 5% का दो से तीन छिड़काव चूसक कीटों के नियंत्रण के लिए करें अथवा दो प्रतिशत नीम तेल तनाभेदक को भी नियंत्रित करता है।
- यदि कीट का प्रकोप अत्यधिक मात्रा में हो तब रस चूसने वाले कीट नियंत्रण के लिए इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस एल 1 मिली लीटर दवा 1 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।
- लाल मकड़ी के नियंत्रण के लिए डाइकोफॉल 85 ईसी की 2.5 मिली मात्रा अथवा घुलनशील गंधक 2.5 ग्राम मात्रा प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।
- यदि तना भेदक का प्रकोप अधिक हो तो साइपरमेथिन 25 ईसी (0.005%) या कारबेरिल 50 डब्लूपी 3 ग्राम दवा प्रति लीटर पानी का छिड़काव करें।
- इमामेक्टिन बेंजोएट 5% एस.जी. 4 ग्राम प्रति 10 लीटर पानी या फ्लूबेन्डामाइड 20 डब्लू.डी.जी. 7.5 ग्राम प्रति 10 लीटर पानी का प्रयोग छिड़काव के लिए करें।

ISSN-2582-5976 www.krishakbharti.in मध्य भारत कृषक भारती

लघु और सीमांत कृषकों के लिए लाजवाब कृषि यंत्र

निराई–गुड़ाई कृषि यंत्र ए.ए.आई व्हील हो

राहुल कुमार यादव (शोध छात्र)
प्रौद्योगिकी महाविद्यालय, कृषि मशीनरी और पावर इंजीनियरिंग विभाग, गोविन्द बल्लभ पन्त कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय पंतनगर, उत्तराखंड

विवेकानन्द सिंह (शोध छात्र)
नवीन्द्र कुमार पटेल (शोध छात्र)
अभिषेक वेलेरियन लाल, संदीप सिंह
कृषि मशीनरी और पावर इंजीनियरिंग विभाग, सैमहिगिनबॉटम युनिवर्सिटी ऑफ़ एग्रीकल्चर, टेक्नोलॉजी और साइंसेस प्रयागराज (उ.प्र.)

भारत को एक कृषि प्रधान देश के रूप में जाना जाता है और यहां की अधिकांश जनसंख्या खेती पर आश्रित है। भारत में प्रतिवर्ष विभिन्न प्रकार की फसलो का उत्पादन किया जाता है कभी कभी वातावरण अनुकूल न होने तथा अन्य कारणों से फसलो के उत्पादन में भरी कमी हो जाती है। हालाकि कृषक अपनी फसल के बेहतर उत्पादन के लिए विभिन्न प्रकार के कार्य करते है ,जिसमे से निराई गुड़ाई भी शामिल है।

निराई-गुड़ाई करने के तरीके

खरपतवार को खेतो से हटाना या उन्हें नष्ट करना कृषि में एक बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य माना जाता है, क्योकि इसका सीधा प्रभाव फसलो के उत्पादन पर पड़ता है। दरअसल यह ऐसे पौधे या घास-फूस होते है, जो किसी भी फसल के साथ अनचाहे रूप से उग आते है और फसल के साथ अनचाहे रूप से उग आते है और फसल को नष्ट कर देते हैं। खेतो में इस प्रकार की अनचाही घास ङ्कफूस या पौधों को हटाने के लिए कृषको को बहुत अधिक परिश्रम करना पड़ता है। हालाकि कृषक अपने खेतो में निराई-गुड़ाई का कार्य तीन प्रकार से करते है, जो इस प्रकार है- • रासायनिक पदार्थो का उपयोग कर • खुरपे,कुदाल और अन्य कृषि यंत्रो की सहायता से • मशीनों द्वारा खरपतवार को हटाना

एक सर्वेक्षण से प्राप्त जानकारी के अनुसार ज्यादातर कृषक खेतो में निराई-गुड़ाई करने की अपेक्षा रसायनों का प्रयोग सबसे अधिक करते है ,क्योकि इसमे कृषको का कार्य सरलता से बहुत ही कम समय में हो जाता है। हालाकि खेतो में रासायनिक पदार्थो का इस्तेमाल फसल और भूमि दोनों के लिए हानिकारक खुरपे, कुदाल और अन्य कृषि यंत्रो की सहायता से खरपतवारो को इस कृषि यंत्र से हटाते है। हालाकि इस कार्य के

लिए कृषको को बहुत अधिक परिश्रम करना पड़ता है। वर्तमान समय में घास-फूंस या खरपतवार को नष्ट करने के लिए कृषकोद्वाराकई विधियाँप्रयोग की जाती है। कई कृषक इसके लिए विभिन्न प्रकार के कृषि यंत्रो का प्रयोग करते हैं।

कृषि यंत्र ए.ए.आई व्हील हो का उपयोग

यहकृषि यंत्र ए.ए.आई व्हील हो कतार में बोई गयी फसलो की निराई गुड़ाई करता है। इसमे हैंडिल लम्बा होता है तथा कृषक द्वारा धक्का देकर चलाया जाता है। इसमे मुख्य रूप से हैंडिल ,टूल एंव फ्रेम होता है। इस कृषि यंत्र ए.ए.आई व्हील हो रिवर्सिबुल ब्लेड, टूल का उपयोग किया जाता है, यह एक व्यक्ति द्वारा संचालित होता है। हैंडिल में ऐसी व्यवस्था होती है की हैंडिल की ऊंचाई चालक की लंबाई के हिसाब से बढाया या घटाया जा सकता है। कृषि यंत्र की गहराई फ्रेम में स्थित छेद के अनुसार क्लैप से कम या अधिक किया जा सकता है। इस ए.ए.आई व्हील हो कृषि यंत्र में पहिया लगा होता है जिससे हम आसानी से और कम श्रम से ए.ए.आई व्हील हो कृषि यंत्र को धक्का देकर चलाया जाता है जिससे उसकाशावेल जमीन में घुसता है और फसल से खरपतवार को निकालता है तथा खरपतवार जमीन पर सुख जाती है जो खाद की भी काम करता है जिससे रासायनिक खाद न के बराबर फसल को देनी पड़ती है। इससे कृषको की लागत कम लगाती है आय अधिक होती है और मिट्टी की गुणवता बनी रहती है इस कृषि यंत्र द्वारा खुरपी की तुलना में 50-60 प्रतिशत मजदूरी की बचत, 30 प्रतिशत संचालन खर्च में बचत तथा 8 - 10 प्रतिशत उपज में वृद्धि होती है

उपयोग

इस वीडर से सब्जी का बगीचा ,बागवानी की खेती इत्यादि से खरपतवार को निकालने एंव गुड़ाई करने का काम लिया जाता है। यह भूमि की ऊपरी परत को तोड़ता है तथा नमी को सुरक्षा रखता है।

ए.ए.आई व्हील हो कृषि यंत्र लाभ

इस कृषि यंत्र उपयोग इस लिए किया जाता है क्यों की किसी काम को आसान और सरल बना सके।

- इस यंत्र को एक व्यक्ति की जरुरत पड़ती है।
- कम शारीरिक श्रम और अधिक दक्षता।
- इस यंत्र को महिला कृषक भी चला सकती है।
- इसकी लागत कम आती है कृषक इसको आसानी से खरीद सकते हैं।
- यह यंत्र हल्का होता है जिसे कृषक आसानी से खेत में ले जा सकते है। • यह यंत्र लाइन में बोई गयी फसल में उपयोग करते है।

निष्कर्ष

यह कृषि यंत्र ए.ए.आई व्हील हो निराई गुड़ाई करने में आसानी होती है और मजदूर की संख्या कम लगती है जिसके कारण लागत कम लगती है और आय में वृद्धि होती है जो निराई गुड़ाई करते समय खरपतवार जमीन पर सुख जाती है वह खरपतवार जैविक खाद का काम करती है जिससे फसल उत्पादन में वृद्धिहोती है यह यंत्र हल्का और कम लागत का होता है इसे कृषक खरीद सकते हैं।

विशिष्ट वर्णन

टाइनों की संख्या	व्हील का व्यास (मि.मी)	गहराई (मि.मी)	वजन (कि.ग्रा.)	लागत (रु.)
3	400	55	8–10	1500

केविके दतिया में किया गया। इस अवसर पर दलहनी फसलों की उत्पादकता को बढ़ाने हेतु आवश्यक कृषि तकनीकियों के संबंध में विस्तृत जानकारी प्रदान की गई।

राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय ग्वालियर में अखिल भारतीय समन्वित खरपतवार प्रबंधन परियोजना के तहत ग्राम गोवई में कृषक प्रशिक्षण कार्यक्रम का आयोजन किया गया।

कृषि विज्ञान केन्द्र रतमलाम द्वारा प्राकृतिक खेती के विषय पर गैर आवासीय प्रशिक्षण का आयोजन ग्राम ढोढर में आयोजित किया गया ।

केविके ग्वालियर द्वारा भेलाकला तहसील मुरार में एक दिवसय प्रक्षेत्र दिवस का आयोजन सरसों में सफेद किट्ट (व्हाइट रस्ट) रोग प्रबंधन हेतु फफूंदनाशक का उचित प्रयोग पर किया गया।

Postal Regd. No.: Gwalior/40020242/2019-2021

R.N.I. Regd. No.: MPHIN/2006/16946

मध्य भारत कृषक भारती

मार्च - 2022

BOOK YOUR STALL NOW!

Supported By:

4th FarmTech Asia®

8 9 10 11 April 2022

Venue : Agriculture College Ground, Indore, Madhya Pradesh

Largest and Most Successful International Agriculture Exhibition of Madhya Pradesh

Shri Kamal Patel

Honorable Minister

Farmers Welfare and Agriculture Devt. Department, Govt. of Madhya Pradesh

International Exhibition & Conference On Agriculture, Horticulture, Dairy & Food Processing Technology

GLIMPSES OF FARMTECH ASIA 2019

Visitors Attended from More than 16 States of India

More than 160 Companies Participated

Participation of Companies From India and 6 other Countries

PARTICIPANTS FROM COUNTRIES

GERMANY INDIA ISRAEL ITALY JAPAN SWEDEN USA

Organiser: Brahmani

Co-Organiser: Radiant Exhibitions

Supported by: GFIB India

Stall Booking Contact Details:

Mr. Pradeep Thakor Mobile: +91 9998889578 Email: mktg@farmtechasia.com | Mr. Savan Shah Mobile: +91 7575007740 Email: fta@farmtechasia.com

www.farmtechasia.com

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक, प्रधान संपादक राजू गुर्जर द्वारा सर्वोदय प्रिंटिंग प्रेस, महाडिक की गोठ, जनक हॉस्पिटल के पीछे कम्पू रोड, लश्कर-ग्वालियर से मुद्रित एवं ई.एम.-120, कुशवाह मार्केट के पास दीनदयाल नगर ग्वालियर (म.प्र.) से प्रकाशित। संपादक: राजू गुर्जर. मोबा. 9425101132, 94245-22090